डॉ. भोजराज द्विवेदी

# यज्ञ कुण्डमण्डप सिद्धि

पौरोहित्य एवं यज्ञ-विद्या पर पहला प्रामाणिक ग्रन्थ

9/396

# यज्ञ ही कामधेनु

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच्र प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
इष्टान्भोगाह्नि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः॥

*—श्रीमद्भगवद्गीता ३। १०-१२*

प्रजापति ब्रह्मा ने सर्गारम्भ में यज्ञों सहित प्रजावर्ग की सृष्टि की और उनसे कहा कि तुम लोग इन यज्ञकर्मों द्वारा देवताओं की उपासना करो। यह देवोपासना-कर्म-रूपी यज्ञ तुम्हारे लिऐ कामधेनु है। तुम उपासनाओं के द्वारा देवताओं को तृप्त करो, देवता प्रसन्न होकर तुम्हारा सर्वविध श्रेय करेंगे। इस प्रकार परस्पर सबका श्रेय होगा। यज्ञ से भावित देवता तुम्हें सम्पूर्ण इष्ट प्रदान करेंगे। पर जो देवताओं द्वारा प्रदत्त भोगों को बिना उन्हें अर्पण किये भोगते हैं, वे चोर हैं।

# डायमंड पाकेट बुक्स में
## ज्योतिष, तंत्र मंत्र यंत्र, वास्तु, फेंग-शुई की अनुपम पुस्तकें

*डॉ. भोजराज द्विवेदी*

रत्नों का रहस्यमय संसार (रंगीन) .................... 150.00
फेंग सुई : चीनी वास्तुशास्त्र ...................... 150.00
पिरामिड एवं मन्दिर वास्तु ....................... 150.00
हिन्दू मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार .............. 60.00
वास्तु जिज्ञासाएं एवं समाधान .................... 100.00
अंकों का अद्भुत संसार .......................... 100.00
रेखाओं का रहस्यमय संसार (हस्त रेखाओं पर विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पृष्ठ 500) ...................... 150.00
भूकम्प के ज्योतिषीय विश्लेषण पर सारगर्भित अध्ययन ................................ 40.00
अनुभूत यंत्र मंत्र तंत्र और टोटके .................... 120.00
सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र ................................. 100.00
रेमेडियल वास्तु (बिना तोड़-फोड़ के वास्तु) .............. 150.00
कमर्शियल वास्तु ...................................... 120.00
पर्यावरण वास्तु ........................................ 120.00
मंत्र शक्ति और साधना ................................. 50.00
तंत्र शक्ति और साधना ................................. 60.00
यंत्र शक्ति और साधना .................................. 50.00
हिप्नोटिज्म ............................................. 50.00
कालसर्प योग शांति और घट विवाह ............ 100.00
ज्योतिष और धनयोग ................................. 40.00
ज्योतिष और राजयोग ................................ 40.00
ज्योतिष और विवाह योग ............................ 40.00
ज्योतिष और संतान योग ............................ 40.00
ज्योतिष में भवन, वाहन और कीर्ति योग ............ 50.00
ज्योतिष और आयुष्य रोग .......................... 40.00
ज्योतिष और रोग विचार ........................... 40.00
यज्ञ कुण्ड मण्डप सिद्धि ............................ 100.00
महालक्ष्मी पूजन व दीपोत्सव ...................... 30.00
पांव तले भविष्य ...................................... 100.00
नाम बदलिये भाग्य बदलिये ........................ 100.00
अंत्येष्टि कर्म पद्धति .................................. 60.00
षटपंचाशिका (प्रश्न विज्ञान) ............................ 100.00
सस्वर रुद्राभिषेक प्रयोग ............................ 50.00
अपनी जन्म पत्रिका आप बनाएं ...................... 40.00
ज्योतिष प्रश्नोत्तरी ...................................... 30.00
वक्री ग्रह ................................................ 40.00
हिन्दू विवाह एवं यज्ञोपवीत संस्कार ............ 100.00

*कीरो*

कीरो नक्षत्र विज्ञान ................................... 40.00
कीरो अंक विज्ञान .................................... 40.00
कीरो हस्त रेखाएं ...................................... 50.00

*आचार्य सत्यानन्द*

व्यावहारिक वास्तु शास्त्र ........................... 100.00
सूर्य चिकित्सा ............................................ 40.00

*पं. गोपाल शर्मा*

सुगम वास्तु शास्त्र ..................................... 75.00
लक्ष्मी प्रवेश कैसे हो .................................. 75.00

*उर्मिला शर्मा*

ज्योतिष और पति-पत्नी का चुनाव .............. 20.00

*नितीश के. शर्मा*

मुखाकृति विज्ञान ....................................... 40.00

*महेशदत्त शर्मा*

दिव्य आभामण्डल (AURA) ........................ 40.00

*शशिकांत ओक (विंग कमांडर)*

नाड़ी भविष्य (चौंका देने वाला चमत्कार) ................ 30.00

*पारसमल*

वास्तु दोष और निवारण ............................ 99.00

*कौलाचार्य जगदीशानन्द तीर्थ*

हस्ताक्षर विज्ञान ...................................... 75.00
अपनी जन्मपत्री स्वयं पढ़ें.......................... 60.00
पहचान आपकी. ....................................... 95.00

*राधाकृष्ण श्रीमाली*

हनुमान तंत्र साधना .................................. 60.00
ज्योतिष सीखिये ...................................... 100.00
लाल किताब ............................................ 100.00
दस महाविद्या ......................................... 100.00
लक्ष्मी तंत्र साधना .................................. 60.00
गणेश उपासना और साधना ........................ 50.00
वृहद हस्त रेखा ....................................... 50.00
ज्योतिष और रत्न .................................... 40.00
अंक ज्योतिष .......................................... 40.00
भृगु संहिता ............................................ 60.00
नक्षत्र विज्ञान .......................................... 40.00
प्रश्न ज्योतिष .......................................... 40.00
तंत्र रहस्य .............................................. 40.00
तंत्र शक्ति साधना और सैक्स ..................... 40.00
स्वप्न ज्योतिष ......................................... 40.00
मंत्र शक्ति से रोग निवारण ........................ 30.00
दशाफल दर्पण ......................................... 40.00
मंत्र शक्ति द्वारा कामना सिद्धि .................... 40.00
ग्रहगोचर (ग्रह और फलादेश) ........................ 40.00
शरीर सर्वांग लक्षण ................................... 30.00
रमल विज्ञान ........................................... 40.00
यंत्र सिद्धि ............................................. 30.00
स्तोत्र शक्ति ........................................... 30.00
ज्योतिष और लाटरी ................................. 30.00

## डायमंड पाकेट बुक्स

X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-110020

पुस्तकें V.P.P. से मंगवाएं, तीन पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय फ्री। डाक व्यय प्रति पुस्तक 20/-

फोन : 011-6386289, 8611861, फैक्स : 011-8611866.

E-mail : mverma@nde.vsnl.net.in Website : www.diamondpocketbooks.com

क91366

# यज्ञ कुण्डमण्डप सिद्धिः

इस पुस्तक के माध्यम से आप विष्णुयज्ञ, रुद्र-याग, लक्षचण्डी एवं सभी प्रकार के महायज्ञ करवा सकते हैं, तथा अनेक प्रकार के कुण्ड व मण्डपों की रचना कर सकते हैं। इस पुस्तक में अनेक प्रकार के दुर्लभ व अतिगोपनीय मण्डलों के चित्र पहली बार विद्वत्जनों के हितार्थ प्रकाशित किये जा रहे हैं। जिसको देखकर व समझकर साधारण विद्वान भी बड़ा अनुष्ठान करवा सकते हैं।

**दैवज्ञ शिरोमणि डॉ. भोजराज द्विवेदी**

एम. ए. संस्कृत (दर्शन), पी. एच. डी. (ज्योतिष) लब्ध स्वर्ण पदक
सम्पादक 'अज्ञात-दर्शन' (पाक्षिक) श्री चण्डमार्तण्ड पंचागं
दूरभाष : ३१८८३
फैक्स : ६४०९४३
मोबाईल : ९८२८० ३१८८३

**डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.**

X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरीया फेज-II
दिल्ली-110020

87/3358

ISBN 81-7182-293-2

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक :
डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.,
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली - 110020,
फोन : 51611861-865, 26386289,
फैक्स : 51611866
*E-mail : mverma@nde.vsnl.net.in,*
*Website : www.diamondpocketbooks.com*

पेपरबैक संस्करण 100.00
सजिल्द संस्करण 300.00

संस्करण : 2003
मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32
लेजर टाइपसैट : प्रिंटलाइन कम्पयूटर्स

**Anubhut Yantra Mantra Tantra Aur Totke**

**Dr. Bhojraj Dwivedi**
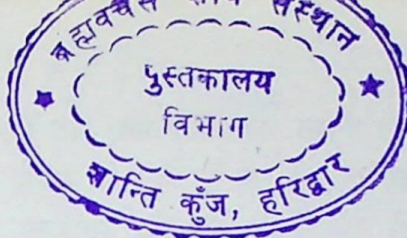
# पुस्तक के बारे में

बीसवीं सदी के चकाचौंध वाले भौतिकवादी युग में हमने कर्मकाण्ड के उद्भट् विद्वानों एवं नित्य अग्निहोत्रकर्म करने वाले ब्राह्मणों का लोप होते देखा। टी. वी. संस्कृति ने चरित्रहीनता के साथ निर्लज्जता को जन्म दिया। केवल अपना हित, मात्र निजी स्वार्थ-चिन्तन की इस संस्कृति में लोक-कल्याणकारी चिन्तन, परमार्थ साधन, यज्ञ की महिमा एवं कर्मकाण्ड के गूढ़ रहस्यों को लोप होते देखा। इस पुस्तक के लेखक का परिवार पिछली नौ पीढ़ियों से कर्मकाण्डी, श्रीमाली ब्राह्मण परिवार के गुरुपद पर आरूढ़ रहा है। वेद पढ़ना-पढ़ाना, विविध प्रकार के अनुष्ठान करना एवं यज्ञकार्य सम्पादन करना इनकी परम्परा रही है। विद्वान् लेखक ने बहुत बड़े-बड़े महायज्ञों में भाग लिया एवं स्वतन्त्र रूप से कई महायज्ञ भी करवाये। उनका यह अनुभव रहा कि दिन-रात कर्मकाण्ड कराने वाले दिग्गज विद्वान् भी यज्ञ-क्रिया की सूक्ष्मता को नहीं समझते। अच्छे-अच्छे ख्याति प्राप्त आचार्यों को यज्ञ-कुण्ड बनाने नहीं आते।

कई ऐसे जिज्ञासु विद्वान् भी हैं जो यज्ञकर्म की विधि, कर्म-काण्ड की सूक्ष्मता, कुण्ड बनाने की तकनीक को जानना चाहते हैं, पर इस विषय में कोई प्रामाणिक पुस्तक उपलब्ध नहीं है। अर्थकारी विद्या होने के कारण विज्ञ-विद्वतगण भी क्रिया-कुशलता (हतूठी) दूसरों को नहीं बताना चाहते। हमने देखा और अनुभव किया कि पूरे भारत में इस यज्ञ-विद्या के विशेष जानकार अंगुलियों पर गिने जाने जितने ही अब शेष रह गये हैं। पौरोहित्य-कर्म के चित्रात्मक ज्ञान पर यह पहली **'प्रेक्टिकल-पुस्तक'** है, जिसमें परम पूज्य सर्व श्री डॉ. द्विवेदी जी ने अपना परम्परागत ज्ञान खुले हृदय से पाठकों के लिए उड़ेल दिया है।

नई पीढ़ी के पूजा-पाठ कराने वाले ब्राह्मण-वर्ग विभिन्न देवताओं के मण्डल एवं मांडणों के बारे में अनभिज्ञ हैं। सर्वतोभद्र-मण्डल, लिंगतोभद्र, हरिहरब्रह्मा-मण्डल, वरुण-मण्डल सही ढंग से बनाना एवं उनकी पूजा कराना नहीं आता। इस पुस्तक को लिखने में पं. लेखराज द्विवेदी का भी विशेष

योगदान रहा जो कि लेखक के ज्येष्ठ भ्राता हैं। अत: यह पुस्तक खास करके उन सभी लोगों के लिए प्रकाशित की गई है जो यज्ञ-कुण्ड, मण्डप, मांडणों एवं विभिन्न मण्डलों के बारे में जानने की तीव्र जिज्ञासा रखते हैं। यज्ञ-पात्रों की सचित्र जानकारी के साथ, यज्ञ-संसद एवं कर्मकाण्ड के विषय में अनिवार्य तथा अमूल्य जानकारी 'विशिष्ट निर्णय' के अन्तर्गत अंतिम पृष्ठों में दी गई है। हमें विश्वास है कि **वेदिया कुलभूषण, दैवज्ञ महर्षि पं. भोजराज द्विवेदी** का यह प्रयास जिज्ञासु सज्जनों के लिए दीपशिखा का कार्य करेगा और प्रस्तुत पुस्तक कर्मकाण्ड जगत की अमूल्य धरोहर साबित होगी।

**—प्रकाशक**

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
पुस्तकालय
शान्ति कुंज, हरिद्वार

स्वर्गारोहण सं. २०३४, भाद्रकृष्ण-१

प्रातः स्मरणीय पुण्यःश्लोक

# परम पूज्य पिताश्री

तन्त्र व मन्त्र शास्त्र के प्रखर ज्ञाता, याज्ञिककर्मकोविद, वेदियाकुल-भूषण, अनुष्ठान केसरी, कर्मकाण्डमणि, ज्योतिषशास्त्र मर्मज्ञ,

**श्रीमाली कुलगुरु, दानवीर**

तपोनिष्ठ, ब्रह्मलीन वेदमूर्ति

**वेदिया पं. श्री जयनारायणजी द्विवेदी**

की पावन स्मृति पर सादर समर्पित

# भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी श्री जैलसिंह द्वारा सम्मानित

राष्ट्रपति के साथ मुकुट पहने हुए डॉ. भोजराज द्विवेदी

भारत के सर्वश्रेष्ठ भविष्यवक्ता के रूप में महामहिम पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी श्री जैलसिंह जी ने इस पुस्तक के यशस्वी लेखक **डॉ. भोजराज द्विवेदी** को स्वर्ण पदक, अंग-वस्त्र, **'ज्योतिष सम्राट्'** की सर्वोच्च उपाधि एवं सुवर्ण पदक जड़ित शानदार मुकुट पहनाकर, इण्डिया इन्टरनेशनल सेन्टर, दिल्ली में आयोजित **अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष सम्मेलन** के शुभ अवसर पर 10 दिसम्बर, 1989 को सम्मानित किया।

उल्लेखनीय है—श्रीमांली ब्राह्मण समाज के इतिहास में पंडित भोजराज द्विवेदी पहले व्यक्ति हैं जो इस प्रकार के उच्च स्तरीय समारोह द्वारा ज्योतिष के सर्वोच्च अलंकार से विभूषित किये गए।

—सौजन्य से **अखिल भारतीय ज्योतिष एवं पराविद्या संस्थान,** नई दिल्ली.

पुस्तकालय
विभाग
शान्ति कुंज, हरिद्वार
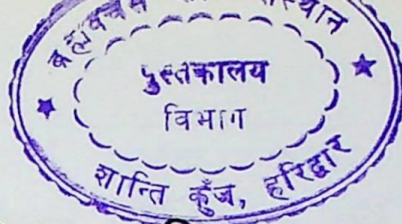
# एक दिव्य व्यक्तित्व का परिचय

दैवज्ञ शिरोमणि डॉ० भोजराज द्विवेदी राजस्थान के सर्वप्रथम अधिकारी विद्वान् हैं, जिन्होंने एम० ए० संस्कृत (दर्शन) में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर जोधपुर विश्वविद्यालय से ज्योतिष विषय को लेकर पी-एच० डी० की उपाधि विधिवत् प्राप्त की। उनकी यशस्वी लेखनी से अब तक ज्योतिष तन्त्र-मन्त्र एवं अध्यात्म पर १०८ पुस्तकें लिखी गई हैं जिनमें से ८० पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। अकेले वास्तुशास्त्र को लेकर उन्होंने १२ पुस्तकों का सेट लिखा। इसके अतिरिक्त गत २२ वर्षों से वे **'अज्ञातदर्शन'** (पाक्षिक) एवं **श्रीचण्डमार्तण्ड पंचांग** (वार्षिक) का नियमित सम्पादन व प्रकाशन करते चले आ रहे हैं।

भारत के राष्ट्रपति द्वारा उन्हें स्वर्णपदक, अंगवस्त्र एवं मुकुट पहनाया जा चुका है। देश-विदेश में अनेक सम्मेलनों की अध्यक्षता कर, व्याख्यानमालाओं, रेडियो एवं टी०वी० वार्ताओं के माध्यम से ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र एवं वास्तुशास्त्र के वैज्ञानिक स्वरूप को डॉ० द्विवेदी ने जन-जन तक पहुंचाया है। International Vaastu Association के अध्यक्ष डॉ० भोजराज द्विवेदी के नेतृत्व में भारतीय प्राच्यविद्याओं के २० विभिन्न विषयों पर पत्राचार पाठ्यक्रम चल रहे हैं। उनके द्वारा शिक्षित एवं दीक्षित सैकड़ों, हजारों शिष्य परिवार ज्योतिष विद्या के दिव्य ज्ञान के प्रसार-प्रचार में समर्पित भाव से जुड़े हैं।

लायन्स क्लब जोधपुर सेन्ट्रल के **'चार्टर अध्यक्ष'** रह चुके डॉ० द्विवेदी की ज्योतिष विषय पर पचास से अधिक रेडियो वार्ताएं, दो हजार भविष्यवाणियां प्रकाशित होकर सत्य प्रमाणित हो चुकी हैं। ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के युगपुरुष के रूप में वन्दित डॉ० द्विवेदी कालजयी समय के अनमोल हस्ताक्षर हैं।

**सम्पर्क सूत्र**

अज्ञात दर्शन कार्यालय
प्रथम बी रोड, गोलबिल्डिंग के पीछे,
सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)
दूरभाष—31883, फैक्स—649093
मोबाईल—98280-31883

# अनुक्रमणिका


1. यज्ञ-महिमा एवं महत्त्व 13
2. लक्षचण्डी महायज्ञ फलौदी 20
3. अश्वमेध यज्ञ का मिथ्या आडम्बर 22
4. एक स्पष्ट अभिव्यक्ति 34
5. प्लेग, प्रदूषण, पर्यावरण एवं यज्ञ 37
6. कुण्ड रचना में प्रयुक्त मापदण्ड की परिभाषा 40
7. भूमि-परीक्षा 41
8. प्रासाद, उद्यान आदि का निर्माण, भूमि परीक्षण तथा वृक्षारोपण की विधि 44
9. वास्तुशास्त्र में मण्डप प्रमाण 56
10. विष्णु यज्ञ का विधान 60
11. हवनात्मक रुद्रयज्ञ प्रयोग 61
12. हवनात्मक शतचण्डी प्रयोग 67
13. मूर्ति-प्रतिष्ठा के मुहूर्त 68
14. संक्षेप में मण्डप निर्माण 73
15. कुश विचार 77
16. दक्षिणा विचार 79
17. हवन में अग्निवास एवं ग्रहमुख आहुति 80
18. कर्म विशेष में अग्नि विशिष्ट का नाम 81
19. होम मुद्रा विचार 91
20. आज्यस्थली, चरुस्थली, हवनीय वृक्ष-विचार 92
21. ग्रह-समिधा व शाकल्य विचार 93
22. चित्रात्मक कुण्ड-मण्डप ज्ञान
23. वास्तु देवता एवं वास्तु चक्र 95
24. एक कुण्ड निर्माण की प्रमाणिक विधि 125
25. कुण्डाभावे स्थण्डिल वेदी का प्रमाण 128
26. कुण्ड महिमा व कुण्ड के प्रकार 129
27. योनि, नाभि लक्षण एवं प्रमाण 131

28. स्रुव लक्षणम् 132
29. स्रुची विचार 133
30. प्रणीता, प्रोक्षणी व पूर्णपात्र विचार 134
31. चतुरस कुण्डम् 135
32. योनि कुण्डम् 137
33. अर्द्धचन्द्र कुण्डम् 139
34. त्रिकोण कुण्डम् 140
35. वृत्त कुण्डम् 142
36. षडस्र कुण्डम् 144
37. प्रकारान्तरेण षट्कोण कुण्डम् 145
38. पद्म कुण्डम् 147
39. अष्टास्र कुण्डम् 149
40. प्रकारान्तरेण अष्टार कुण्डम् 150
41. श्रीयज्ञम्: श्री विद्या का हवनात्मक प्रयोग 152
42. श्रीयज्ञ और श्रीसूक्त 163
43. कनकधारा यन्त्र का सम्पूर्ण प्रयोग 174
44. इन्द्रकृत महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रम् 185
45. यज्ञ-संसद 188
46. कुछ विशिष्ट निर्णय एवं विचारणीय बातें 191
47. तालाब, बगीचा, कुआं, बावली, पुष्करिणी,
स्वीमिंगपुल तथा देवमन्दिर की प्रतिष्ठा 203
48. अधिवासन कर्म, देवस्तवपन, नेत्रोन्मीलन संस्कार 221
49. श्री महालक्ष्मी जी की आरती 235
50. ॐ जय जगदीश हरे 236
51. आरती श्री दुर्गा जी की 237
52. आरती श्री शंकर जी की 238
53. श्री सत्यनारायण जी की आरती 239
54. जगदम्बानी गरभा आरती 240
55. श्री शंङ्करार्तिक्यम् 241
56. श्रीयज्ञम् सम्बन्धी नियम
व अगले श्रीयज्ञों की घोषणा 242

पुस्तकालय विभाग शान्ति कुंज हरिद्वार
क9/366
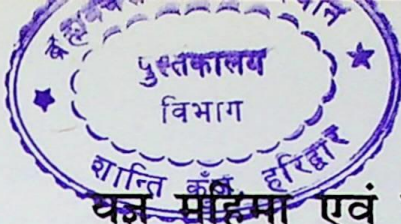
# यज्ञ महिमा एवं महत्त्व

## विषय प्रवेश

यज्ञ की महिमा अनन्त है। यज्ञ से आयु, आरोग्यता, तेजस्विता, विद्या, यश, पराक्रम, वंशवृद्धि, धन-धन्यादि, सभी प्रकार के राज-भोग, ऐश्वर्य, लौकिक एवं पारलौकिक वस्तुओं की प्राप्ति होती है। प्राचीन काल से लेकर अबतक रुद्रयज्ञ, सूर्ययज्ञ, गणेशयज्ञ, लक्ष्मीयज्ञ, श्रीयज्ञ, लक्षचण्डी, भागवत यज्ञ, विष्णुयज्ञ, ग्रह-शांति यज्ञ, पुत्रेष्टि, शत्रुंजय, राजसूय, ज्योतिष्टोम, अश्वमेध, वर्षायज्ञ, सोमयज्ञ, गायत्री यज्ञ इत्यादि अनेक प्रकार के यज्ञ होते चले आ रहे हैं। हमारा शास्त्र, इतिहास, यज्ञ के अनेक चमत्कारों से भरा पड़ा है। हिन्दू सनातन धर्म में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी षोडश-संस्कार यज्ञ से ही प्रारम्भ होते हैं एवं यज्ञ में ही समाप्त हो जाते हैं।

यज्ञ से पवित्र एवं सर्वोत्तम कृत्य और कोई नहीं। अतः प्रत्येक सद्-गृहस्थ को यज्ञ करना ही चाहिए। इस संसार में वे लोग बड़े पुण्यशाली एवं धर्मध्वज कहलाते हैं, जो महायज्ञों का आयोजन करते हैं एवं उनमें बहुविध सहयोग देते हैं।

भारत भूमि में यज्ञों का अत्यधिक सम्मान है। कहीं भी यज्ञ होता है तो राक्षस (अहंकार मनोवृति वाले) लोग उसमें विघ्न डालते हैं तथा सज्जन लोग मन-वचन-कर्म से, तन-मन और धन से यज्ञ कार्य को पूरा कराना अपना नैतिक दायित्व समझते हैं। क्योंकि यज्ञ करने से व्यष्टि नहीं अपितु समष्टि का कल्याण होता है। अब इस बात को वैज्ञानिक मानने लगे हैं कि यज्ञ करने से वायुमण्डल एवं पर्यावरण में शुद्धता आती है। संक्रामक रोग नष्ट होते हैं तथा समय पर वर्षा होती है। यज्ञ करने से सहबन्धुत्व की सद्भावना के साथ विश्व में शांति स्थापित होती है।

# संसार के प्रत्येक व्यक्ति को अग्निहोत्र कर्म ( यज्ञ ) करना चाहिए

**महर्षि वेद व्यास कहते हैं—**

**व्यास उवाच**

अग्निहोत्रं तु जुहुयादाद्यन्तेऽहर्निशोः सदा।
दर्शेन चैव पक्षान्ते पौर्णमासेन चैव हि॥ १॥

**महर्षि वेद व्यास जी ने कहा**—सदैव सायं और प्रातः अग्निहोत्र [१] करना चाहिए। पक्ष के अन्त में अमावस्या और पौर्णमासी को हवन (दर्शेष्टि एवं पौर्णमासेष्टि) करना चाहिए। द्विज को फसल कट जाने पर नवसस्येष्टि, ऋतु की समाप्ति पर (किया जानेवाला) यज्ञ एवं अयन के अन्त में अर्थात् छः-छः महीने पर संवत्सर के अन्त में सौमिक याग करना चाहिए। दीर्घ आयु की इच्छा करनेवाले अग्निहोत्री द्विज को नवसस्येष्टि किये बिना नया अन्न नहीं खाना चाहिए। नवीन अन्न का अग्नि में हवन किये बिना नवान्न खाने का इच्छुक व्यक्ति अपने प्राणों को ही खाना चाहता है। प्रत्येक पर्वों में नित्य ही सावित्री-होम, शान्ति-होम करना चाहिए तथा अष्टकाओं और अन्वष्टकाओं में नियम से नित्य पितरों की अर्चना करनी चाहिए॥ १-५॥

गृहस्थाश्रम में निवास करनेवाले तीनों वर्गों (द्विजाति) का यह नियमित श्रेष्ठ धर्म है, अन्य धर्म अपधर्म कहलाता है। नास्तिकता अथवा आलस्य के कारण जो अग्नियों का आधान एवं यज्ञ से यजन नहीं करना चाहता, वह बहुत-से नरकों में जाता है।

विप्रो! (अग्न्याधान आदि कृत्य न करनेवाला) वह दुर्मति तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, वैतरणी, असिपत्रवन तथा अन्य घोर

१. 'अग्निहोत्र' का अर्थ है एक यज्ञ, जिसमें मन्त्र-पूर्वक अग्नि स्थापन करके सायं-प्रातः नियम से हवन किया जाता है। भारतीय संस्कृति में यज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ वैदिक धर्म का मेरुदण्ड है। अग्नि में नाना देवताओं को उद्दिष्ट कर हविष्यान्न अथवा सोमरस का 'हवन यज्ञ' के नाम से कहा जाता है। श्रौत यज्ञ का तात्पर्य वैदिक यज्ञ से है। ब्राह्मण ग्रंथों में तो यज्ञ का पूर्ण साम्राज्य है। इसका सर्वाङ्ग पूर्ण विवेचन श्रौत तथा गृह्य सूत्रों की सहायता से प्राप्त होता है। स्मार्तयज्ञ पौराणिक विधि से किये जाते हैं।

नरकों को प्राप्तकर बाद में अन्त्यजों के कुल तथा शूद्रयोनि में जन्म लेता है। अतः विशेष रूप से विशुद्धात्मा ब्राह्मणों को सभी प्रकार के प्रयत्नों द्वारा अग्नि का आधान कर परमेश्वर का यजन-पूजन करना चाहिए। द्विजों के लिए अग्निहोत्र से श्रेष्ठ कोई अन्य धर्म नहीं है। इसलिए अग्निहोत्र के द्वारा नित्य शाश्वत (पुरुष) की आराधना करनी चाहिए। जो अग्नि का आधान कर फिर आलस्य वश यज्ञ द्वारा देवता की आराधना नहीं करना चाहता, वह व्यक्ति मूढ़ होता है, उससे बात नहीं करनी चाहिए। अधिक क्या. वह मनुष्य नास्तिक होता है॥ ८-१२॥

जिसके पास सेवकों के पोषण हेतु तीन वर्ष तक के लिए पर्याप्त अथवा उससे भी अधिक (भोजन) सामग्री विद्यमान हो, वह सोम पान का अधिकारी होता है। सभी यज्ञों में सोमयाग सबसे श्रेष्ठ है। सोम द्वारा सोम लोक में स्थित महेश्वर देव की आराधना करनी चाहिए। महेश्वर की आराधना के लिए सोमयाग से बड़ा अथवा उसके समान कोई यज्ञ नहीं है। इसलिए सोम के द्वारा श्रेष्ठ देव की आराधना करनी चाहिए॥ १३-१५॥

## भारतीय संस्कृति में पंचमहायज्ञ का स्थान

प्राचीन भारत में प्रत्येक गृहस्थ के लिए पांच महायज्ञ करने अत्यन्त आवश्यक थे। पारिवारिक जीवन के दैनिक कार्यक्रम में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। मनु के अनुसार—

**"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।**
**होमो देवो बलिर्भूतो, नृपज्ञोऽतिथिपूजनम्॥"**

पंच महायज्ञ इस प्रकार थे—(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) पितृयज्ञ, (३) देवयज्ञ, (४) भूतयज्ञ, (५) नृयज्ञ।

**१. ब्रह्मयज्ञ**—ब्रह्मयज्ञ का तात्पर्य था वेदों के अध्ययन-अध्यापन आदि के द्वारा ज्ञान-वृद्धि में सतत् प्रयत्नशील रहना, जिससे इस संसार की समस्याओं का समाधान अधिक सरलता पूर्वक खोजा जा सके। वस्तुतः ज्ञान के उपार्जन का श्रीगणेश ब्रह्मचर्य आश्रम से ही हो जाता था, किन्तु युवावस्था की परिपक्वता के आने पर ही मौलिकतापूर्ण विचार करने की शक्ति का विकास होता था। इसी समय मानव के अन्तर्चक्षु भी अच्छी तरह से खुल जाते थे। अतः ज्ञानपिपासा

की शान्ति का सच्चा अवसर तो ब्रह्मचर्याश्रम से विद्याध्ययन समाप्त कर गृहस्थाश्रम के स्वच्छन्द वातावरण में ही मिलता था।

इस यज्ञ को गृहस्थ के लिए आवश्यक बनाने का एक उद्देश्य और भी था कि ब्रह्मचर्याश्रम से निकलने एवं गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर लेने के पश्चात् कोई यह न समझ ले कि उसके ज्ञानोपार्जन का अन्त हो गया है, जैसा कि प्रायः आजकल समझा जाता है। इस यज्ञ की महत्ता इतनी अधिक थी कि इस यज्ञ को अपनाने के कारण प्राचीन भारत ने जीवन के प्रत्येक पहलू को समझने वाले कितने ही महान् पुरुषों को जन्म दिया तथा इस यज्ञ को नियमित रूप से करने वाले कितने ही व्यक्ति अपना, अपने देश का, अपने समाज तथा समस्त मानव जाति का कल्याण कर अमरत्व को प्राप्त हो गए।

**२. पितृयज्ञ**—इसका तात्पर्य साधारणतया मृत-पितरों से सम्बद्ध तर्पण कर्म से है। इन मृत पितरों की तृप्ति अन्न-बलि आदि से मानी जाती है। इस यज्ञ के विषय में एक मान्यता यह भी है कि इसमें ऐसे कर्मों का समावेश किया जा सकता है, जिनके करने से परिवार के वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध व्यक्तियों को पूरा-पूरा सन्तोष प्राप्त हो। यह आवश्यक नहीं कि वृद्ध उस गृहस्थ के आश्रम में ही रहते हों। वानप्रस्थ आदि आश्रम में रहते हुए भी उन्हें अपनी सन्तान के कर्मों के कारण सुखी या दुःखी होना स्वाभाविक है। अतः इस यज्ञ की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि यदि घर के वयोवृद्ध एवं युवकों में किसी प्रकार की कोई विचार-भिन्नता भी हो, तो भी उनमें किसी का गृहकलह आदि न हो।

इस विचारधारा के अनुसार ऐसी व्यवस्था सम्भवतः इसीलिए की गई थी, जिससे यदि कोई युवक ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कर्तव्यों से उन्मुख होना चाहे, तो नियम के पाश में जकड़ कर उसे ऐसा करना सम्भव न रह जाये। वास्तव में तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ऋषियों द्वारा इस यज्ञ की व्यवस्था गृह-कलह आदि को दूर करने के लिए तथा पारिवारिक जीवन को आनन्द एवं सुख से परिपूर्ण बनाने के लिए की गई थी।

**३. देवयज्ञ**—स्मृतिकारों ने हवन को देवयज्ञ माना है। वैदिक ग्रन्थों में हवन या यज्ञ की महिमा का भरपूर विवरण प्राप्त होता है। **"स्वर्गकामः अग्निहोत्रं जुहुयात्"** अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाला अग्निहोत्र नामक

यज्ञ करे। इस देवयज्ञ अथवा हवन के विषय में एक विवेचन यह भी प्राप्त होता है कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धयुक्त वायु तथा जल से आरोग्य एवं रोग के नष्ट होने से सुख मिलता है। घरों में रखे हुए पुष्प, इत्र आदि की सुगन्धि में वह सामर्थ्य नहीं कि दूषित गृह-वायु को निकाल कर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सकें। क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है।

अग्नि में ऐसी सामर्थ्य है कि दूषित वायु तथा दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश करा देती है। जिस मनुष्य के शरीर से दुर्गन्ध उत्पन्न होकर वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को जितना दुःख देती है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। अतः उस पाप के निवारणार्थ उतनी ही सुगन्ध या उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए। वस्तुतः मानव संस्कृति के विकास में अग्नि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसमें पवित्रीकरण की तो इतनी अधिक शक्ति है कि गन्दी-से-गन्दी वस्तु भी इसमें पड़कर शुद्ध हो जाती है। सम्भवतः इसी तथ्य को अच्छी तरह से समझ कर ही प्राचीन ऋषियों ने देवयज्ञ के रूप में वायु शुद्धि को पंचमहायज्ञों में सम्मिलित किया था।

**४. भूतयज्ञ**—इसे बलि वैश्वदेव भी कहा जाता है। आचार्य मनु के अनुसार **"वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्। आभ्यः कुर्याद् देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥"** अर्थात् विधिपूर्वक गृह्याग्नि में वैश्वदेव के किए जाने पर ब्राह्मण प्रतिदिन इन देवताओं को हवन करे। बलिवैश्वदेव करने की विधि इस प्रकार है कि जो कुछ भी भोजन बना है, उसमें से थोड़ा-सा लेकर पाकशाला (रसोई) की अग्नि में डालना चाहिए व डालते समय कुछ विशिष्ट मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए। इसके पश्चात् लवणान्न अर्थात् शाक, दाल, चवाल, रोटी आदि छः भाग भूमि पर रखे तथा कुत्ते, पतित, पापी, श्वपच, रोगी, वायस, कृमि आदि को देवे।

इस यज्ञ को जीवन का एक आवश्यक अंग बनाने का प्रयोजन सम्भवतया यही प्रतीत होता है कि जो निराधार हैं या अन्य किसी कारण से उदर भरण करने में असमर्थ हैं, उनकी सहायता की जाये।

**५. नृयज्ञ**—इसे अतिथि पूजन भी कहा जाता था। इस यज्ञ को गृहस्थ

के कर्तव्यों में सम्मिलित करने का उद्देश्य यही रहा होगा कि प्रत्येक गृहस्थ अतिथि के प्रति अपने उत्तरदायित्व व कर्तव्य को समझे। अतिथि भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं होते थे। वे पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपट रहित तथा नित्य भ्रमणशील प्राणी होते थे। जब कोई ऐसा अतिथि घर पर आये तो गृहस्थ अत्यन्त प्रेम से उठकर नमस्कार करके उसे उत्तम आसन पर बैठाए। पश्चात् पूछे कि आप को जल या किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो कहिए। इस प्रकार उसको प्रसन्न कर, स्वयं स्वस्थचित्त होकर अतिथि की हर तरह से आवभगत करे, जिससे कि वह पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाए।

इस प्रकार इन पंच महायज्ञों का सम्पादन प्राचीन पारिवारिक जीवन का एक विशेष अंग था। इसी से वास्तविक रूप में सच्चा आनन्द प्राप्त होता था। मनु के अनुसार जो इन पांच यज्ञों को यथाशक्ति करता है, वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी सूना दोष अर्थात् जीवहत्या के पाप में लिप्त नहीं होता। तथा जो देवता, अतिथि, भृत्य, पितर व अपने-आपका निर्वपन नहीं करता, वह श्वास लेते हुए भी जीवित नहीं है। इस प्रकार आर्यों के जीवन में इन पंच महायज्ञों की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

**यज्ञ के भेद**—गृहस्थ के यज्ञ-सम्बन्धी सामाजिक तथा सार्वजनिक कर्तव्य दो श्रेणियों में विभक्त हैं—(१) प्रतिदिन के, और (२) अवसर विशेष के।

**प्रतिदिन के यज्ञ**—इनमें पंच महायज्ञों की गणना होती है।

**अवसर विशेष के यज्ञ**—इसमें पाक यज्ञ, हवि या तथा सोम यज्ञ आते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में वैदिक कर्म पांच भागों में विभक्त है—अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु तथा सोम। स्मृति एवं कल्प ग्रन्थों में स्मार्त तथा श्रौत कर्मों की सम्मिलित संख्या २१ मानी गई है, जो पाक, हवि और सोम संस्थाओं में विभक्त है।

सोम संस्था में आने वाले ७ यज्ञ यों हैं—**अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उत्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम**। सोम याग आर्यों का अत्यन्त प्रसिद्ध यज्ञ था। इसका प्रचलन पारसी लोगों में भी था। यह बहुत ही विस्तृत, दीर्घकालीन व बहुत व्ययसाध्य व्यापार था। काल गणना की दृष्टि से सोमयाग के तीन भेद हैं—एकाह (एक दिन में साध्य याग), अहीन (दो दिन से लेकर बारह दिनों तक चलने वाला यज्ञ) तथा सत्र—तेरह दिनों से

आरम्भ कर पूरे वर्ष तक तथा एक हजार वर्षों तक चलने वाला याग। सोमलता के रस की आहुति देने से यह सोमयाग कहलाता है। यह सोम रस वैदिक आर्यों का प्रधान पेय था, जिसे वे अपने इष्ट देवता को अर्पित कर स्वयं पीते थे। सोमयाग में १६ ऋत्विजों का कार्य होता था। यह वर्षान्त में किया जाता था। परन्तु पूरे जीवन में तीन बार से अधिक नहीं होता था। सोम पान करना द्विज, विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए ही था। क्षत्रिय लोग राजसूय, अश्वमेध आदि अर्थसाध्य यज्ञ करते थे।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ **यज्ञ क्रिया सम्पूर्ण रूप से एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। वैदिक** ॐ
ॐ **ऋषियों, वेद-आचार्यों एवं देवताओं के प्रति पूर्ण शुद्ध एवं** ॐ
ॐ **पवित्रता के साथ चढ़ाये जाने वाला अनुपम श्रद्धा-सुमन** ॐ
ॐ **है—'यज्ञ', परन्तु बड़े खेद की बात है कि यज्ञ-प्रक्रिया गलत** ॐ
ॐ **लोगों के हाथों में जाकर एक विकृत दूकानदारी का रूप** ॐ
ॐ **धारण कर चुकी है। धर्म के नाम पर लूटमार की आपाधापी** ॐ
ॐ **चल पड़ी है। जानकार विद्वानों की कमी हो गई है।** ॐ
ॐ **—डॉ. द्विवेदी** ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

अब शास्त्र-पद्धति को छोड़कर मनमाने ढंग से यज्ञों का आयोजन होने लगा है, फलतः यज्ञ के शुभ फल नहीं मिलते। कुछ यज्ञाचार्य ऐसे भी हैं, जो अपने साथ कार्य करने वाले अन्य ब्राह्मणों को मजदूर से अधिक कुछ नहीं समझते। ब्राह्मणों का भी शोषण हो रहा है। यजमान तो भरपूर दक्षिणा प्रधान आचार्य को दे रहा है पर आचार्य भारी दक्षिणा स्वयं हड़प कर विद्वान् ब्राह्मणों को नाममात्र किसी दैनिक अनपढ़ कारीगर की मजदूरी से भी कम दक्षिणा देता है। कई जगह ऐसी विषमता भी देखी कि ब्राह्मण अपने कर्म एवं संस्कारों से च्युत हैं। छिप-छिपकर, सिगरेट-शराब का पान करते हैं तथा प्रातःकाल आडम्बरी वस्त्र पहनकर यज्ञ में बैठ जाते हैं। ज्यादातर भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में ऐसे ब्राह्मणों का ही बोलबाला है। छद्मवेशी एवं संस्कार विहीन ऐसे ब्राह्मण ही ब्राह्मणों के शत्रु होते हैं।

इसमें एक-दो कटु अनुभव हुए जिन्हें जनहित में यहां दे रहा हूं ताकि स्वाभिमानी ब्राह्मण एवं बुद्धिमान यजमान घटनाओं से सबक ले सकें।

# लक्षचण्डी महायज्ञ-फलौदी

दिनांक 30-08-92 से 06-10-92 तक जोधपुर जिले के फलौदी ग्राम में लक्षचण्डी महायज्ञ का आयोजन किया गया। जिसमें 1008 ब्राह्मणों का वर्णबन्धन किया गया तथा 108 यज्ञकुण्ड बनाए गये एवं प्रधानकुण्ड की जगह 101 हाथ का विशाल चक्राब्ज कुण्ड (कुआं) बनाया गया। यज्ञ में लाखों रुपये खर्च हुए और करोड़ों की आवक हुई। यज्ञ के बारे में बड़ा भारी भ्रामक प्रचार किया गया, खूब हो-हल्ला मचाया गया। कई बड़े-बड़े राजनेता एवं शंकराचार्य तक इस यज्ञ में उपस्थित थे। पर न तो राजनेता, न शंकराचार्य एवं न ही आम जनता कर्मकाण्ड की सूक्ष्मता एवं यज्ञतत्त्व के रहस्य को समझती है। आम ब्राह्मण जो यज्ञकर्म के साक्षी थे, वे तो मात्र दुर्गापाठ पढ़ना ही जानते थे।

करोड़ों रुपयों की आवक वाले इस लक्षचण्डी यज्ञ में भी ब्राह्मणों का जमकर शोषण हुआ। एक दुर्गापाठ की कीमत लगभग सात रुपये आंकी गई। कुण्डाचार्यों के श्रुची, श्रुर्वा आसन, पंचपात्र, प्रणिता-प्रोक्षणी प्रधान आचार्य अपने साथ ट्रक में लादकर ले गये। यज्ञ कुण्ड पर आने वाली भेंट प्रधान आचार्य रोज़ ब्राह्मणों से छीन लेते थे। यज्ञ संचालक पूनासर बाबा श्री रामदास हाथ में डण्डा लिये घूमते। बात-बात पर ब्राह्मणों को डांटना, उनका तिरस्कार करना तो एक साधारण बात थी।

मैं स्वयं वहां उपस्थित था। मैंने देखा कि यज्ञ प्रारम्भ होने पर सामूहिक कुशकाण्डिका नहीं हुई, देवी पात्रोच्छादन पूजा नहीं की गई। प्राण-प्रतिष्ठा का प्रयोग नहीं किया गया। अन्तर्मातृका एवं बहिर्मातृका का न्यास नहीं किया गया। यज्ञ के तर्पण-मार्जन पूर्णाहुति के पहले कर दिए गये, जो कि यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद होते हैं। तर्पण-मार्जन लोहपात्र में किये गए। लोहपात्र में किया गया कर्म अशुद्ध एवं राक्षसों को प्रिय होता है, देवों को नहीं। चक्राब्ज कुण्ड जो कुआं खोदा गया, उसकी खात, कण्ठ नाभि व मेखलाऐं शास्त्र विधि से रंग में न होकर, लाल रंग का वारनिस किया गया था। दुर्गा (भगवती) की प्रधान पीठ पर चतुर्लिंगतोभद्र बनाया गया जो गलत था। प्रधान

पीठ, प्रधान यज्ञकुण्ड से बहुत छोटी थी। प्रधानपीठ की दृष्टि यज्ञकुण्ड पर नहीं थी। प्रधानकुण्ड यज्ञकुण्ड से नीचे मात्र चार फीट की थी, जबकि प्रधान कुण्ड एक सौ एक हाथ का था। प्रधानपीठ पर दुर्गासप्तशती के जिस यन्त्र का पूजन किया गया वह सफेद कागज पर बना हुआ, कांच में फ्रेम था। दुनिया का हर व्यक्ति जानता है कि कागज, एल्युनियम एवं कांच पर प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती। पूर्णाहुति के दिन तगारी भर-भरकर शाकल्य डाली गई। समस्त होम-मुद्रायें लोप हो गईं। फलतः शाकल्य कच्ची रह गई, जली ही नहीं। चक्राब्ज यज्ञ की मेखलाओं पर बैठकर ब्राह्मण हवन कर रहे थे। मेखलाओं पर बैठकर हवन करना कहां, किस शास्त्र में लिखा हुआ है? ऐसी अनेक त्रुटियां यदि गिनाई जाएं तो इस पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है परन्तु यहां त्रुटियां गिनवाना तो लक्ष्य है नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊंची दूकान का फीका पकवान। तथाकथित यज्ञसम्राट भी जिन्होंने सैकड़ों यज्ञ कराये होंगे, पर खेद के साथ लिखना पड़ता है कि वे एवं उनका परिवार भी यज्ञ की क्रियाओं के समग्र रूप से सही जानकार नहीं थे। इसी प्रकार की अनेक पीड़ाओं से उत्पीड़ित होकर जनहित में यह पुस्तक लिखी जा रही है।

इस लक्षचण्डी महायज्ञ में भाग लेने वाले श्रीमाली ब्राह्मणों पर तो जैसे मुसीबत का पहाड़ ही टूट पड़ा। यज्ञ के चार दिन तक उन्हें भोजन नहीं दिया गया। इसका मुख्यकारण यह था कि श्रीमाली ब्राह्मण दूसरों के हाथ का पकाया भोजन नहीं खाते, अपना भोजन स्वयं बनाकर, पूर्णशुद्धता के साथ, पवित्र वस्त्र (अबोटियां) पहनकर मन्त्रपूर्वक ही भोजन करते हैं। खान-पान की शुद्धता की दृष्टि एवं परम्परागत मर्यादाओं के हिसाब से श्रीमाली ब्राह्मण कादां-प्याज, लहसुन नहीं खाते, बीड़ी-सिगरेट नहीं पीते। **इसी परम्परा-निर्वाह के कारण श्रीमाली ब्राह्मण सभी ब्राह्मणों के गुरु एवं सभी ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ एवं अग्रपूज्य माने जाते हैं।** श्रीमाली ब्राह्मण, यज्ञ समिति एवं प्रधान आचार्यश्री ब्रजमोहन व्यास (अजमेर) के निमन्त्रण पर लक्षचण्डी महायज्ञ स्थल पर पहुंच गये पर जब उन्हें पता चला कि बीड़ी-सिंगरेट पीने वाले अम्बेडकर-ब्रांड ब्राह्मणों के साथ पंक्ति भोजन करना पड़ेगा तो उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया।

यज्ञ के आचार्य एवं व्यवस्थापक कमेटी की एक मीटिंग बैठी, जिसमें निर्णय लिया गया कि श्रीमाली ब्राह्मणों के लिए अलग से भोजन-व्यवस्था

नहीं हो सकेगी। उनको यहां रहना हो तो रहें, या चले जाएं। इस महायज्ञ से 200 से 225 के लगभग श्रीमाली ब्राह्मण थे। जोधपुर एवं मेवाड़ से आये श्रीमाली ब्राह्मणों ने तो अम्बेडकर ब्रांड के साथ पंक्ति-भोजन में हिस्सा ले लिया परन्तु लूणीकण्ठा क्षेत्र के गांवों से आये श्रीमाली ब्राह्मणों ने यह निर्णय लिया कि हम अपने सिद्धान्तों का निर्वाह करते हुए महायज्ञ को निर्विघ्न पूरा करेंगे तथा डेढ़ माह तक भोजन का त्याग करके, मात्र दूध या फलाहार लेकर, यज्ञ पूरा करेंगे।

यज्ञ कमेटी एवं प्रधान आचार्य अपनी जिद्द पर अड़े रहे। फलतः चार दिन तक श्रीमाली ब्राह्मणों ने भोजन नहीं किया। पूरे फलौदी शहर में यह चर्चा बिजली की तरह फैल गई कि श्रीमाली ब्राह्मण अन्न ग्रहण नहीं कर रहे हैं, अनर्थ हो जायेगा। अशुभ की आशंका से फलौदी नगरवासी चिन्तित हो उठे। अन्त में व्यवस्थापक कमेटी को झुकना पड़ा और श्रीमाली ब्राह्मणों को अलग रसोई बनाने की अनुमति एवं सामग्री देनी पड़ी। इस एक उदाहरण से आम जनता को यह समझना चाहिए कि कभी भी असहिष्णु, पूज्य-अपूज्य में भेदभाव न जानने वाले व्यावहारिक ज्ञान से शून्य अनधिकारी व्यक्ति को प्रधानपीठ पर नहीं बिठाना चाहिए।

## अश्वमेध यज्ञ का मिथ्या आडम्बर : वैदिक मान्यताओं पर कुठाराघात

सप्तसरोवर, शान्तिकुंज, हरिद्वार, 'गायत्री परिवार' द्वारा आयोजित 'अश्वमेध' यज्ञ का झूठा आडम्बर इन दिनों खास चर्चा का विषय बना हुआ था। गायत्री परिवार ने 'अश्वमेध' यज्ञ के नाम को लेकर एक नेटवर्क कार्यक्रम बनाया है जिसका मुख्य लक्ष्य बीस अरब रुपया एकत्रित करना है, ऐसा लक्ष्य उन्होंने अपनी पत्रिका में भी स्पष्ट रूप से प्रकाशित भी किया है। अब तक ये लोग सात-आठ तथाकथित अश्वमेध यज्ञ कर चुके हैं तथा इस वर्ष १९९४ में कुल १६ अश्वमेध यज्ञों के कार्यक्रमों एवं तिथियों की घोषणा कर चुके हैं। विडम्बना यह है कि अब तक जहां-जहां इन्होंने 'अश्वमेध' किया, ठीक उन्हीं जगह रेखांश-अक्षांश पर भूकम्प आये। जन-जन की हानि हुई व अशान्ति फैली। इसके सारे आंकड़े गुजरात के वैदिक विद्वान् एवं कथाकार पं. चन्द्रशेखर शास्त्री ने एकत्रित कर प्रकाशित किये तथा अनेक समाचारपत्रों ने इस बात

को स्वीकार कर वरीयता के साथ सभी तथ्यों को प्रकाशित भी किया है।

अभी हाल ही में २९ नवम्बर, १९९३ को बड़ौदा के ऐसे ही अश्वमेध यज्ञ का बृहत् नाटक किया गया जिसका स्थानीय वैदिक विद्वानों ने जमकर विरोध किया। पं. चन्द्रशेखर शास्त्री ने स्थानीय समाचारपत्रों में घोषणा की कि बड़ौदा में यज्ञ हुआ है तो फिर भूकम्प आयेगा। प्रकृति रुष्ट होगी। प्रधान यजमान पीठ पर बैठने वाले पर विपत्ति आयेगी तथा यज्ञ प्रेरक (मुख्य आयोजक) की शीघ्र मृत्यु होगी। ये घोषणायें गुजरात राज्य के सभी समाचार पत्रों में वरीयता के साथ छपीं। शास्त्री जी ने **'अश्वमेध'** पर स्वतन्त्र पुस्तक में भी ये सब बातें लिखीं एवं वितरित कीं। यही हुआ, अश्वमेध यज्ञ के ठीक ९ दिन बाद गोवा में भूकम्प आया। गोवा ७४.५७ पूर्व रेखांश पर स्थित है तथा इसी के बिलकुल सीध में ७६/१५ पूर्व रेखांश पर बड़ौदा स्थित है। शास्त्री जी की भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। सूरत में प्लेग के रूप में महामारी आई। यज्ञ प्रेरक भगवती देवी का निधन हो गया तथा अश्वमेध यज्ञ की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लग गया?

इसके पूर्व लखनऊ में २९ अक्टूबर, १९९३ को तथाकथित अश्वमेध हुआ। उसके ठीक ४८ घंटे बाद जबलपुर में भूकम्प आया। जबलपुर ७९/५८ पूर्व रेखांश पर स्थित है तथा लखनऊ ८०/५५ रेखांश पर स्थित है। इन्हीं दिनों इसी रेखांश पर स्थित विश्व के अन्य शहरों में भी भीषण प्राकृतिक दुर्घटनाएं हुईं।

१८-०२-९३ भिलाई (मध्यप्रदेश) में अश्वमेध हुआ। भिलाई उत्तर २१° अक्षांश पर है तथा १९ उत्तर अक्षांश पर स्थित बम्बई में १२-०३-१९९३ को भारी बम विस्फोट हुआ। अश्वमेध यज्ञ के ठीक २५ दिन बाद उसी रेखांश पर घटना घटित होना कोई संयोग नहीं।

इस शताब्दी की सबसे बड़ी भूकम्प त्रासदी लातूर-उस्मानाबाद में हुई। क्यों हुई? गुना (मध्यप्रदेश) में ३ अप्रैल, १९९३ को अश्वमेध हुआ तथा जून, १९९३ को जयपुर में अश्वमेध हुआ। गुना ७७/१९ पूर्वी रेखांश पर स्थित है तथा उस्मानाबाद भी ७६/३६ पूर्वी रेखांश पर स्थित है। यज्ञ के ठीक ५ मास २७ दिन बाद यहां भूकम्प आया।

यह घटना भारत में ही नहीं, विदेशों में भी हुई। टोरन्टो (उत्तरी अमेरिका) उत्तरी अक्षांश ४३/३९ पर स्थित है। यज्ञ प्रारम्भ किया और उसी दिन १३

जुलाई, १९९३ को 'होक्काईगो' (जापान) में भूकम्प आया जो कि विश्व एटलस के ठीक ४३ रेखांश उत्तर में स्थित है। इन सभी घटनाओं को मात्र संयोग कहकर नहीं टाला जा सकता।

आइए, अब इस बात की भी शास्त्रीय चर्चा कर लेनी चाहिए कि तथाकथित अश्वमेध महायज्ञ के नाम से जो रुपया एवं प्रसिद्धि गायत्री परिवार वाले अर्जित कर रहे हैं उस यज्ञ के नियम क्या हैं?

सबसे पहली व प्रमुख बात यह है कि अश्वमेध यज्ञ केवल चक्रवर्ती सम्राट ही कर सकता है। यह केवल बसन्त ऋतु एवं चैत्र मास में ही होता है। दो माह तक चलता है तथा कलियुग में इस यज्ञ का एक ध्वनि से शास्त्रों ने निषेध किया है। अर्थात् कलियुग में अश्वमेध यज्ञ होता ही नहीं, पूर्णतः वर्जित है। गायत्री परिवार वाले प्रतिमाह एक-दो के हिसाब से वर्ष भर में १८-२० अश्वमेध यज्ञ के नाम से छल-प्रपंच करते हैं। ज्योतिष-शास्त्र और मुहूर्त की बात छोडिए। साधारण-से-साधारण मन्द बुद्धि व्यक्ति भी जानता है कि यज्ञादि शुभ-कर्म मुहूर्त से प्रतिपादित होता है। श्रावण-भाद्रपद मास में यज्ञ, विवाह, शुभ कार्य नहीं होता, पर ये लोग इन दिनों में मलमास एवं त्याज्य संक्रान्तियों-नक्षत्र में भी हवन करते हैं। तात्पर्य स्पष्ट है। इन्हें शास्त्र वचन, मर्यादा एवं वैदिक रीति से कुछ लेना-देना नहीं? ये केवल वैदिक यज्ञ के नाम का सहारा लेकर धन व यश की प्राप्ति हेतु झूठा आडम्बर करते हैं। यदि इनमें जरा भी सत्यता है तथा वेद-विद्या, यज्ञ-मीमांसा एवं कर्मकाण्ड का अंश मात्र भी ज्ञान रखते हैं तो मेरी अश्वमेध यज्ञकर्ता विद्वानों को इस सम्पादकीय के माध्यम से खुली चुनौती है कि वे सार्वजनिक शास्त्रार्थ करें। गायत्री परिवार द्वारा उठायी गई शंकाओं का उत्तर इस प्रकार है।

## अशास्त्रीय अश्वमेध यज्ञ प्रश्नों के दायरे में

**प्र.१. हमारे द्वारा आयोजित यज्ञों का विरोध आसुरी प्रवृत्ति नहीं है क्या?**

उ.—राजा बलि के अश्वमेध यज्ञ का भंग, भगवान् वामन ने क़िया था। राजा बलि असुर था। दक्ष-प्रजापति के (वाजपेय-बृहस्पति) यज्ञ का ध्वंस करने वाले भगवान शंकर को भी असुर बना दोगे क्या? मेघनाद ने आसुरी यज्ञ करना चाहा पर हनुमान जी ने उसको रोका। अवैदिक एवं अशास्त्रीय प्रयोग होने पर विद्वान् लोग चुपचाप नहीं बैठ सकते।

**प्र.२. अश्वमेध के कार्यकर्ताओं का कहना है, वे पुरानी मान्यताओं से परे होकर क्रांति करना चाहते हैं। क्या अब भी पुराने खोखले रीति-रिवाजों में पड़े रहना उचित है?**

**उ.**—मान्यताओं को बदला जा सकता है। रूढ़ियों को तोड़ा जा सकता हैं। वेद-शास्त्रों के सिद्धांतों को नहीं। विज्ञान में नये-नये आविष्कारों के लिए स्थान हैं, ऋषियों के वेद-विज्ञान में आविष्कार की नहीं, Wisdom की आवश्यकता है। पर इसके लिए प्रज्ञा की आवश्यकता है जो सभी के पास नहीं हुआ करती।

**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा**
**शास्त्रं तस्य करोति किम्।**
**लोचनाभ्यां विहीनस्य**
**दर्पणः किं करिष्यति॥**

जिनके पास अपनी बुद्धि Wisdom न हो, उन्हें शास्त्र किस काम का? अंधे को दर्पण से क्या?

**प्र.३. अश्व का अर्थ वीर्य होता है। कुछ विद्वानों ने घोड़ा ही अर्थ लिया है, अगर वे समझ से काम लें तो विरोध नहीं रहेगा। आपका क्या कहना है?**

**उ.**—देखो भाई! अश्व के और भी बहुत अर्थ हैं। वेदों में भिन्न-भिन्न अर्थों में अश्व शब्द आया है। घोड़ा ही अश्व शब्द का अर्थ नहीं है, घोड़ा भी है। प्रतिवादियों ने भी इसे स्वीकृति दी है। तभी तो जगह-जगह घोड़े लगाये। आगे हमने अश्व के स्वरूप और अर्थ लिखे हैं। अथर्ववेद में भी इसका सुन्दर वर्णन आया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में तो बहुत विस्तार है। सब कुछ लिखने लगें, तो ग्रंथ का कलेवर बहुत बड़ा हो जायेगा। यहां आपको अर्थववेद का एक मंत्र सुनाते हैं, इसे समझो!

**कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः**
**सहस्राक्षो अजरो भूमिरेताः**

**—अथर्ववेद. का. १९ सू. ५३ मं.**

यहां काल को 'अश्व' कहा गया है। वेद लिखता है—काल रूपी घोड़ा विश्व रूपी रथ को खींचता हैं। इसकी सात किरणें हैं, हजार आंखें हैं, वह

जरा रहित और बहुत वीर्यवान है, उसपर ज्ञानी कवि चढ़ते हैं, उसके चक्र सब भुवन हैं। तात्पर्य इतना ही कि 'अश्व शब्द' भिन्न-भिन्न अर्थों में आया है। पर अश्व शब्द का अर्थ छापने से अश्वमेध का अधिकार प्राप्त नहीं होता। Prime-minister का अर्थ छापनेवालों को Prime-minister के अधिकार नहीं मिल जाते। अश्व का अर्थ छापने से न तो उन्हें अश्वमेध का अधिकार मिल जाता है, न अश्वमेध का फल। जो कर्म किया ही नहीं उसका फल कैसे मिलेगा?

**प्र.४. अश्वमेध का नाम लेकर व्यसनमुक्ति जैसे जो सत्कार्य हो रहे हैं, इसका विरोध क्यों करते हो? क्या आसुरी वृत्ति की बलि नहीं देनी चाहिए?**

**उ.**—सत्कार्य का विरोध विद्वान् तो क्या कोई भी सज्जन नहीं करेगा। व्यसन-मुक्ति अच्छा काम है, पर उसे अश्वमेध तो नहीं कहा जायेगा। किसी अंधे को रास्ता पार करवाना अच्छा काम है, पर वह अश्वमेध तो नहीं हो जायेगा। एक बात और ध्यान में रखो, कि व्यसनमुक्ति चाहनेवालों को तम्बाकू का उत्पादन करने वाले से, बेचने वाले तक सभी ने दान दिया है। वह भी साधारण नहीं है। अतः व्यसनमुक्ति की इच्छा भले ही रखो पर एक करोड़ लोगों को व्यसनमुक्त करने का झूठा दावा तो मत करो। रही बात आसुरी वृत्ति के बलि की, सो तो ज्ञानाग्नि में होता है। इसके लिए कुंडों की आवश्यकता नहीं है। अगर कुंड बनाने से आसुरी वृत्ति नष्ट हो जाती तो वह तो तुम वर्षों से कर रहे हो। बड़ौदा से पूर्व भी ८ अश्वमेध कर चुके हो। उसमें आसुरी वृत्ति की बलि नहीं दी थी? दे दिया है, तो पुनः क्या आवश्यकता है? आसुरी वृत्ति पुनःजीवित हो उठी क्या? अगर एक मास में ही आसुरी वृत्ति खड़ी हो जाती है तो समय-शक्ति और राष्ट्र की संपत्ति क्यों बार-बार नष्ट करते हो?

**प्र.५. दुर्घटनाओं को अश्वमेध के साथ क्यों जोड़ दिया जाता है? क्या, उसके पूर्व भूकंपादि दुर्घटनायें नहीं होती थीं? उसमें तो वैज्ञानिक कारणं हैं, क्या इसे भी नहीं मानोगे?**

**उ.**—वैज्ञानिक कारण तो हर एक के पीछे लगा रहता है। क्या वर्षा का कारण अवैज्ञानिक है? फिर इसे यज्ञ के साथ क्यों जोड़ते हो? क्या पुत्र-प्राप्ति का कारण वैज्ञानिक नहीं है? फिर उसे 'पुत्रकामेष्टि' यज्ञ से क्यों जोड़ते

हो? अतः याद रखो—धर्म भी विज्ञान ही है। धर्म तो तुम्हारे इस भौतिक विज्ञान से भी कहीं उपर का विज्ञान है। अगर अच्छे (शास्त्रीय) यज्ञों का परिणाम अच्छा मानते हो तो अशास्त्रीय यज्ञों के विपरीत परिणामों को अस्वीकार क्यों करते हो? अगर यज्ञ के फल को ही अस्वीकार करते हो तो यज्ञ क्यों करते या करवाते हो? एक और प्रश्न भी तुमने पूछा है, कि अश्वमेध के पूर्व भी क्या दुर्घटनाए नहीं होती थीं? हम कब मना करते हैं? पर हम पूछना चाहते हैं, क्या इसके पूर्व भी अशास्त्रीय कार्य नहीं हुए हैं? क्या इसके पूर्व भी पाप नहीं हुआ है? क्या तथाकथित अश्वमेध के पूर्व कोई अधर्म नहीं होता था? अगर दुष्कर्म होते रहे तो दैवी प्रकोप भी होंगे। कई बार सर्जक को इच्छा से भी विध्वंस करना पड़ता है। अतः आपत्तियों में दुष्कर्म को कारणभूत मानना अतार्किक या अवैज्ञानिक नहीं है तथाकथित अश्वमेध के बाद जो दुर्घटनाएं हुई हैं, इसका थोड़ा विचार करो।

(१) ७६/३६ पूर्व रेखांश पर स्थित ओस्मानाबाद-लातूर में भूकंप हुआ दिनांक २९-३०-९-९३।

गुना में (मध्यप्रदेश) अश्वमेध के ठीक ५ मास २७ दिन बाद उसी रेखांश के समीप (गुना) ७७/१९ पूर्वी रेखांश पर भी भयानक भूकंप आया।

(२) १२-३-९३ को बम विस्फोट बंबई में हुआ। बंबई १९° उत्तरी अक्षांश पर है। १८-२-९३ को भिलाई (मध्यप्रदेश) में अश्वमेध हुआ जो २१° उत्तरी अक्षांश पर है। अश्वमेध के ठीक २५ दिन बाद।

(३) Toronto (North America) ४३/३९° उ. अक्षांश पर है। उसी अक्षांश पर (४३/०० उ. अक्षांश) Hokkaido (Japan) भी है। Toronto में अश्वमेध का आरंभ (भूमि-पूजन) ही हुआ था कि 13 July, 93 को Hokkaido में भूकंप हुआ।

(४) लखनऊ में २७-२८-२९ अक्टूबर, ९३ को तथाकथित अश्वमेध हुआ। ठीक ४८ घंटे के बाद जबलपुर में (७९/५८° पू. रेखांश) भूकंप आया। लखनऊ ८०/५५ पू. रेखांश पर आया हुआ है। विश्व में इसी अक्षांश पर बहुत-सी दुर्घटनाएं हुई हैं।

(५) बड़ौदा ७३/१३° पूर्व रेखांश पर है। गोवा ७४/५७° रेखांश पर है ८-१२-९३ गोवा में भूकंप। २९-११-९३ को बड़ौदा में अश्वमेध के ठीक ९ दिन बाद भूकंप आया।

**प्र. सभी अवतारों ने अश्वमेध यज्ञ किया था। क्या भगवान् बुद्ध और आद्य शंकराचार्य ने भी अश्वमेध किया था?**

**उ.**—तथाकथित अश्वमेध की पत्रिकाओं में ऐसा छाप दिया था और भी नाम छाप दिये होते। कपिलदेव और श्रीदेवी का नाम भी छाप देना था। वे भी तो अपने-अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध पुरुष थे। प्रसिद्ध पुरुषों की नामावली छाप रहे हो क्या? प्रसिद्ध लोगों की यादी बना रहे हो या अश्वमेध के कर्ताओं के नाम? मत्स्यावतार ने अश्वमेध किया था, कि नृसिंह अवतार ने? विद्वान् लोग हंसेंगे। बुद्ध और शंकराचार्य से भी अश्वमेध करवा लिया। सत्यनारायण की कथा भी करवा लेते। ईसा और मुहम्मद साहब से भी अश्वमेध करवा लिया होता। वह ना भी नहीं बोलते। बुद्ध दर्शन तो तुम्हारी समझ के बाहर है। बुद्ध का थोड़ा-बहुत परिचय भी तो पा लेना था। एक श्लोक भी पर्याप्त हो जाता—सुनो!

**केशव धृतबुद्ध हरे॥ ९॥**

*—गीत गोविन्दे प्रथमसर्गः*

यज्ञविधेः ऋतुविधान संबंधि

**श्रुतिजांत वेदजातं वेदवाक्य समूहं निंदसि दूषयसि न तुसर्वमित्यर्थः। सोऽपि किमति निंद्यते इत्यत आह, कष्टं, दयायां वा दर्शितः बोधितः पशूनां घातो वधो येन दृशं। वेदोऽपि पशुनां घातं बोधयती तियतः अहो कष्टमित्येष निंदयसीति भावः।**

रही बात भगवान शंकराचार्य के अश्वमेध की सो उनके ही शब्दों में पढ़िये। गीता भाष्य के उपोद्घात में ही आप स्वयं लिखते हैं, गीता शास्त्र का प्रयोजन परमकल्याण है। वह कैसे प्राप्त होगा?

**सर्वकर्मसंन्यास पूर्वकाद् आत्मज्ञाननिष्ठारूपाद् धर्माद् भवति।**

जब सर्वकामों का संन्यास लिख दिया, तब अश्वमेध को लिखने की क्या आवश्यकता थी? बहुत बकवास करने वाले किसी अपराधी को 'शिरच्छेद' का दण्ड देने के बाद जिह्वाच्छेदन करने की आवश्कता नहीं रह जाती। इस प्रकार के कर्म संसारी नहीं। Freezer की आवश्यकता हिमालय में नहीं होती। दीप की आवश्यकता हमको है, सूरज को नहीं। अवतार लेकर आने वाले राम तो पथप्रदर्शक हैं। राम राजा हैं, संन्यासी नहीं।

**प्र.७. विद्वानों को निमन्त्रण नहीं दिया, अतः द्वेष के कारण विरोध करते हैं?**

**उ.**—बेचारे! प्रमाण या तर्क तो दे नहीं सकते, कम-से-कम आक्षेप करके ही मन हलका कर लेने दो। अगर इसका भी हमने खण्डन कर दिया, तब तो बेचारे बेमौत ही मारे जायेंगे। पर एक प्रश्न अवश्य पूछ लेते हैं। निमंत्रण विद्वानों को नहीं देते, अविद्वानों को ही देते हैं, क्यों?

**प्र.८. अश्वमेध की तैयारी से पहले सावधान करना था? ये सब पण्डित पहले सो गये थे क्या?**

**उ.**—सावधान करना चाहिए—इसे तो प्रतिवादी भी मानता है पर अश्वमेध शास्त्रीय होता, सत्य होता तो सावधान करना ही क्यों पड़ता? तुम्हारे इस आक्षेप ने तो तुम्हें ही झूठा बना दिया। तुमने ही अपना भांडा फोड़ दिया। तुम्हारी पोल खोलने का कष्ट भी हमें नहीं उठाना पड़ा। अब प्रश्न सावधान करने का नहीं, प्रश्न है पहले सावधान क्यों नहीं किया? हम कहते हैं, अगर पहले सावधान कर देते तो क्या तुम मान जाते? अगर हां कहते हो, तो जहां यज्ञ करने वाले हो वहां बन्द कर दो। और अगर उत्तर 'ना' है तो पहले सावधान क्यों नहीं किया? अब तक कहते थे? ये सब पंडित पहले कहां गये थे? इत्यादि।

**प्र.९. कलियुग में संन्यास, समुद्र पार की यात्रा का भी निषेध है सो इसको क्यों नहीं मानते?**

**उ.**—धर्म शास्त्र ने इसका समाधान लिख दिया है।

**कलियुगे संन्यासनिषेधस्त्रिदंडि संन्यास पर इति प्राहः**

*—धर्म सिन्धुः*

कलियुग में जो संन्यास का निषेध है, वह त्रिदण्ड संन्यास के लिए है—यह प्राचीन शास्त्र कहते हैं। देवल ऋषि का मत है कि—

**यावद्वर्ण—विभागोस्ति**
**यावद्वेदः प्रवर्तते।**
**संन्यासं चाग्निहोत्रं च**
**तावत्कुर्यात्कलौ युगे॥**

अर्थात् जब तक वर्ण-विभाग और वेद प्रवर्तमान हैं तब तक संन्यास

ग्राह्य है। क्या अश्वमेध के लिये ऐसा कोई आदेश है? पर तुम्हें तो प्रमाण और आदेश की आवश्यकता ही नहीं है। जब तुम्हारे गुरु ने ही प्रणाली में गोलमाल की है तो तुम कैसे चूकोगे? रही बात समुद्र-यात्रा की सो उसमें व्यक्ति के लिए नहीं, समुद्र के लिए निषेध है। फिर भी विद्वानों ने उसका प्रायश्चित्त कहा है। आप तो प्रायश्चित्त के बजाये पुनरावर्तन करते हो!!

**प्र.१०. सच्चे हृदय से यज्ञ-यागादि में मन्त्र बोलने में क्या आपत्ति है?**

**उ.**—सच्चे हृदय से दांत का डॉक्टर, हार्ट का ऑपरेशन करे तो क्या आपत्ति है? सच्चे हृदय के साथ विषय का ज्ञान और अधिकार भी आवश्यक है। केवल सच्चा हृदय पर्याप्त नहीं होता।

**प्र.११. क्या यज्ञ करने का ठेका विद्वान् ब्राह्मणों ने ही ले रखा है?**

**उ.**—हमारे एक मित्र हैं। बड़ा रंगीन मिजाज है उनका। हर बात को मजाक में ही ले लेते हैं। हंसी-मजाक से उनका बड़ा पुराना नाता है। वह खड़े थे चौराहे के पास। अश्वमेध के कार्यकर्ता अपना कुछ कार्य कर रहे थे। अपने स्वभाव के अनुसार वह जिज्ञासु बनकर वहां पहुंच गये। कार्यकर्ताओं से थोड़ी-बहुत चर्चा चली। कार्यकर्ता जोश में आ गये, ८-१० की संख्या में जो थे। एक ने कहा—क्या ब्राह्मणों ने ही ठेका ले रखा है यज्ञ का? क्या ब्राह्मण शराब नहीं पीते? मांस नहीं खाते? उस मित्र ने कहा—मैं ब्राह्मण नहीं हूं। तो तुम अश्वमेध का विरोध क्यों करते हो? कार्यकर्ताओं ने पूछा। उस मित्र ने पूछा, क्या ब्राह्मण ही इस यज्ञ का विरोध करते हैं? कार्यकर्ताओं ने कहा—विशेष करके ब्राह्मण ही विरोध किया करते हैं। तो फिर तुम कौन हो? हमारे मित्र ने पूछा। दो-चार कार्यकर्ताओं ने पीछे कुरते के नीचे से जनेऊ निकालते हुए कहा—देखो, हम भी ब्राह्मण हैं। सच्चे ब्राह्मण। हमने भी जनेऊ पहन रखा है। हमारे मित्र ने कहा—भले आदमी, 'ताज' पहन लेते तो बादशाह बन जाते। मुकट पहन लेते तो राजा बन जाते। डोरे-धागों से क्या?

मुकट धारण करने से कोई सम्राट नहीं बन जाते। रामलीला हो सकती है—कार्यकर्ताओं की मुख-मुद्रा देखकर वह जल्दी रवाना हो गये। मेरे पास आकर जोर-जोर सें हंसने लगे। मेंने पूछा क्या हुआ? कहने लगे, प्रभु की कृपा से बच गया। पीले वस्त्र वाले लाल आंखें दिखा रहे थे। स्वाभाविक ही है, सत्य को हर कोई पचा नहीं सकता।

**प्र.—वैदिक अश्वमेध और गायत्री परिवार द्वारा संचालित अश्वमेध में क्या अन्तर है?**

उ.—वैसे तो बहुत-सी बातें कर्मकाण्ड एवं कुण्ड-सिद्धि को लेकर अशास्त्रीय हैं पर मोटे तौर पर निम्न १५ बातें अखरती हैं।

## वैदिक अश्वमेध

१. चक्रवर्ती सम्राट को ही अधिकार था।

२. वेदमान्य ग्रीष्म या बसन्त ऋतु में यज्ञ सम्पादित होते थे, तथा मुहूर्त देखकर यज्ञ किये जाते थे।

३. अश्वमेध-श्रुति प्रतिपादित मन्त्रों एवं सम्पूर्ण विधि से होता था।

४. विद्वान् ब्राह्मण ही यज्ञ करवाते थे।

५. ब्राह्मणों को दक्षिणा नियमानुसार दी जाती थी।

६. विद्वान् ब्राह्मणों का सत्कार-पूजन होता था।

७. कल्पसूत्र और ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर शास्त्रीय विधि से यज्ञ किया जाता था।

८. अश्वमेध के अश्व को मेध्य (पवित्र) समझा जाता था।

९. यज्ञकर्ता दान देता था।

११. अश्व शास्त्रीय रीति से छोड़ा जाता था।

१२. ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, दो बार अतिरात्र, अभिजित, विश्वजित आप्तोर्याम अश्वमेध के उत्तरकाल में सम्पादित होते थे।

१३. कन्या, रजस्वला स्त्री, सगर्भा स्त्री आहुति नहीं देती थीं।

१४. मन्त्र न जानने वाला तथा बालिश, मूर्ख आहुति देने का अधिकारी नहीं समझा जाता था।

१५. पुत्र-प्राप्ति, दिग्विजय तथा विश्वकल्याण का उद्देश्य रहता था।

## तथाकथित अश्वमेध

१. गायत्री परिवार मात्र अपने को ही अधिकारी समझता है।

२. अनुकूलता और फण्ड का ध्यान रखकर यज्ञ किया जाता है। यज्ञों का कोई मुहूर्त नहीं।

३. केवल गायत्री मन्त्र के आधार पर यज्ञ किया जाता है। विधि का ज्ञान किसी को नहीं।

४. पीला वस्त्र ही अधिकारी का लक्षण माना जाता है। अविद्वान् शूद्र यज्ञ करवाते हैं।

५. दक्षिणा शून्य इस यज्ञ में केवल सहायता ली जाती है तथा ब्राह्मणों का तिरस्कार किया जाता है।

६. विद्वानों की उपेक्षा (अज्ञान प्रकट होने के भय से) तथा ब्राह्मणों की निन्दा की जाती है।

७. नेता, प्रचार, प्रदर्शन और नारेबाजी के आधार पर यज्ञ किया जाता है।

८. अश्व को आसुरी वृत्ति का प्रतीक माना जाता है।

९. यज्ञकर्ता दान देता नहीं, त्याग करता नहीं अपितु दान लेता है।

१०. यज्ञ तीन व पांच दिन सुविधानुसार चलता है।

११. अश्व छापा जाता है। (पत्र-पत्रिकाओं में, एवं बैनरों पर अश्व का चित्र छापते हैं)।

१२. अश्वमेध ही नहीं होता अपितु सामूहिक विवाह, सामूहिक यज्ञोपवीत, या संस्कार अविधि से करवाये जाते हैं।

१३. पीला वस्त्र धारण करने वाली कोई भी स्त्री चाहे विधवा भी हो बिन्दी लगाकर यज्ञ में आहुति दे सकती है। भगवती देवी ऐसा ही करती थीं।

१४. आहुति देने वालों की संख्या कैसे बढ़ाई जाये, उस पर ही विचार किया जाता है।

१५. अनेक लाभ होने की बात करना, छापना और गायत्री परिवार की आर्थिक उन्नति को लक्ष्य में रखना।

## श्रीमती भगवती देवी का निधन

यह भी एक बड़ा विचित्र तथ्य है कि अभी अश्वमेध यज्ञों की शृंखला को एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ कि इन यज्ञों की प्रधान संचालिका अखिल भारतीय गायत्री परिवार व शक्तिपीठों की निर्देशिका श्रीमती भगवती देवी का निधन १९-९-१९९४, दोपहर ११.५० को शान्तिकुंज हरिद्वार में हो गया। ईश्वर

दिवंगत आत्मा को शांति सद्गति प्रदान करे। इसके साथ ही पं. चन्द्रशेखर शास्त्री द्वारा अश्वमेध के बारे में प्रकाशित सारी भविष्यवाणियां सही सिद्ध हो गईं। बड़ौदा में अतिवृष्टि से जन-धन हानि, सूरत में प्लेग, यज्ञ प्रेरक की मृत्यु हो गई। श्रीराम शर्मा ने अपने जीवनकाल में कभी अश्वमेध का इस प्रकार से न कभी प्रचार किया, न आयोजन किया। यदि अश्वमेध यज्ञ करना उचित होता तो, श्रीराम शर्मा स्वयं इसके बारे में कुछ लिखते या अपने जीवनकाल में इस योजना को जरूर शुरू करते।

# एक स्पष्ट अभिव्यक्ति

मैं भी गायत्री तपोभूमि मथुरा वालों तथा उनके जीजा डॉ. प्रणव पाण्ड्या को अच्छी तरह से जानता हूं। मैंने प्रवण पाण्ड्या की पत्नी श्रीमती शैल बाला पाण्ड्या (सुपुत्री आचार्यश्री रामशर्मा, भूतपूर्व आर्यसमाजी, मथुरा) तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भगवती शर्मा के अनुरोध पर डॉ. प्रणव पाण्ड्या से मिलने तारीख १-२-१९९३ को उनके आश्रम गया था।

मैंने रजिस्टर्ड अपना लेख श्रीमती भगवती शर्मा के नाम मथुरा भेजा था। जुलाई तक कोई जवाब नहीं आया। जब मैंने पता लगाया तो जवाब आया कि लेख हरिद्वार भेजा गया। मैंने अगस्त में पुनः रजिस्टर्ड लेख गायत्री तपोभूमि, हरिद्वार भेजा तो आचार्य श्रीराम शर्मा की पुत्री का पत्र आया कि आप डॉ. प्रणव पाण्ड्या (M. B. B. S. & M. D.) से मिलें तथा भगवती देवी का आशीर्वाद प्राप्त करें। नवरात्रि का समय मैंने एक नवम्बर, १९९२ को रुढ़की विश्वविद्यालय में सम्मेलन में सम्मानित होकर इन दिनों हरिद्वार गया। मां भगवती की दया एवं कृपा से ही ऐसा चमत्कार हुआ। उनके आश्रम में घुसने से पहले ही मैंने उनके यहां पानी तक पीने का विचार छोड़ दिया, न जाने ऐसा क्यों हुआ था। सुबह ९ बजे के समय था।

मैं जैसे ही आश्रम के गेट से अन्दर घुसा, वैसे ही उनके द्वारपालों ने पूछताछ करनी शुरू कर दी। जब मैंने कहा कि मैं उनके अनुरोध पर ही आया हूं, मुझे आपके यहां कोई मतलब नहीं है। मुझे तुरन्त डॉ. प्रणव पाण्ड्या के कार्यालय पहुंचा दिया गया १०.१५ ए. एम. पर।

जब मैंने डॉ. प्रणव पाण्ड्या के कार्यालय में उनके सहायकों से वार्ता की और डॉ. प्रणव पाण्ड्या के पत्र उन्हें दिया तो उनके सहायकों ने छूटते ही कहा कि आप तो बड़े आदमी हैं, जिनको बहनजी ने पत्र लिखा है।

फिर तुरन्त मेरा अनुरोध स्वीकार कर पत्र डॉ. प्रणव पाण्ड्या को पहुंचा दिया गया। ऊपर के Floor से डॉ. ११ ए. एम. पर मिलेंगे। जब मैंने लेख

के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा—हमारी पत्रिका में केवल गुरुदेव (आचार्य श्रीराम शर्मा) के ही लेख छपते हैं, अन्य के नहीं। आपका लेख हम अपने ससुर जी के नाम से छापेंगे। इस पर हमने उन्हें कहा कि मेरा लेख वापस करो। उन्होंने कहा कि कहीं रखा है, अभी नहीं मिल पायेगा, टाइम लगेगा। जैसे ही मिलेगा, वैसे ही वापस कर देंगे रजिस्ट्री के द्वारा। उन्होंने कहा कि इन पत्रिका (युग-निर्माण योजना एवं युगशक्ति—गायत्री) में जिन्होंने श्रीराम शर्मा के चरणों में सिर रखकर तीस साल का अपना समय लगाया है, उनके भी लेख नहीं छपते।

हमें पता चला कि सम्पादन का काम डॉ. पण्ड्या ही करते हैं। अपनी सासुजी के नाम से।

हमने डॉ. प्रणव पाण्ड्या की शक्ल-सूरत देखी तो हमें मां आदि भवानी की कृपा से सब कुछ पता चल गया। हमने डॉ. प्रणव पण्ड्या से कहा, डॉक्टर साहब, आप तो M. D. हो (Post Graduate), और मैं भगवती की कृपा से पी. एच. डी. इन्जीनियरिंग में हूं। कम-से-कम अपने हमारे वरिष्टता के कुछ तो खयाल करो। हमने तो सोचा-समझा था कि आचार्य श्रीराम शर्मा तथा उनके परिवार वाले महान होंगे लेकिन अब पता चला कि भ्रष्टाचार कितना है?

मेरे द्वारा यह लेख तो मेरे नाम से ही छपेगा। अगर आचार्य स्वर्गीय श्रीराम के नाम छापेंगे तो Academic भ्रष्टाचार होगा, मैं न्यायालय में चला जाऊंगा। ये मत समझो कि मैं केवल अन्धविश्वासी हूं। मैं इन्जिनियरिंग में अध्यापक एवं वैज्ञानिक भी हूं। मेरे साठ से भी ज़्यादा लेख विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अपने आप पैर मत काटो, सही मार्ग पर चलो। उस पर उन्होंने कहा—भाई साहब हमें माफ कर दो, कम-से-कम एक सप्ताह के अन्दर लेख वापस कर देंगे। हमारी मजबूरी है कि हम लेख केवल आचार्य श्रीराम शर्मा के ही नाम से छापते हैं। दर्शकों के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ेगा। तब मुझे भगवती की कृपा से ये पता चला कि आचार्य श्रीराम शर्माजी केवल उनको काट-छांटकर अपने नाम से लेख 'युग निर्माण योजना' एवं 'युग शक्ति गायत्री' पत्रिका में छापते रहते थे। अब डॉ. प्रणव पाण्ड्या ने कहा—खाना खा लो। तो अन्तरात्मा की आवाज से मैंने खाना नहीं खाया। उन्होंने कहा—

माताजी (उनकी सास) के दर्शन कर लो, मैं चुपचाप वापस आ गया। इस तरह से दिव्य शक्ति ने मुझे उनके चंगुल से बचाया क्योंकि ये लोग तो धन्धा करते हैं, तपस्वी नहीं हैं।

**—डॉ. राधेश्याम मिश्र,**
अध्यापक भवन, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
हिसार (हरियाणा) दि. १५-०१-९४

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

## यज्ञ से मधुमेह का नाश

**"ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामश्च में जीवातुश्च दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शय्यनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥"**

**शुक्ल यजुर्वेद. १८/६**

यज्ञ के द्वारा मुझे उत्तरोत्तर यज्ञानुष्ठान का सुअवसर प्राप्त हो तथा तत्फलभूत स्वर्गादि लोक मुझे प्राप्त हों। धातुक्षय आदि रोगों से मैं सदा मुक्त रहूं। और भी कोई रोग मुझे पीड़ित न करे, मैं पूर्ण स्वस्थ रहूं। शरीर को रोगरहित और बलयुक्त बनाने वाली औषधियां मुझे प्राप्त हों। मेरी आयु दीर्घ हो। लोक में मेरे शत्रु उत्पन्न न हों। मुझे कहीं भी कोई भय न रहे। सदा सुख की प्राप्ति हो। विश्राम के लिए उत्तम सुसंस्कृत शय्या उपलब्ध हो। स्नान, सन्ध्यादि नित्यकर्म से युक्त मेरा प्रभात सुखमय हो। मेरा दिन उत्तम और तेजस्वी कार्य (यज्ञादि) कर्म करने में बीते।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

# प्लेग, प्रदूषण, पर्यावरण एवं यज्ञ

इस समय समग्र विश्व में पर्यावरण-प्रदूषण और प्लेग चर्चा का विषय, एवं भारी समस्या बना हुआ है। संसार के अनेक वैज्ञानिक, स्वास्थ्य तथा समाजसेवी संस्थाएं इस समस्या का हल खोजने में जुटी हुई है। पर्यावरण प्रदूषण यदि इसी तरह बढ़ता रहा और इसे रोकने के उचित उपाय नहीं किये गये तो यह मानव मात्र के लिए ही नहीं अपितु अन्य जीवों एवं वनस्पतियों के लिए भी विनाशकारी सिद्ध होगा। इस प्रदूषण और प्लेग जैसी महामारी को कम करने और मिटाने का श्रेष्ठ उपाय है—यज्ञ एवं नित्य अग्निहोत्र कर्म। जिस प्रकार वातावरण को दूषित करने के कई कारण हैं, उसी प्रकार वातावरण को शुद्ध करने के भी अनेक उपाय हैं। इनमें ये सर्वश्रेष्ठ और एक मात्र उपाय है —**अग्निहोत्र कर्म एवं यज्ञ करना**।

अग्निहोत्र एवं यज्ञ का प्रचलन सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी तेजी से बढ़ रहा है। सभी धर्म को मानने वालों में अग्निहोत्र करने वाले मिल जायेंगे क्योंकि हवन-यज्ञ करना प्रदूषण को दूर करने हेतु पर्यावरण की शुद्धि के लिए, स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक कार्य है। बिगड़ते हुए पर्यावरण-प्रदूषण एवं फैलते हुए प्लेग, मलेरिया एवं महामारी जैसी बीमारियों को रोकने का सशक्त माध्यम है 'यज्ञ'। बशर्ते सारे विश्व के लोग नित्य पांच मिनट के लिए भी अग्निहोत्र करने लगें तो सम्पूर्ण विश्व के वायुमण्डल का कण-कण व अणु-अणु सर्वोत्तम शुद्ध प्राणवायु में बदल सकता है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में अग्निहोत्र के बारे में, विविध प्रकार के यज्ञ-अनुष्ठानों के बारे में रहस्यमय जानकारियां भरी पड़ी हैं। यज्ञ मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं। एक नित्य यज्ञ, दूसरा नैमित्तिक यज्ञ। नैमित्तिक यज्ञ किसी लक्ष्य को उद्दिष्ट करके किया जाता है। इसे प्रचलित भाषा में **काम्य यज्ञ** भी कहते हैं जो किसी कामना की सिद्धि को लेकर किया जाता है। नित्य यज्ञ का सूक्ष्म प्रयोग बिना किसी विशेष कारण या कामना के किया जाता है, इसे ही **अग्निहोत्र** कहते हैं। अग्निहोत्र यज्ञ प्रतिदिन सूर्योदय एवं

सूर्यास्त के समय उसी क्षण मात्र दो या चार मिनट के लिए किया जाता है जो कि पर्यावरण की शुद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसका प्रयोग बहुत ही सरल है। कोई भी अनपढ़ या कम पढ़ा-लिखा स्त्री या पुरुष अग्निहोत्र कर्म कर सकता है। इसके नियम इस प्रकार हैं—

१. सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय ही अपने-अपने शहर के पंचांग को देखकर सही समय पर आहुति देनी चाहिए।

२. यज्ञवेदी या बाजार में प्राप्त ताम्रधातु के यज्ञकुण्डों में आहुति देनी चाहिए।

३. यज्ञ अग्निहोत्र के लिए केवल गाय का शुद्ध घृत ही प्रयोग में लेना चाहिए।

४. चुटकी भर चावल, चुटकी भर तिल, सुगन्धित चन्दन एवं दशांग धूप लेन चाहिए।

५. अग्निहोत्र के लिए गाय के गोबर के कण्डे ही प्रयोग में लेने चाहिए।

६. उपर्युक्त चुटकी भर सामग्री में दो-चार बूंद गोघृत मिलाकर गायत्री मन्त्र से तीन आहुति दे देनी चाहिए। ध्यान रहे कि चावल जो प्रयोग में लें बिलकुल टूटे हुए नहीं (अक्षत) होने चाहिए।

७. पहले गोबर के कण्डे को कपूर या गुग्गुल से जला देना चाहिए। जब वह ठीक से प्रज्वलित हो जाये, तो जैसे ही सूर्योदय और सूर्यास्त का ठीक समय उपस्थित हो तभी मन्त्रोच्चार पूर्वक आहुतियां दे देनी चाहिए।

इसे एक अकेला व्यक्ति भी कर सकता है। परिवार के सभी लोग भी कर सकते हैं। जितनी देर एक प्याला चाय पीने में लगती है उससे भी कम देरी में अर्थात् ५०-६० सेकण्ड की अवधि में ये तीनों आहुतियां सूर्योदय व सूर्यास्त के क्षणों में देने से **'अग्निहोत्र'** कर्म सम्पन्न हो जाता है।

जहां आधुनिक विज्ञान के पास प्लेग के घातक कीटाणुओं (वायरस) के फैलाव को रोकने का कोई उपाय नहीं है, वहां वेदों में इसके बचाव के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार जलते हुए अंगारों पर यदि गुग्गुल, धूप, कर्पूर एवं शर्करा का बुरादा डालकर धुआं किया जाये तो प्लेग एवं अन्य महामारियों के प्राणघातक कीटाणु तत्काल वहां के वायुमण्डल में ही नष्ट हो जाते हैं। आगे फैलते नहीं।

यजुर्वेद की एक कण्डिका के अनुसार इस प्रकार की शाकल्य (हवन-

सामग्री) पर यदि शुद्ध गोघृत की धारा दी जाये तो सम्पूर्ण पर्यावरण, विषैले कीटाणुओं (वायरस) से रहित हो जाता है। गुग्गुल धूप के द्वारा महामृत्युंजय के मन्त्र को पढ़कर यदि आहुति दी जाये तो सब प्रकार के असाध्य रोग नष्ट होते हैं। पंडित श्री द्विवेदी ने पाठकों के हित में सम्पूर्ण महामृत्युंजय मन्त्र का उच्चारण इस प्रकार बताया —

**ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
**उर्वारुक–मिव बन्धनात्, मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥**

आयुर्वेद में भी पीपल, तुलसी की पत्तियों के मिश्रण से इस जानलेवा बीमारी से मुक्ति का उपाय है। उन्होंने बताया कि पीपल के पेड़ की पांच, बिल्व की ४५ और तुलसी के पौधे की ४५ पत्तियां एक सेर पानी में डालकर, पानी के एक चौथाई रह जाने तक उबालें। इसके दो-तीन दिन के सेवन से मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट प्लेग के रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। बड़े दुःख की बात है कि भारतीय प्राच्य विद्याओं की उपेक्षा के कारण ऐसे रोग को जिनका इलाज सम्भव है, ऐलोपैथी असाध्य घोषित करती है।

# कुण्ड-रचना में प्रयुक्त मापदण्ड की परिभाषा

यज्ञ करने वाले का पांचवा भाग हाथ कहलाता है। इसका नियम है कि यज्ञकर्ता यजमान दोनों हाथ ऊंचे उठाकर उसे सीधी जमीन पर खड़ा कर दे। फिर एक सीधे बांस से यजमान की पूरी लम्बाई खड़े हाथ सहित नाप ले। उस बांस के बराबर पांच हिस्से कर ले, उसका एक भाग, एक 'हाथ' कहलाता है। ऐसे एक हाथ के २४ वें भाग को 'अंगुल' कहते हैं। अंगुल का आठवां हिस्सा 'यव' कहलाता है। यव का आठवां भाग 'युका' युका का आठवां 'लीक्षा', लीक्षा का आठवां भाग 'बालाग्र', कहलाता है। इसके आगे रजरेणु, त्रसरेणु भी बताये गए हैं पर उनका कोई उपयोग नहीं है। अंगूठा खोलकर मुठ्ठी बांधे हाथ को 'रत्नी' कहा गया है। उस मुठ्ठी में से कनिष्ठिका अंगुली फैला दे तो माप 'अरली' कहलायेगा। वैसे २१ अंगुल पर्व की रत्नी एवं २२½ अंगुल पर्व की 'अरत्नी' होती है। माप साधन गुरुमुख से ग्रहण करने पर व्यक्ति क्रियाकुशल होता है। विज्ञ विद्वान् को कुण्डनिर्माण के लिए निम्न परिभाषाओं को कण्ठस्थ कर लेना चाहिए।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८ परमाणुओं का | – | एक | त्रसरेणु |
| ८ त्रसरेणु का | – | एक | रेणु |
| ८ रेणुओं का | – | एक | बालाग्रा |
| ८ बालाग्रों का | – | एक | लीक्षा |
| ८ लीक्षाओं का | – | एक | यूका |
| ८ यूकाओं का | – | एक | यव |
| ८ यव का | – | एक | अंगुल |
| २१ अंगुल पर्व की | – | एक | रत्नी |
| २४ अंगुल का | – | एक | हाथ |

तथा एक-एक हाथ लम्बे-चौड़े कुण्ड को चतुरस्र कहते हैं।

## कुण्डमण्डप हेतु भूमि शोधन

यज्ञ मण्डप एवं कुण्ड बनाने के लिए सर्वप्रथम भूमि को पहिचानना चाहिए कि यज्ञ के योग्य भूमि है कि नहीं। इसके लिए यज्ञ का आचार्य,

रिक्ता इत्यादि निन्दित तिथियों, व्यतिपात इत्यादि योगों को छोड़कर शुद्ध वार (सोम, बुध, गुरु या शुक्र) को शुभ समय (मुहूर्त) में ब्राह्मणों व कारीगर को ले जाकर शल्यादि से परीक्षा कर यज्ञयोग्य भूमि का चयन करे। बाद में उस भूमि को जला देवे, जला देने के बाद जानु तक (एक हाथ गहरी खोदे)। खनन् कर, मिट्टी को छाणना। बाद खोदे हुए गड्डे में पानी भरने के बाद वह छानी हुई मिट्टी गढ़े में छोड़ना। मिट्टी को बराबर भर कर सीसा के प्लेट के समान चिकना करना। उस जमीन पर चार ब्राह्मण पुण्याहवाचन करें। उसके बाद यजमान कछुआ, शेषनाग, वाराह तथा पृथ्वी की फल-पुष्पादि से पूजन करे।

## भूमि-परीक्षा

अब भूमि की परीक्षा संक्षेप में कहता हूं। पांच दिन बाद आकर उस पूर्व शोधित भूमि को देखे। यदि जमीन फट जाये एवं उसमें हड्डी वगैरा दिखलाई पड़े तो वह भूमि कुण्डमण्डप के लिए अयोग्य है। ऐसी भूमि यजमान के आयु तथा धन का नाश करेगी।

जो भूमि ईशान कोण, पूर्व दिशा और उत्तर दिशा की ओर ढलान युक्त हो अर्थात् भूमि पर पानी डालने से पानी ईशान, पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर जाये तो यह भूमि कुण्डमण्डप हेतु श्रेष्ठ मानी जाती है।

जो भूमि गर्मी में शीतल, शीतकाल में ऊष्ण और वर्षा ऋतु में समशीतल प्रतीत होती हो तो वह भूमि श्रेष्ठ कही गई है।

जिस पृथ्वी में घी जैसी सुगन्ध हो तथा जहां दर्भ-कुश, यज्ञीय वृक्ष हो तो वह भूमि ब्राह्मणी भूमि कहलाती है। जहां भूमि लाल रंग की, रक्तगन्धा हो, जहां सर्प दिखाई दे या सर्प के बिल हों तो वह क्षत्रिय भूमि कहलाती है। जिस भूमि में क्षार-केश गंध हो, पीत वर्ण चूहों के बिल या उपयोगी काष्ठ हो तो वह भूमि वैश्य भूमि कहलाती है। जहां प्रत्येक प्रकार के घास उगे हों, बबूल या कंटीले वृक्ष हों, विष्ठा जैसी गन्ध या काले रंग वाली भूमि हो तो यह शूद्र संज्ञक भूमि कहलाती है। अब जिस वर्ण (जाति) का प्रधान यजमान हो उस वर्ण की भूमि उसके लिए लाभदायक होती है।

भूमि का भले कोई रंग हो परन्तु भूमि यदि स्निग्ध, स्थिर, चिकनी व उपजाऊ है तो श्रेष्ठ, निर्बीज भूमि (बजरी वगैरा युक्त) जिसमें कोई बीज

न उगे वह यज्ञस्थली के लिए निष्फल होती है।

चमचौरस खड्डे में बनी हुई मिट्टी डालकर शोधित की हुई भूमि वापस परीक्षा काल में जो बढ़ जाये, वृद्धि को प्राप्त हो तो बहुत उत्तम, बराबर रहे तो मध्यम, जो घटे तो अधम भूमि समझे।

कुण्डमण्डप हेतु भूमि खोदते समय, कोयला, केश, भूसा, हड्डी, राख (भस्मी) मिले तो अशुभ, गोशृंग, शंख, सूती, काछवां इत्यादि मिले तो शुभ समझना। उबड़-खाबड़, शूल-कांटों वाली, वल्मीक (उदई) व कीड़े वाली भूमि का विद्वान् लोग दूर से ही त्याग कर देते हैं।

## ❖ प्रमाणं यथा शारदातिलके

नक्षत्रराशिवाराणामनुकूले शुभेऽहनि।
ततो भूमितले शुद्धे तुषारंगार विवर्जिते।
पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्॥

## ❖ भूमिपरीक्षा पंचरात्रे

ततो भूमिं परीक्षेत वास्तुज्ञानविशारदः।
स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा॥
दृष्टतः परिवर्ज्या भूः कर्तुरायुर्धनापहा।
ईशकोण-प्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तराऽप्लवा।
शेषकष्टा प्लवा भूमिर्धनायुर्गृहनाशिनी॥
ब्राह्मणी घृतगन्धा स्यात् क्षत्रिया रक्तगन्धकृत्।
क्षारगन्धा भवेद्वैश्या शूद्रा विट्गन्धिनी क्षितिः॥
ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया शरसंकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला॥
अनिसिद्धा यथा कुण्ड-सर्वस्व-सिता पीता।
तथा रक्ता कृष्णवर्णसमन्विता।
स्थिरोदका दृढा स्निग्धा भूमिः सर्वसुखावहा॥

**पूर्वदिशा का ज्ञान :** १६ अंगुल के प्रकास यन्त्र से अथवा १६ अंगुल की रस्सी से गोल वृत्त करे। उसके बाद में बारह अंगुल का नोकदार कील गाड़े। उसके सिर पर २० अंगुल की चार कीलें चारों दिशा से सीधी रखे, उसके बाद उस लकड़ी की छाया पहिले पहर जिस तरफ गोल वृत्त में प्रवेश करे वहां पर चिह्न करे। वही पश्चिम दिशा जानना और तीसरे पहर छाया जिस स्थान से वृत्त के बाहर निकले वहां पर चिह्न करने से पूर्व दिशा जानना चाहिए।

**संक्राति के हिसाब से रेखा का चलन :** कर्क, वृश्चिक, वृष, मकर इन राशियों के सूर्य में पूर्व दिशा की छाया को, जब उत्तरायण सूर्य रहें तो उत्तर की तरफ एक यूका चालन और सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ, मीन, मेष इन राषियों के सूर्य हों तो २ यूका चालन करे अर्थात् उस चिह्न से दो यूका हटकर चिह्न दे और मिथुन धनु के सूर्य रहें तो जहां पर छाया का चिह्न है वही वास्तविक रूप में पूर्व-पश्चिम जाने अर्थात् इसमें चालन नहीं चाहिए। चिह्नों के और स्थान से एक-एक कील गाड़ देवे।

**उत्तर-दक्षिण दिशा का ज्ञान :** जैसे, पूर्व-पश्चिम का साधन कर के कील दिया है उसी कील से उत्तर-दक्षिण का साधन करते हैं। जितना बड़ा मण्डप बनाना है उसकी दूनी रस्सी ले। उसके मध्य में गांठ दे और दोनों कोर पर फन्दा बना दे। एक फन्दा पूरब की कील में फैलावे, दूसरा फन्दा पश्चिम की कील में फंसावे। बाद में मध्य की गाट्ठी थाम कर बुद्धिमान् पुरुष दक्षिण व उत्तर की तरफ खींचे। जहां तक वह रस्सी जाये वहां तक वह एक-एक कील गाड़ दे। इस प्रकार दक्षिण दिशा उत्तर दिशा सिद्ध होती है।

जिस रोज दिक् साधन करना हो उस रोज के दिनमान को परम दिन में घटा दे। जो अंक आवे उसको ५ से गुणा करे फिर ६ से भाग दे। तब प्रधान छाया प्राप्त होती है। उदाहरण—परम दिन ३४/४५ दिक् साधन दिवस का दिनमान २६/३५ को परम दिन से घटाया तो ८/१० शेष आया। इसको पांच से गुणा किया तो गुणा करने पर ४०/५० हुआ। इसको ६ भाग दिया तो ६ अं. ७ यूंका की छाया जहां पर आवे उसके अग्रभाग पर चिह्न करे। वही उत्तर दिशा जाने। पूर्व-पश्चिम पूर्ववत् साधे।

**वृत्त पर से चतुरस्र बनाने की रीति :** पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण क्रम से जो-जो चिह्न हैं उन-उन चिह्नों के शंकु में १६ हाथ की रस्सी में फन्दा

लगावे। पूर्व-दक्षिण के शंकु में फन्दा लगाकर वायव्य कोण की तरफ खींचे। फिर उत्तर-पूर्व के शंकु में फन्दा लगाकर ईशान्य कोण की तरफ खींचे। इस प्रकार से चौकोण सिद्ध होता है।

## प्रासाद, उद्यान आदि के निर्माण में भूमि-परीक्षण तथा वृक्षारोपण की महिमा

देवमन्दिर, तड़ाग आदि के निर्माण करने में सबसे पहले प्रमाणानुसार गृहीत की गयी भूमि का संशोधन कर दस हाथ अथवा पांच हाथ के प्रमाण में बैलों से उसे जुतवाना चाहिए। देवमन्दिर के लिए गृहीत भूमि को सफेद बैलों से तथा कूप, बगीचे आदि के लिए काले बैलों से जुतवाये। यदि वह भूमि ग्रह-याग के लिए हो तो उसे जुतवाने की आवश्यकता नहीं, मात्र उसे स्वच्छ कर लेना चाहिए। उस पूर्वोक्त स्थान को तीन दिन जुतवाना चाहिए। फिर उसमें पांच प्रकार के धान्य बोने चाहिए। देवपक्ष में तथा उद्यान के लिए सात प्रकार के धान्य वपन करने चाहिए। मूंग, उड़द, धान, तिल, सांवा—ये पांच व्रीहिगण हैं। मसूर और मटर या चना मिलाने से सात व्रीहिगण होते हैं। (यदि ये बीज तीन, पांच या सात रातों में अंकुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिए—तीन रात वाली भूमि उत्तम, पांच रात वाली भूमि मध्यम तथा सात रात वाली भूमि कनिष्ठ है। कनिष्ठ भूमि को सर्वथा त्याग देना चाहिए।) श्वेत, लाल, पीली, और काली—इन चार वर्णोंवाली पृथ्वी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लिए प्रशंसित मानी गयी है। प्रासाद आदि के निर्माण में पहले भूमि की परीक्षा कर लेनी चाहिए। उसकी एक विधि इस प्रकार है—अरत्रिमात्र (लगभग एक हाथ लंबा) बिल्व काष्ठ को बारह अंगुल के गड्ढे में गाड़कर, उसके भूमि से ऊपरवाले भाग में चारों ओर चार लकड़ियां लगाकर उन्हें ऊन से लपेटकर तेल से भिगो ले। इन्हें चार बत्तियों के रूप में दीपक की भांति प्रज्वलित करे। पूर्व तथा पश्चिम की ओर बत्ती जलती रहे तो शुभ तथा दक्षिण एवं उत्तर की ओर जलती रहे तो अशुभ माना गया है। यदि चारों बत्तियां बुझ जायें या मन्द हो जायें तो विपत्तिकारक है[१]। इस प्रकार सम्यक्-रूप से भूमि की परीक्षा कर उस भूमि को सूत्र से आवेष्टित तथा कीलित कर वास्तु का पूजन करे। तदनन्तर

वास्तुबलि देकर भूमि खोदनेवाले खनित्र की भी पूजा करे। वास्तु के मध्य में एक हाथ के पैमाने में भूमि को घी, मधु, स्वर्णमिश्रित जल तथा रत्नमिश्रित जल से ईशानाभिमुख होकर लीप दे, फिर खोदते समय '**आ ब्रह्मन्०**[२]' इस मन्त्रका उच्चारण करे। जो वास्तुदेवता का बिना पूजन किये प्रासाद, तड़ाग आदि का निर्माण करता है, यमराज उसका आधा पुण्य नष्ट कर देते हैं।

अतः प्रासाद, आराम, उद्यान, महाकूप, गृहनिर्माण में पहले वास्तुदेवता का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। जहां स्तम्भ की आवश्यकता हो वहां साल, खैर, पलाश, केसर, बेल तथा बकुल—इन वृक्षों से निर्मित यूप कलियुग में प्रशस्त माने गए हैं। यदि वापी, कूप आदि का विधिहीन खनन एवं आम्र आदि वृक्षों का विधिहीन रोपन करे, तो उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल अधोगति ही मिलती है। नदी के किनारे, श्मशान तथा अपने घर से दक्षिण की ओर तुलसी वृक्ष का रोपण न करे, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती है। विधिपूर्वक वृक्षों का रोपण करने से उसके पत्र, पुष्प तथा फल के रज-रेणुओं आदि का समागम उसके पितरों को प्रतिदिन तृप्त करता है।

जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देनेवाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग में तथा देवालय में वृक्षों को लगाता है, वह अपने पितरों को बड़े-बड़े पापों से तारता है और रोपणकर्ता इस मनुष्य-लोक में महती कीर्ति तथा शुभ परिणाम को प्राप्त करता है तथा अतीत और अनागत पितरों को स्वर्ग में जाकर भी तारता ही रहता है। अतः द्विजगण! वृक्ष लगाना अत्यन्त शुभदायक है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ *जिसको पुत्र नहीं है, उसके लिए वृक्ष ही पुत्र हैं,* ॐ
ॐ *वृक्षारोपणकर्ता के लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते* ॐ
ॐ *रहते हैं तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं।* ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

---

१. भूमि-परीक्षा, वास्तु-विधान तथा प्रासाद आदि की प्रतिष्ठा आदि पर विस्तृत विचार समराङ्गण सूत्रधार, वास्तुराजवल्लभ, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण आदि ग्रन्थों में हुआ है। मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी इसकी चर्चा आयी है। इस विद्या का संक्षिप्त उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, श्रौतसूत्रों एवं मनुस्मृति ३। ८९ आदि में भी है। वास्तुविद्या के मुख्य प्रवर्तक एवं ज्ञाता विश्वकर्मा और मय दानव हैं।

२. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यःशूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

(यजु० २२। २२)

यदि कोई अश्वत्थ वृक्ष का आरोपण करता है तो वही उसके लिए एक लाख पुत्रों से भी बढ़कर है। अतएव अपनी सद्‌गति के लिए कम-से-कम एक या दो या तीन अश्वत्थ-वृक्ष लगाना ही चाहिए। हजार, लाख, करोड़ जो भी मुक्ति के साधन हैं, उनमें एक अश्वत्थ-वृक्ष लगाने की बराबरी नहीं कर सकते।

## विभिन्न वृक्षों को लगाने का फल

अशोक-वृक्ष लगाने से कभी शोक नहीं होता, प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष उत्तम स्त्री प्रदान करवाता है, ज्ञानरूपी फल भी देता है। बिल्व वृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। जामुन का वृक्ष धन देता है, तेंदू का वृक्ष कुलवृद्धि कराता है। दाडिम (अनार) का वृक्ष स्त्री-सुख प्राप्त कराता है। बकुल पाप-नाशक, वंजुल (तिनिश) बल-बुद्धिप्रद है। धातकी (धव) स्वर्ग प्रदान करता है। वटवृक्ष मोक्षप्रद, आम्रवृक्ष अभीष्ट कामनाप्रद और गुवाक (सुपारी) का वृक्ष सिद्धिप्रद है। बिल्वल, मधूक (महुआ) तथा अर्जुन-वृक्ष सब प्रकार का अन्न प्रदान करते हैं। कदम्ब-वृक्ष से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तिंतिडी (इमली) का वृक्ष धर्मदूषक माना गया है। शमी का वृक्ष रोगनाशक है। केशर से शत्रुओं का विनाश होता है। श्वेत वट धनप्रदाता, पनस (कटहल) वृक्ष मन्द बुद्धिकारक है। मर्कटी (केंवाच) एवं कदम-वृक्ष के लगाने से संतति का क्षय होता है।

शीशम, अर्जुन, जयन्ती, करवीर, बेल तथा पलाश वृक्षों के आरोपण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। विधिपूर्वक वृक्ष का रोपण करने से स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है और रोपणकर्ता के तीन जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ वृक्षों का रोपण करनेवाला ब्रह्मा-रूप और हजार वृक्षों का रोपण करनेवाला विष्णुरूप बन जाता है। वृक्ष के आरोपण में वैशाख मास श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ अशुभ है। आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद ये भी श्रेष्ठ हैं। आश्विन, कार्तिक में वृक्ष लगाने से विनाश या क्षय होता है। श्वेत तुलसी प्रशस्त मानी गयी है। अश्वत्थ, वटवृक्ष और श्रीवृक्ष का छेदन करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहलाता है। वृक्षच्छेदी व्यक्ति मूक और सैकड़ों व्याधियों से युक्त होता है। तिंतिड़ी के बीजों को इक्षुदण्ड से पीसकर उसे जल में मिलाकर सींचने से अशोक की तथा नारियल के जल एवं शहद-जल से सींचने से आम्रवृक्ष की वृद्धि होती है। अश्वत्थ-वृक्ष के मूल से दस हाथ चारों ओर का क्षेत्र पवित्र पुरुषोत्तम

क्षेत्र माना गया है और उसकी छाया जहां तक पहुंचती है तथा अश्वत्थ-वृक्ष के संसर्ग से बहनेवाला जल जहां तक पहुंचता है, वह क्षेत्र गंगा के समान पवित्र माना गया है।

**सूतजी पुनः बोले**—विप्रश्रेष्ठ! तान्त्रिक पद्धति के अनुसार सभी प्रतिष्ठादि कार्यों में शुद्ध दिन ही लेना चाहिए। वृक्षों के उद्यान में कुआं अवश्य बनवाना चाहिए।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ *तुलसी-वन में कोई याग नहीं करना चाहिए। तालाब,* ॐ
ॐ *बड़े बाग तथा देवस्थान के मध्य सेतु नहीं बनवाना चाहिए।* ॐ
ॐ *परन्तु देवस्थान में तड़ाग बनवाना चाहिए। शिवलिङ्ग की* ॐ
ॐ *प्रतिष्ठा में अन्य देवों की स्थापना नहीं करनी चाहिए।* ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इसमें देश-काल (और शैवागमो) की मर्यादा के अनुसार आचरण करना चाहिए। उनके विपरीत आचरण करने पर आयु का ह्रास होता है। द्विजगण! तालाब, पुष्करिणी तथा उद्यान आदि का जो परिमाण बताया गया हो, यदि उससे कम पैमाने पर ये बनाये जायें तो दोष है, किन्तु दस हाथ के परिणाम में हों तो कोई दोष नहीं है। यदि वे दो हजार हाथों से अधिक प्रमाण में बनाये गए हों तो उनकी प्रतिष्ठा विधिपूर्वक अवश्य करनी चाहिएं। (अध्याय १०-११)

## वृक्ष लगाने की विधि

**ऋषय ऊचुः**

चित्र

पादपानां विधिं सूत यथावद् विस्तराद् वद।
विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः।
ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः॥ १॥

**ऋषियों ने पूछा**—सूतजी! अब आप हमें विस्तार के साथ वृक्ष लगाने की यथार्थ विधि बतलाइये। विद्वानों को किस विधि से वृक्ष लगाने चाहिए तथा वृक्षारोपण करने वालों के लिए जिन लोकों की प्राप्ति बतलायी गई है, उन्हें भी आप इस समय हमलोगों को बतलाइए॥ १॥

**सूत उवाच–**

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु।
तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर॥ २॥

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारमाचार्यं चैव तद्विधम्।
पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः॥ ३॥

सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् दध्यक्षतविभूषितान्।
वृक्षान् माल्यैरलंकृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्॥ ४॥

सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्।
अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया॥ ५॥

फलानि सप्त चाष्टौ वा कलधौतानि कारयेत्।
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत्॥ ६॥

धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान्।
सर्वान् धान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः॥ ७॥

कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर।
सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनम्॥ ८॥

यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः।
वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः॥ ९॥

ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम्।
सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम्।

पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गामुदङ्मुखीम्॥ १०॥

ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा।
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मण पुंगवाः॥ ११॥

स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद् यजमानोऽभिपूजयेत्।
गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजस्तान् समाहितः॥ १२॥

हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः।
वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः।
क्षीरेण भोजनं दद्याद् यावद्दिनचतुष्टयम्॥ १३॥

होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा।
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः।
दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रापि शक्तितः॥ १४॥

यद् यदिष्टतमं किंचित् तत्तद् दद्यादमत्सरी।
आचार्ये द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ १५॥

**सूतजी कहते हैं**—[यही प्रश्न जब मनु ने मत्स्य भगवान् से किया था तो इसे उनसे मत्स्य (भगवान्) ने कहा था।] जगदीश्वर! मैं बगीचे में वृक्षों के लगाने की विधि तुम्हें बतलाता हूं। तड़ाग की प्रतिष्ठा के विषय में जो विधान बतलाया गया है, उसी के समान सारी विधि समझनी चाहिए। इसमें भी ऋत्विज, मण्डप, सामग्री और आचार्य को पूर्ववत् रखे। उसी प्रकार सुवर्ण, वस्त्र और चन्दन द्वारा ब्राह्मणों की पूजा भी करनी चाहिए। रोपे गए पौधों को सर्वौषधिमिश्रित जल से सींचे। फिर उनके ऊपर दही और अक्षत छोड़े। उसके बाद उन्हें पुष्पमालाओं से अलंकृत कर वस्त्रों से परिवेष्टित कर दे। सोने की सूई से सबका कर्णवेध करे। उसी प्रकार सोने की सलाई से अञ्जन भी लगाना चाहिए। सात अथवा आठ सुवर्ण के फल बनवावे, फिर इन फलों के साथ सभी वृक्षों को वेदी पर स्थापित कर दे। वहां गुग्गुल का धूप देना श्रेष्ठ माना गया है। वृक्षों को पृथक्-पृथक् ताम्र पात्र में रखकर उन्हें सप्तधान्य से आवृत्त करे तथा उनके ऊपर वस्त्र और चन्दन बढ़ाये। नरेश्वर! फिर प्रत्येक वृक्ष के पास कलश-स्थापन करके उन सभी कलशों में स्वर्ण-खण्ड डाले,

फिर बलि प्रदान करके उनकी पूजा करे। रात में विद्वान् द्विजातियों द्वारा इन्द्रादि लोकपालों तथा वनस्पति के निमित्त वित्तानुसार हवन कराये। तदनन्तर दूध देने वाली एक गौ को लाकर उसे श्वेत वस्त्र ओढ़ाये। उसके मस्तक पर सोने की कंलगी लगाये, सींगों को सोने से मढ़ा दे। उसको दूहने के लिए कांसे की दोहनी प्रस्तुत करे। इस प्रकार शोभासम्पन्न उस गौ को उत्तराभिमुख खड़ी करके वृक्षों के बीच से छोड़े। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण बाजों और मङ्गल गीतों की ध्वनि के साथ अभिषेक के मन्त्र—तीनों वेदों की वरुणा सम्बन्धिनी ऋचाएं पढ़ते हुए उक्त कलशों के जल से यजमान का अभिषेक करे। अभिषेक के पश्चात् यज्ञकर्ता पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे और अपनी सामर्थ्य के अनुसार सावधानीपूर्वक गौ, सोने की जंजीर, कड़े, अंगूठी, पवित्री, वस्त्र, शय्या, शय्योपयोगी सामान तथा चरणपादुका देकर सम्पूर्ण ऋत्विजों का पूजन करे। इसके बाद चार दिनों तक उन्हें दूध के साथ भोजन कराये तथा सरसों के दाने, जौ और काले तिलों से होम कराये। होम में पलाश (ढाक) की लकड़ी उत्तम मानी गयी है। वृक्षारोपण के पश्चात् चौथे दिन विशेष उत्सव करे। उसमें भी अपनी शक्ति के अनुसार पुनः उसी प्रकार दक्षिणा दे। जो-जो वस्तु अपने को अधिक प्रिय हो, ईर्ष्या छोड़कर उस-उस का दान करे। आचार्य को दूनी दक्षिणा दे तथा प्रणाम करके यज्ञ की समाप्ति करे॥ २-१५॥

**अनेन विधिना यस्तु कुर्याद् वृक्षोत्सवं बुधः।**
**सर्वान् कामानवाप्नोति फलं चानन्त्यमश्नुते॥ १६॥**

**यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः।**
**सोऽपि स्वर्गे वसेद् राजन् यावदिन्द्रायुतत्रयम्॥ १७॥**

**भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् द्रुमसम्मितान्।**
**परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ १८॥**

**य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।**
**सोऽपि सम्पूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते॥ १९॥**

जो विद्वान् उपर्युक्त विधि से वृक्षारोपण का उत्सव करता है, उसकी सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं तथा वह अक्षय फल का भागी होता है। राजेन्द्र!

---

* वृक्ष मुनियों तथा कवियों को बहुत प्रिय थे। वृक्ष-उद्यानादि रोपण-प्रतिष्ठा की सभी विधियां पद्म, भविष्य, स्कन्दादिपुराणों में बहुत विस्तार में हैं। अमरसिंह, कालिदासादि ने भी इनका खूब वर्णन किया है। मत्स्यपुराण में वृक्षों का वर्णन बार-बार मिलेगा।

जो मनुष्य इस प्रकार एक भी वृक्ष की स्थापना करता है, वह भी जब तक तीस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तब तक स्वर्गलोक में निवास करता है। वह जितने वृक्षों का रोपण करता है, अपने पहले और पीछे की उतनी ही पीढ़ियों का वह उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्ति से रहित परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्ग को सुनता या सुनाता है, वह भी देवताओं द्वारा सम्मानित और ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है॥ १६-१९॥

## अश्वत्थ, प्रतिष्ठा की विधि

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! अश्वत्थ-वृक्ष की प्रतिष्ठा करनी हो तो उसकी जड़ के पास दो हाथ लम्बी-चौड़ी एक देवी का निर्माण कर चन्दन आदि से प्रोक्षित करे। उस पर कमल की रचना कर अर्घ्य प्रदान करे। प्रथम दिन की रात्रि में **'तद्विष्णोः०'** (यजु० ६।५) इस मन्त्र द्वारा कलश-स्थापन कर गन्ध, चन्दन, दूर्वा तथा अक्षत समर्पण करे। चन्दन-लिप्त श्वेत सूत्रों से कलशों को आवेष्टित करे। प्रथम कलश के ऊपर गणेशजी का, दूसरे कलश पर ब्रह्माजी का पूजन करे। दिशाओं में दिक्पाल और वृक्ष के मूल में नवग्रहों का पूजन-अर्चन करे। वृक्ष के मूल में विष्णु, मध्य में शंकर तथा आगे ब्रह्मा की पूजा कर हवन करे। पिष्टकान्न-बलि दे। आचार्य को दक्षिणा देकर वृक्ष को जलधारा से सींचे, उसकी प्रदक्षिणा करे और भगवान् सूर्य को अर्घ्य निवेदित कर घर आ जाये।

चित्र

द्विजो! अब मैं वृक्षों के प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन करता हूं। वृक्ष की

स्थापना कर सूत्र से परिवेष्टित करे, फिर उसके पश्चिम भाग में कलश स्थापना करे। कलश में ब्रह्मा, सोम, विष्णु और वनस्पति का पूजन करे। अनन्तर तिल और यव से आठ-आठ आहुतियां दे। कदली-वृक्ष तथा यूप का उत्सर्जन करे, फिर लगाये गए वृक्ष के मूल में धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल एवं यक्ष की पूजा करे तथा आचार्य को संतुष्ट करे। आचार्य को गोदान दे, दक्षिणा प्रदान करे। वृक्ष-पूजन के बाद भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे।

## पुष्पवाटिका तथा तुलसी की प्रतिष्ठा-विधि

**सूतजी कहते हैं**—ब्राह्मणो! पुष्पवाटिका की प्रतिष्ठा में तीन हाथ की एक वेदी का निर्माण कर उस पर घट की स्थापना करे। पुष्पाधिवास से एक दिन पूर्व ब्राह्मण-भोजन कराये। कलश पर गणेश, सूर्य, सोम, अग्निदेव तथा नारायण का आह्वान कर पूजन करे। वेदी पर मधु तथा पायस से हवन करे। ईशानकोण में विधिवत् यूप का समारोपण कर उसके मूल में गुरुवार के दिन गेहुंओं का रोपण कर उन्हें सींचे। वाटिका को रक्त सूत्र से आवेष्टित करे। वाटिका के पुष्प-वृक्षों का कर्णवेध कराकर उन्हें कुशोदक से स्नान कराये और ब्राह्मणों को धान्य, यव और गेहूं दक्षिणा रूप में प्रदान करे और वाटिका को जलधारा से सींचे।

चित्र

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ *तुलसी की प्रतिष्ठा ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में विधिपूर्वक* ॐ
ॐ *करनी चाहिए। प्रतिष्ठा के लिए शुद्ध दिन अथवा एकादशी* ॐ
ॐ *तिथि होनी चाहिए।* ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

रात्रि में घट की स्थापना कर विष्णु, शिव, सोम, ब्रह्मा तथा इन्द्र का पूजन करे। गायत्री-मन्त्र तथा पूर्वोक्त देवताओं के मन्त्रों द्वारा उन्हें स्नान कराये। **'कया नश्चित्र०'** (यजु० २७। ३९) इस मन्त्र से गन्ध, **'अशुना०'** (यजु० २०। २७) इस मन्त्र से इत्र, **'त्वां गन्धर्वा०'** (यजु० १२। ९८) तथा **'मा नस्तोके०'** (यजु० १६। १६) आदि मन्त्रों से पुष्प, **'श्रीश्च ते०'** (यजु० ३१। २२) तथा **'वैश्वदेवी०'** (यजु० १९। ४४) इन मन्त्रों से दूर्वा, **'रूपेण वो०'** (यजु० ७। ७५) इस मन्त्र से दर्पण और **'याः फलिनीर्या०'** (यजु १२। ८९) इस मन्त्र से फल अर्पण करे तथा समिद्धो (यजु० २९। १) इस मन्त्र से अञ्जन लगाये। तुलसी को पीले सूत्र से आवेष्टित कर उसके चारों ओर दूध और जल की धारा दे। कलश तथा तुलसी को वस्त्र से भली-भांति आच्छादित कर घर आ जाये। दूसरे दिन **'तद्विष्णोः०'** (यजु० ६। ५) इस मन्त्र से सुहागिनी स्त्रियों द्वारा मङ्गल-गानपूर्वक उसे स्नान कराये। मातृ-पूजा पूर्वक वृद्धि-श्राद्ध करे। गन्ध आदि पदार्थों द्वारा आचार्य, होता और ब्रह्मा आदि का वरण करे। दस हाथ के मण्डप में गोलाकार वेदी का निर्माण करे और वहां भगवान् नारायण का पूजन करे। वेदी के मध्य ग्रह, लोकपाल, सूर्य और मरुद्गणों की पूजा करे। कलश के चारों ओर रुद्र और वसुओं का पूजन करे। कुश-कण्डिका करके, तिल-यव से हवन करे। विष्णु को उद्दिष्ट कर १०८ आहुतियां दे। अन्य देवताओं को यथाशक्ति आहुति प्रदान करे। यूप स्थापित कर चरु की बलि दे। चतुर्दिक् कदली-स्तम्भ स्थापित कर ध्वजाएं फहराये। दक्षिणा में स्वर्ण, तिल-धान्य एवं पयस्विनी गाय प्रदान करे। तुलसी को क्षीरधारा दे।

कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती। जैसे—जयन्ती, सोमवृक्ष, सोमवट, पनस (कटहल), कदम्ब, निम्ब, कनकपाटला, शाल्मलि, निम्बक, बिम्ब, अशोक आदि। इनके अतिरिक्त भद्रक, शमीकोण, चंडातक, बक तथा खदिर आदि वृक्षों की प्रतिष्ठा तो करनी चाहिए, किन्तु इनका कर्णवेश-संस्कार नहीं करना चाहिए।

# वट, बिल्व तथा पूगीफल आदि वृक्ष-युक्त उद्यान की प्रतिष्ठा-विधि

चित्र

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! वट-वृक्ष की प्रतिष्ठा में वृक्ष के दक्षिण दिशा में उसकी जड़ के पास तीन हाथ की एक वेदी बनाये और उस पर तीन कलश स्थापित करे। उन कलशों पर क्रमशः गणेश, शिव तथा विष्णु की पूजा कर चरु से होम करे। वट-वृक्ष को त्रिगुणित रक्त सूत्रों से आवेष्टित करे। बलि में यव-क्षीर प्रदान करे और यूपस्तम्भ आरोपित करे। वट-वृक्ष के मूल में यक्ष, नाग, गन्धर्व, सिद्ध और मरुद्गणों की पूजा करे। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रियाएं विधि के अनुसार पूर्ण करे।
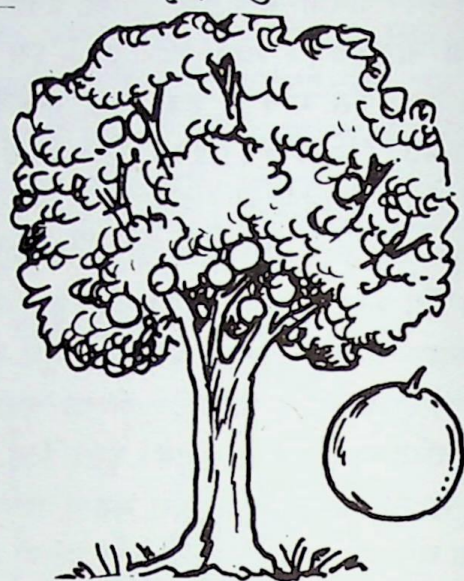
बिल्व वृक्ष की प्रतिष्ठा में पहले दिन वृक्ष का अधिवासन करे। **'त्र्यम्बकं०'** (यजु० ३। ६०) इस मन्त्र से वृक्ष को पवित्र स्थान पर स्थापित कर **'सुनावमा०'** (यजु० २१। ७) इस मन्त्र से गन्धोदक द्वारा उसे स्नान कराये। **'मे गृह्णामि०'** इस मन्त्र से वृक्ष पर अक्षत चढ़ाये। **'कया नश्चित्र०'** (यजु० २७। ३९) इस मन्त्र से धूप, वस्त्र तथा माला चढ़ाये। तदनन्तर रुद्र, विष्णु, दुर्गा और धनेश्वर—कुबेर का पूजन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शास्त्रानुसार नित्यक्रिया से निवृत्त होकर घर में सात ब्राह्मण-दम्पति को भोजन कराये। फिर बिल्व के मूल प्रदेश में दो हाथ की वर्तुलाकार वेदी का निर्माण करे। उसको गेरू तथा सुन्दर पुष्प-चूर्णादि से रंजितकर उसपर अष्टदल-कमल की रचना करे। वृक्ष को लाल सूत्र से पांच, सात या नौ बार वेष्टित करे। वृक्ष-मूल में उत्तराभिमुख होकर व्रीहि रोपे तथा शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, शेष, अनन्त, इन्द्र, वनपाल, सोम, सूर्य तथा पृथ्वी—इनका क्रमशः पूजन करे। तिल और अक्षत से हवन करे तथा घी एवं भात का नैवेद्य दे।

यक्षों के लिए उड़द और भात का भोग लगाये। ग्रहों की तुष्टि के लिए बांस के पात्र पर नैवेद्य दे। बिल्व-वृक्ष को दक्षिण दिशा से दूध की धारा प्रदान करे। यूप का आरोपण करे, वृक्ष का कर्णवेध-संस्कार करे और भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे।

यदि सौ हाथ की लंबाई-चौड़ाई का उद्यान हो, जिसमें सुपारी या आम्र आदि के फलदायक वृक्ष लगे हों तो ऐसे उद्यान की प्रतिष्ठा में वास्तुमण्डल की रचना कर वास्तु आदि देवताओं का पूजन करके यजन-कर्म करे। विशेष रूप से विष्णु एवं प्रजापति आदि देवताओं का पूजन करे। हवन के अन्त में ब्राह्मणों को दक्षिणा दे।

## अशोकव्रत तथा करवीरव्रत का माहात्म्य

**भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**—महाराज! आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सप्तधान्य से तथा फल, नारिकेल, अनार, लड्डू आदि अनेक प्रकार के नैवेद्य से मनोरम पल्लवों से युक्त अशोक वृक्ष का पूजन करने से कभी शोक नहीं होता। अशोक वृक्ष की निम्नलिखित मन्त्र से प्रार्थना करे और उसे अर्घ्य प्रदान करे—

**पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च।**
**अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले॥**

*(–उत्तरपर्व ९।४)*

'अशोकवृक्ष! आप मेरे कुल में पिता, भाई, पति, सास तथा ससुर आदि सभी का शोक शमन करें।'

चित्र

वस्त्र से अशोक-वृक्ष को लपेट कर पताकाओं से अलंकृत करे। इस व्रत को यदि स्त्री भक्तिपूर्वक करे तो वह दमयन्ती, स्वाहा, वेदवती और सती की भांति अपने पति की अति प्रिय

हो जाती है। वनगमन के समय सीता ने भी मार्ग में अशोक वृक्ष का भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, अक्षत् आदि से पूजन किया और प्रदक्षिणा कर वन को गयीं। जो स्त्री तिल, अक्षत, गेहूं, सर्षप आदि से अशोक का पूजन कर मन्त्र से वन्दना और प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है, वह शोकमुक्त होकर चिरकाल तक अपने पति सहित संसार के सुखों का उपभोग कर अन्त में गौरी-लोक में निवास करती है। यह अशोकव्रत सब प्रकार के शोक और रोग को हरनेवाला है।

· महाराज! इसी प्रकार ज्येष्ठ मास की शुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय के समय ·अत्यन्त मनोहर देवता के उद्यान में लगे हुए करवीर-वृक्ष का पूजन करे। लाल सूत्र से वृक्ष को वेष्टित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सप्तधान्य, नारिकेल, नारंगी और भांति-भांति के फलों से पूजन कर इस मन्त्र से उसकी प्रार्थना करे—

**करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ।**

'भगवान् विष्णु और शंकर के मुकुट पर रत्न के रूप में सुशोभित, भगवान् सूर्य के अत्यन्त प्रिय तथा विष के आवास करवीर (जहर कनेर)! आपको बार-बार नमस्कार है।'

इसी तरह '**आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥** (यजु० ३३। ४३)' इस मन्त्र से प्रार्थना कर ब्राह्मण को दक्षिणा दे एवं वृक्ष की प्रदक्षिणा कर घर को जाये। सूर्यदेव की प्रसन्नता के लिए इस व्रत को अरुन्धती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, गंगा, दमयन्ती, अनसूया और सत्यभामा आदि पतिव्रता स्त्रियों ने तथा अन्य स्त्रियों ने भी किया है। इस करवीर व्रत को जो भक्तिपूर्वक करता है वह अनेक प्रकार के सुख भोग कर अन्त में सूर्यलोक को जाता है।

**वास्तुशास्त्र से मण्डप का प्रमाण**—दस या बारह हाथ का मण्डप अधम होता है। बारह हाथ व चौदह हाथ का मण्डप मध्यम होता है। सोलह हाथ व अठारह हाथ का मण्डप उत्तम होता है। तुलादान में उत्तम मण्डप २० हाथ का होता है और मण्डप की लम्बाई-चौड़ाई बराबर होती है। याने सम चौकोर बनावे॥

कनीयान् दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः।
तथा षोडशभिर्हस्तै-र्मण्डपं स्यादिहोत्तमम्॥
दशद्वादशहस्तौ च द्विद्विवृद्धिंगतः क्रमात्॥

*—पंचरात्रे*

**द्वार का प्रमाण**—मण्डप की चारों दिशा के मध्य में दो हाथ का चौड़ा चार दरवाजे (किवाड़) बनवाना। चार हाथ ऊंचा अधम मंडप में, दो हाथ ४८ अंगुल का चौड़ा पांच हाथ ऊंचा दरवाजा, उत्तम मण्डप में बनाना चाहिए।

कनिष्ठे द्विकरं द्वारं, चतुरङ्गुलवृत्रितः।
मध्यमोत्तरयोर्वेदी मंडपस्य त्रिभागतः॥

*—पंचरात्रे*

मध्यवेदी मण्डप के तीसरे हिस्से में बनावे। जैसे कि मंडप को नवकोष्ठ कर, नव कोष्ठ के बीच के कोष्ठ में एक हाथ ऊंची बराबर चतुष्कोण मध्यवेदी होती है। यदि मध्य में कुण्ड करना हो तो कुंड के पूर्व भाग में ४ हाथ या २ हाथ की चतुष्कोण प्रधान वेदी बनाये।

मध्ये तु मण्डपस्याऽपि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः।
अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च॥
कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदीं कुर्याद्विचक्षणः।
चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितां नृप॥

*—शांतिमयूख कोटिहोमे*

तुलादान में मध्यवेदी कहते हैं। अधम और मध्यम मंडप में पांच हाथ की मध्यवेदी और उत्तम मंडप में सात हाथ की लम्बी व चौड़ी और एक हाथ ऊंची मध्यवेदी बनाये। ईशान्य भाग में ग्रहवेदी बनाये। एक हाथ ऊंची, एक हाथ लम्बी-चौड़ी तीन सीढ़ी-एवं अग्निकोण में योगिनी वेदी, नैर्ऋत्य में वास्तुवेदी और वायव्य में क्षेत्रपाल वेदी बनावें।

आग्नेय्यां योगिनी वेदी, वास्तुवेदी तु नैर्ऋते।
वायव्ये क्षेत्रपालानां, ईशाने ग्रहवेदिका॥

❖ ततो बप्र-प्रमाणम्

दिग्द्वङ्गुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः-यमुदाहृतः
त्र्यंगुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि।
द्वयंगुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथितो बुधैः॥

प्रथम सीढ़ी २ अंगुल चौड़ी, २ अंगुल ऊंची, दूसरी सीढ़ी २ अंगुल चौड़ी ३ अंगुल ऊंची, तीसरी सीढ़ी २ अंगुल चौड़ी ३ अंगुल ऊंची सब वेदी में बनाना। कुछ लोग २ वप्र रखते हैं। वप्र २ अंगुल ऊंचा, चौड़ा दूसरा

सोलह खम्भों वाला मण्डप
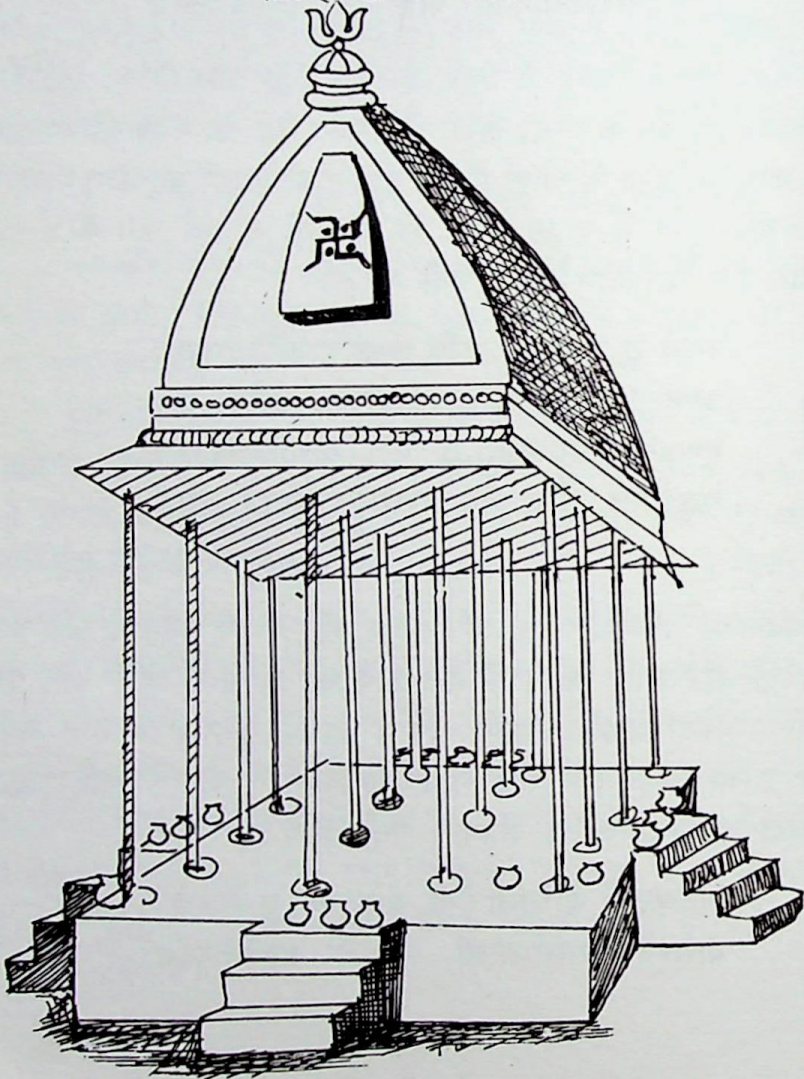
उसके ऊपर ३ अंगुल ऊंचा २ अंगुल चौड़ा और वेदी की ऊंचाई एक बित्ता, चौड़ा एक हाथ का होता है।

**सोलह स्तम्भ लगाने की विधि**—मण्डप का दक्षिण-पश्चिम पूर्व को तीन-तीन भाग समान करके सूत्र देवे। जहां-जहां सूत्र की समाप्ति और जहां-जहां सन्धि हो, चारों कोने में पांच-पांच हाथ से बारह स्तम्भ गाड़ना। पहला खम्भा अग्निकोण से गाड़े। पहले बारह खम्भा बाहर से गाड़ना, पांच-पांच हाथ के और चूड़ के सहित दो-दो खम्भे प्रतिदिशा में ८, चारों कोने में ४ एवं बाहर खम्भा पांचवा हिस्सा एक हाथ हुआ सो जमीन में गाड़ना। बाद ४ खम्भा चूड़ा के सहित आठ-आठ हाथ के ८ अंगुल चौड़े बीच में वेदी के अग्निकोण से उसका पांचवां हिस्सा एक हाथ १४ अंगुल ७ यव १४ यूका प्रदक्षिणा क्रम से जमीन में गाढ़ना। इस तरह सोलह खम्भे हुए।

**स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके।**
**खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरे।**

*—शारदातिलके*

**स्तम्भ के ऊपर काष्ठ लगाना**—आगे १६ खम्भों पर १६ बालिका देना। छिद्रवाली चूड़ में पहिनना, पूर्व- पश्चिम, दक्षिण-उत्तर दो-दो लकड़ी ८ लकड़ी और चार कोण में ४ लकड़ी, ये २८ लकड़ी सब हुई और मध्य में शिखर (अर्थात् लट्टू काठ का) बनाना। उसमें ४ कोनों पर ४ लकड़ी लट्टू में से खम्भे तक देना। सब मिलाकर ३२ लकड़ी हुई और स्तम्भ को लेकर ४८ हुई।

अब मण्डप के मध्य भाग में मन्दिर के शिखर के जैसा आकार बनाकर क़ोमल बांस व चटाई या फूस इत्यादि से चारों द्वार को छोड़कर सजावे व चारों तरफ टाट से ढांके, वायु इत्यादि के रक्षार्थ चार द्वार की टाट पृथक् से लगावे और १३ खम्भों में अच्छे-अच्छे सुन्दर वस्त्र लपेटे और ऐसा, चंवर बांधना चाहिए।

मण्डप के दरवाजे से एक हाथं बाहर पूर्वादिक दिशाओं में तोरण द्वार अधमादि मण्डप के क्रम से पूर्व से वट या पीपल ५ हाथ लम्बा २ हाथ चौड़ा अधम में और मध्यम में ६ हाथ लम्बा २ हाथ ६ अंगुल चौड़ा तोरण लगावे। दक्षिण में गूलर का, पश्चिम में पीपल या पाकड़ का, उत्तर में पाकड़

या वट का पूर्ववत् काम में लावे। अथवा इन सब वृक्षों की लकड़ी न मिले तो एक ही वृक्ष के चारों द्वार बनावे। उसका पांचवां हिस्सा एक हाथ व ६ हाथ का, पांचवां हिस्सा १ हाथ, ४ अंगुल, छः यव, सात हाथ का पांचवा हिस्सा १ हाथ ४ अंगुल ४ युव ६ यूका इस हिसाब से गाड़ना चाहिए।

## विष्णु यज्ञ का विधान

विष्णुयाग में विष्णु पूजन, पुरुषसूक्त के न्यास से होता है तथा पुरुष सूक्त के ही सोलह मन्त्रों से तथा विष्णुसहस्त्र नामावली द्वारा हंविष्यान्न से हवन होता है जिससे भगवान् विष्णु निःसन्देह प्रसन्न होकर अपनें भक्तों की मनोवांछित मनोकामना को पूर्ण करते हैं क्योंकि-विष्णुयाग से ही समस्त मनोकामनाएं पूर्ण हो सकती हैं।

### विष्णुयाग में कुण्ड-विधान

विष्णुयज्ञ में एक, पांच, सात और नव कुण्ड का विधान शास्त्रों में प्राप्त होता है। 'नारद पंचरात्र' सात कुण्ड का विधान भी लिखा है। विष्णुयाग में पांच कुण्ड एक-एक हाथ के लम्बे और चौड़े होते हैं। महाविष्णु यज्ञ में पांच कुण्ड दो-दो हाथ के लम्बे और चौड़े होते हैं। अतिविष्णुयाग में पांच-पांच कुण्ड चार-चार हाथ के लम्बे और चौड़े होते हैं।

### विष्णुयाग में प्रधानवेदी निर्णय

(१) विष्णुयागादि में प्रधानवेदी दक्षिण दिशा में होगी।

(२) कोटिहोमात्मक विष्णुयाग में ईशानकोण में ग्रहवेदी उसके दक्षिण में

प्रधानवेदी होगी। **विशेष**—विष्णु आदि प्रतिष्ठा में प्रधानवेदी मध्य दिशा में बनेगी।

### आहुति विचार

(१) **विष्णुयाग में**—पुरुषसूक्त की प्रति ऋचा से एक लाख साठ हजार आहुति होती है।

(२) **महा विष्णुयाग में**—तीन लाख बीस हजार आहुति का विधान मिलता है।

(३) **अति विष्णुयाग में**—चार लाख अस्सी हजार आहुति का विधान उपलब्ध है।

## हवनात्मक रुद्रयज्ञ प्रयोग

**मारके समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये।**
**रुद्रहोमः पराशान्तिः पायसेन घृतेन वा॥**

*—हेमाद्रौ ,कालिकापुराणे*

वायुपुराण के अनुसार सब प्रकार के ग्रह-दोषों की शान्ति हेतु, दुःस्वप्न, एवं दुर्मरण की शान्ति हेतु सभी प्रकार के रोग व्याधि एवं दुसाध्य बीमारियों की शान्ति हेतु, सब प्रकार के पाप-ब्रह्महत्या जैसे घोर पाप-के नाश हेतु, एवं सभी प्रकार के मनोरथों की प्राप्ति हेतु रुद्रयज्ञ किया जाता है। 'हेमाद्रौ कालिका पुराण' के अनुसार मारकेश ग्रह से रक्षा हेतु, शत्रुभय एवं मृत्युभय के प्राप्ति होने पर मृत्युञ्जय महादेव का हवन घी और दूध से किया जाये तो सभी प्रकार से सुख-शान्ति की वृद्धि होकर मनुष्य को शिव की कृपा एवं सान्निध्य प्राप्त होता है।

इसमें भी अलग-अलग प्रकार की होम सामग्री से अलग-अलग प्रकार के फलों की प्राप्ति होती हैं।

## रुद्र यज्ञ का विधान

रुद्रयाग में रुद्रपूजन नीलसूक्त के न्यास से होता है तथा नीलसूक्त (**नमस्ते रुद्र०**) के ही सोलह मन्त्रों से तथा शिव सहस्रनामावली द्वारा हविष्यान्न से
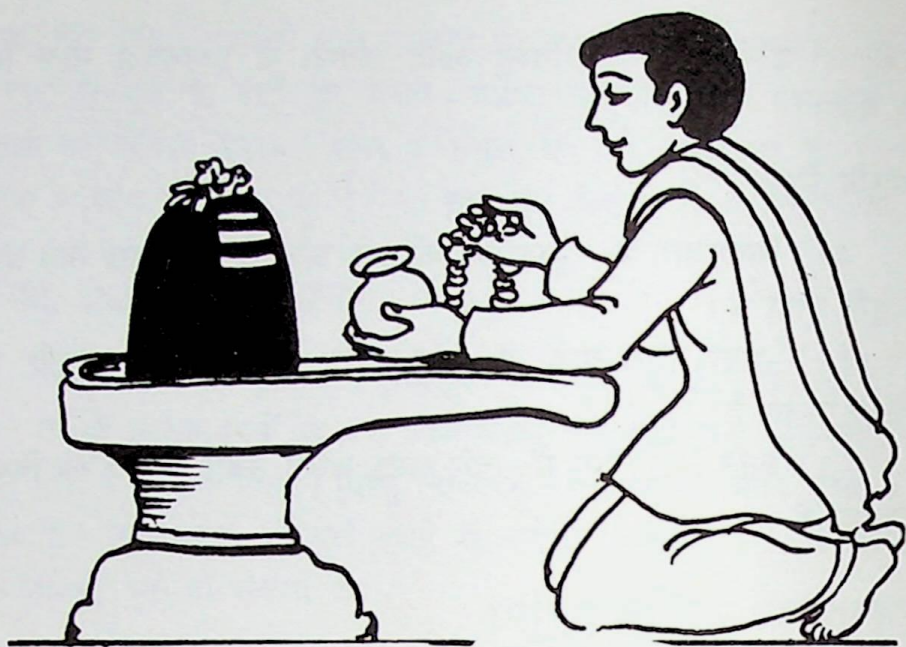
चित्र

यज्ञ होता है। इसमें आशुतोष भगवान शंकर प्रसन्न होकर अपने भक्तगणों की मनोवांछित इच्छा पूर्ण करते हैं। रुद्रयाग में शिवमुख आहुति का विचार करना चाहिए एवं शिवजी का निवास कहां है? यह जरूर देखना चाहिए। शास्त्रानुसार रुद्रपाठ पांच प्रकार के होते हैं।

(१) रूप (२) रुद्र (३) लघुरुद्र (४) महारुद्र (५) अतिरुद्र।

इनका प्रयोग जपात्मक, होमात्भक एवं अभिषेकात्मक होता है। जैसी कामना हो वैसा प्रयोग होता है।

एक ब्राह्मण द्वारा ११ बार (नमस्ते १६ बार ६६ मन्त्रात्मक) पाठ द्वारा किया जाने वाला अभिषेक रुद्रीपाठ कहलाता है। इस काम को ११ ब्राह्मणों द्वारा कराया जाकर १२१ नमस्ते पाठों वाला अभिषेक लघुरुद्र कहलाता है। इसी तरह ११ बार लघुरुद्र का होना एक महारुद्र कहलाता है। ११ महारुद्रों की आवृत्ति से एक अतिरुद्र होता है। इस व्याख्या को समझना आवश्यक है।

भस्मी रहित, त्रिपुण्ड रहित, रुद्राक्ष की माला रहित, बिल्वपत्र और गंगाजल रहित होकर जो शिवजी की पूजा में बैठता है, तो वह पूजा पूर्णतः निष्फल चली जाती है। रुद्र की प्रतिष्ठा में शिवलिंग हमेशा आकाश मार्ग से मन्दिर के शिखर स्थान से उतरता है।

### ❖ रुद्रयाग में मुहूर्तः

**वैशाखे श्रावणे मासे चाश्विने मार्गशीर्षके।**
**माघफाल्गुणयोर्वापि सिते पक्षे शुभे दिने।**
**रुद्रारम्भः प्रकर्तव्यः पुत्रपौत्रादिवृद्धये॥**

वैशाख, श्रावण, आश्विन, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन इन मासों में और शुक्ल पक्ष में रुद्रयाग आरम्भ करे तो पुत्रपौत्रादिक की वृद्धि होती है।

अनध्याय तिथि (१/८/१४/१५/३०) रिक्ता तिथि (४/९/१४ तथा ६) इनके सिवा अन्य तिथियों में रुद्रारम्भ करे तो शुभ फ़ल देता है। अनध्याय के वक्त, संध्याकाल के समय, स्त्री रजस्वला हुई तब रुद्रारम्भ करे तो सिद्धि नहीं होती।

**मासे पौष्णे ध्रुवे रौद्रे हस्तपंचादितिद्वये।**
**दिनेऽर्के भौमवारे च रुद्रारम्भः प्रशस्यते॥**

आश्विनी, रेवती, ध्रुव संज्ञा वाले नक्षत्र, आर्द्रा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य नक्षत्र, और रवि तथा मंगल के दिन रुद्रपूजन और रुद्रहोम करना शुभ है।

### ❖ शिव निवास एवं फल

रुद्रयाग या शिवजी के सम्बन्धित कोई भी अनुष्ठान आरम्भ करते समय यह देखना जरूरी है कि उस समय शिवजी का निवास कहां है 'शिवार्चणसृति' के अनुसार—

**तिथि च द्विगुणी कृत्य, बाणैः संयोजतेत्ततः।**
**सप्तभिश्च हरेत् भागं, शिववासं समुद्दिशेत्॥**

अभीष्ट दिन की तिथि को दुगना करके उसमें पांच जोड़े। उसके बाद प्राप्त संख्या में सात का भाग दे। शेष एक बचे तो शिवजी कैलास में हैं, २ में पार्वती के साथ, तीन में वृषभ पर आरुढ़ हैं, ४ हो तो गणों की सभा में विराजमान हैं। ५ में भोजन तथा ६ में क्रीड़ा कर रहे हैं, शेष सात बजे तो शिवजी श्मशान में हैं।

शिवजी यदि कैलाश में मिले तो पूर्ण सुख, पार्वती के साथ हों तो धन-सुख व सम्पदा को देने वाले हैं। वृषभ पर आरूढ़ अभीष्ट सिद्धि देते हैं। सभा में हों तो सन्तान, भोजन के समय पीड़ा, क्रीड़ा में कष्ट तथा श्मशान में दारुण दु:ख व मरण को देने वाले कहे गए हैं। लिंग पुराण के अनुसार रुद्रयज्ञ प्रारम्भ में शुक्लपक्ष की २/५/६/९/१२/१३ एवं कृष्णपक्ष की १/४/५/८/११/१२/३० तिथियां शुभ फलदायक मानी गई हैं।

## मण्डप का शिखर
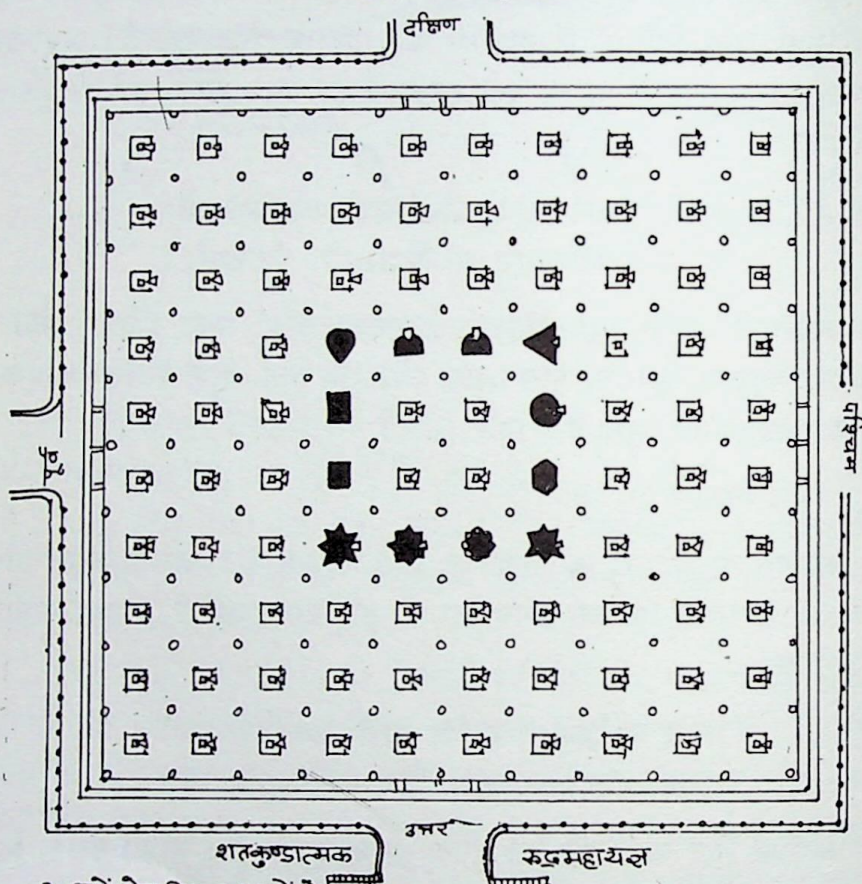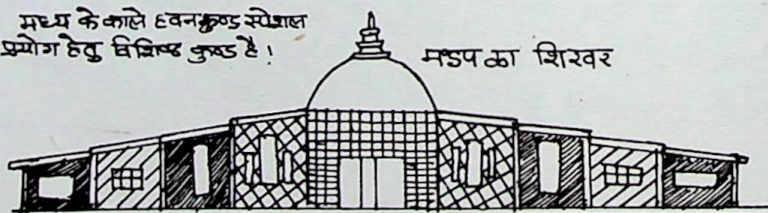
**रुद्रयाग में प्रधान वेदी निर्णय**

> सर्वत्र ग्रहवेदी ऐशान्यां कार्या रुद्रयागे तु रुद्रपीठ
> रुद्रपीठा दक्षिणभार्गे एव कार्या
>
> *–कुण्डरत्नावली १५२*

> वर्जयित्वा रुद्र होममीशान्यां ग्रह वेदिका।
>
> *–ग्रहपीठमालायाम्*

रुद्रयाग में रुद्रपीठ ईशान्य में स्थापित होगी। सर्वत्र नवग्रह पीठ ईशान्य में होती हैं पर रुद्रयाग में नवग्रहपीठ रुद्रपीठ से दक्षिण में होगी। रुद्रयाग में मण्डप प्रवेश पश्चिम द्वार से भद्रसूक्त बोलते हुए किया जाता है। **कुण्डादीशान्यां मण्डपमध्य एव रुद्रवेदी कार्या,** प्रधान कुण्ड के ईशान्य में या मण्डप के मध्य बीचोबीच, में रुद्रपीठ की स्थापना होती है।

## रुद्रयाग में आहुतिविचार

(१) **रुद्रयाग :** ग्यारह ब्राह्मणों द्वारा नीलसूक्त की प्रति ऋचा से, एक लाख इक्कीस हजार मन्त्रों की आहुति से एक रुद्र याग होता है। रुद्रयज्ञ में प्रधानपीठ पर एकलिंगतोभद्र या चतुर्लिंगतोभद्र की स्थापना होती है। उस पर प्राणप्रतिष्ठा युक्त रुद्रयन्त्र रखा जाता है। हवनात्मक रुद्रयाग में १९,९७५ आहुति शाकल्य की हो बाकी पायस और घृत की होती है।

**दशमुखकोटि होम**
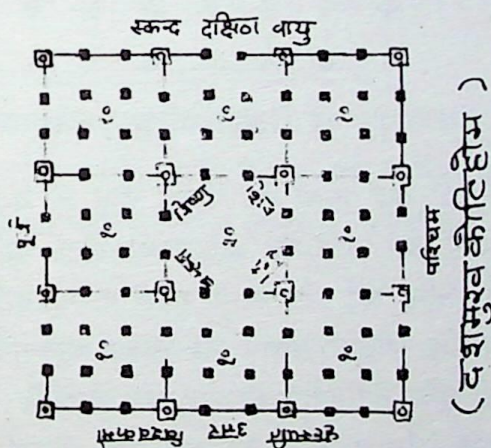
(२)**महारुद्र याग :** १२१ ब्राह्मणों द्वारा तीन लाख बीस हजार आहुति का विधान महारुद्र यज्ञ में होता है। महारुद्रयज्ञ में अष्टलिंगतोभद्र या

द्वादशलिंगतोभद्र की प्रधानपीठ बनाई जाती है। उसमें प्राणप्रतिष्ठित 'रुद्रयन्त्र' रखा जाता है। हवनात्मक महारुद्र में २,१८,५२६ आहुति शाकल्य की होती है बाकी पायस और घृत की होती है।

(३) **अतिरुद्र महायाग :** १३३१ ब्राह्मणों द्वारा ११ महारुद्रों के समकक्ष तीन लाख, अस्सी हजार आहुति से अतिरुद्र महायज्ञ सम्पन्न होता है। अतिरुद्र महायज्ञ में प्रधान-पीठ पर हरिहरब्रह्मामण्डल की स्थापना की जाती है। उस पर प्राणप्रतिष्ठा सुवर्णमय रुद्रयन्त्र रखा जाता है। हवनात्मक अतिरुद्र महायज्ञ में २४, ०४, ४८० आहुति शाकल्य की होती है बाकी पायस घृत की होती है।

**शतमुखकोटि होम**
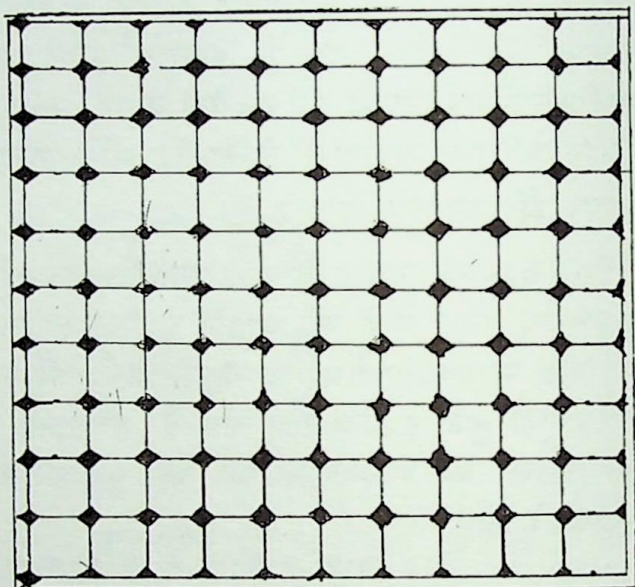
## यज्ञ में विचारणीय बिन्दु

यज्ञ में चार बातें मुख्य हैं। पहली बात तो यह है कि जो यज्ञ करना चाहता है उसे सत्य का अवलम्बन लेना चाहिए। दूसरी बात उसे द्रव्य का अर्जन, धर्म और न्याय पूर्वक करना चाहिए। तीसरी बात उसे द्रव्य का मोह छोड़कर त्याग की भावना अपनानी चाहिए। देवता को लक्ष्य कर द्रव्य का त्याग ही यज्ञ कहलाता है। चौथी बात इतर जनों में असूया (ईर्ष्या) बुद्धि छोड़कर उन्हें अन्नादि अभीष्ट पदार्थ देने का उत्साह मन में उत्पन्न विद्यमान रहना चाहिए।

# हवनात्मक शतचण्डी प्रयोग

**नृपोपद्रव आपन्ने दुर्भिक्षे भूमिकम्पने।**
**अतिवृष्टी अनावृष्टौ पर चक्र भये क्षये॥**
**सर्वे विघ्नां विनश्यन्ति शतचण्डी विधौ कृते॥**
**रोगाणां वैरिणां नाशो धनपुत्र समृद्धयः।**
**शंकरस्य भवस्या वा प्रसाद निकटे शुभम्॥**

*–मन्त्रमहोदधि*

शतचण्डी प्रयोग से राजा उपद्रव, गांव, शहर में दुर्भिक्ष, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसे प्राकृतिक प्रकोपों से शान्ति मिलती है। शत्रुनाश, रोगनाश, ऋणनाश, अक्षय धन की प्राप्ति, पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति, शतचण्डी प्रयोग से सम्भव है। भगवती जगदम्बा एवं शंकर की प्रसन्नता से सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। अतः शिव-शक्ति की संयुक्त प्रसन्नता हेतु शतचण्डी का प्रयोग कलिकाल में अमोघ कहा गया है।

### ❖ देवी यज्ञ का विधान—

**'सावर्णि सूर्यतनयो'** से प्रारम्भ करके **'सावर्णिर्भविता मनु.'** तक १३ अध्याय व ७०० श्लोकों को 'चण्डीपाठ' कहा गया है। इस पाठ में कवच, अर्गला, कीलक एवं निवार्ण मन्त्र शामिल हैं। चण्डीपाठ करते समय पुस्तक हाथ में नहीं रखी जाती। देवी यज्ञ के कवच, अर्गला एवं कीलक की आहुति नहीं लगती।

**रक्षाकवचगै मन्त्रै होमं तत्र न कारयेत्।**
**मौख्यार्टकवचगै मन्त्रैः प्रतिश्लोकं जुहोति यः**
**स्याद्देहपतनंतस्य, नरकं प्रतिपद्यते॥**

*–कात्यायनी तन्त्रे*

इसी प्रकार से चतुर्थ अध्याय के चार श्लोक २४ से २७ तक रक्षा मन्त्र (कवचात्मक) होने से इनकी आहुति नहीं लगती। देवी यज्ञ के चार दिन तक निर्धारित चण्डी पाठ का विधान है तथा पांचवें दिन शुभ मुहूर्त में यज्ञ आहुति प्रारम्भ होनी चाहिए। यह विधान नवचण्डी एवं शतचण्डी में लागू होता है।

देवीयज्ञ के सम्पुट-मन्त्रों एवं विभिन्न प्रकार की हवन-सामग्री का बड़ा भारी माहात्म्य है। अलग-अलग मन्त्रों के सम्पुट से अलग-अलग प्रकार के चमत्कारी कार्य होते हैं। इसके लिए आप हमारी पुस्तक '**अनुभूत यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र और टोटके**' अवश्य पढ़ें। कलियुग में देवीयज्ञ का चमत्कार सबसे तीव्रगति से तत्काल मिलता है। यज्ञ के अन्त में ब्राह्मण भोजन के पूर्व दो से दस वर्ष के मध्य की आठ या दस कुमारी कन्याओं की पूजा एवं दो बटुक की पूजा कर उन्हें भोजन, दक्षिणा से तृप्त किया जाता है।

### ❖ देवीप्रतिष्ठा मुहूर्त—

सर्वदेवताओं की प्रतिष्ठा चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख और माघ मास में करना शुभ है।

**श्रावणे स्थापयेल्लिंगं, आश्विने जगदम्बिकाम्।**
**मार्गशीर्षे हरिं चैव, सर्वान् पौषेऽअपि केचन॥**

*—मुहूर्तगणपति*

श्रावण में शंकर की स्थापना करना, आश्विन में जगदम्बा की स्थापना करना, मार्गशीर्ष में विष्णु की स्थापना करना और पौष मास में किसी भी देवता की स्थापना करना शुभ है।

हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, श्रावण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी एवं मृगशीर्ष में सभी देवताओं की खास कर देवी की प्रतिष्ठा शुभ है।

**यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः**

*—वसिष्ठ संहिता*

जिस देव की जो तिथि हो, उस दिन उस देव की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। शुक्ल पक्ष की तृतीया, पंचमी, चतुर्थी, षष्ठी, सप्तमी, नवमी, दशवीं, द्वादशी, त्रयोदशी एवं पूर्णिमा तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी देवी कार्य के लिए सब मनोरथों को देने वाली हैं। शुक्ल पक्ष में और कृष्ण पक्ष की दशमी तक प्रतिष्ठा शुभ रहती है। इसी प्रकार शनि, रवि एवं मंगल को छोड़कर अन्य सभी वारों में यज्ञकार्य एवं देव-प्रतिष्ठा शुभ कहे गए हैं।

# देव-स्थापना के विशेष लग्न

स्थाप्यो हरिर्दिन करो मिथुने महेशो।
नारायणश्च युवतौ घटके विधाता॥
देव्यो द्विमृत्तंभवनेषु निवेशनीयाः।
क्षुद्राश्चरे स्थिरगृहे निखिलाश्च देवाः॥

मिथुन लग्न में विष्णु, महादेव तथा सूर्य की स्थापना करनी चाहिए। कन्या लग्न में कृष्ण की, कुम्भ लग्न में ब्रह्मा की, द्विस्वभाव लग्नों में देवियों की स्थापना करनी चाहिए। चर लग्नों में योगिनियों की और स्थिर लग्नों में सर्व देवताओं की स्थापना करना शुभ है।

## ❖ शतचण्डी, सहस्त्रचण्डी व लक्षचण्डी के मुहूर्त

**वैशाखः फाल्गुनोर्मा माघः श्रावणो मार्ग एव च।**
**आश्विनः कार्तिको मासाः पूजायां तु शुभवहाः॥**

नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्त्रचण्डी एवं लक्षचण्डी जैसे जप अनुष्ठान कार्यों में वैशाख, फाल्गुन मास, श्रावण, मार्गशीर्ष, आश्विन तथा कार्तिक ये सात महीने श्रेष्ठ हैं। यही महीने गायत्री-यज्ञ के लिए भी प्रशस्त कहे गए हैं।

## ❖ देवीयज्ञ के प्रधान वेदी निर्णय

देवी यज्ञ में प्रधान वेदी ईशान्य या पूर्व दिशा में होती है। सर्वतोभद्र पीठ, या लिंगतोभद्र पीठ पर '**सप्तशतीयन्त्र**' की स्थापना होती है तथा पीठ के कलश पर अष्टभुजा वाली सुवर्णयुक्त देवी की मूर्ति स्थापित होती है।

## ❖ चण्डी आहुति विचार

(१) **शतचण्डी**—शतचण्डी में एक सौ चण्डीपाठ ११ ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है तथा दशांश की आहुति लगती है। यह कार्य नौ दिन में परिपूर्ण होना चाहिए।

(२) **सहस्त्रचण्डी**—सहस्त्रचण्डी में एक हजार 'चण्डी पाठ' १११ अथवा १०८ ब्राह्मणों द्वारा किये जाते हैं तथा दशांश की आहुति के साथ यह कार्य भी नव दिन में परिपूर्ण होना चाहिए।

(३) **लक्षचण्डी** —लक्षचण्डी में ११११ अथवा ११०८ ब्राह्मणों द्वारा एक लाख 'चण्डीपाठ' किया जाता है जिसमें दशांश की आहुति लगती है। यह अनुष्ठान ४५ दिन के भीतर परिपूर्ण होना चाहिए।

**मूर्ति प्रतिष्ठा के मुहूर्त के विषय में विचार**

**(१) चैत्रे फाल्गुणे वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।**
**माघे वापि सर्व देवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत॥**

*—मत्स्य पुराण*

**(२) देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठा में**

**देव्याः माघेऽऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदः।**
**न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽथकारणम्।**
**सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः॥**

*—देवी पुराण*

**(३) धर्मसिन्धुकार के मत से**

**देव्याः माघेऽऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदः॥**

**(४) सात वारों में प्रतिष्ठा करने का फल**

**तेजस्विनी क्षेम कृदग्निदाहविधायिनी स्याद् धनदा दृढ़ा च।**
**आनन्दकृत् कल्प विनाशिनी च सूर्यादि वारेषु भवेत्युत्तिष्ठ॥**

*—श्रीपति पद्धतिः*

रविवार को की गई प्रतिष्ठा तेजस्विनी, सोमवार को कल्याणकारिणी, मंगलवार को अग्नि-दाहकारिणी, बुधवार को धनदायिनी, गुरुवार को बलदायिनी, शुक्रवार को आनन्दकारिणी और शनिवार को कल्पविनाशिनी होती है।

(क) चाण्डाल के स्पर्श से, मद्य के स्पर्श से दूषित, दुष्ट ब्राह्मण और दुष्ट क्षत्रिय के स्पर्श से मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

(ख) खण्डित, दग्ध, स्फुटित, मानहीन मूर्ति की प्रतिष्ठा पुनः करनी चाहिए।

(ग) चोर, चाण्डाल, पतित, कुत्ता आदि जीव, रजस्वला स्त्री के स्पर्श होने पर मूर्ति की प्रतिष्ठा पुनः करनी चाहिए।

**(५) विष्णुधर्मोत्तर पुराण में**

चैत्रे वा फाल्गुने मासे ज्येष्ठे वा माधवे तथा।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा सिते।
रिक्तान्य तिथिषु स्यात्सावारे भौमान्यके तथा॥

**(६) हेमाद्रि के कथनानुसार**

विष्णु प्रतिष्ठा माघे न भवति।
माघे कर्तुः विनाशः स्यात्,
फाल्गुने शुभदा सिता॥

**(७) प्रतिष्ठा विधान में ग्राह्य नक्षत्र**

आषाढ़े द्वे तथा मूलमुत्तरत्रयमेव च।
ज्येष्ठा श्रावण रोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा॥
हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा।
अनुराधा तथा स्वाति प्रतिष्ठासु प्रशस्यते॥

अत्र आषाढ़े द्वे इत्यनेन उत्तराषाढ़ा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद त्रयाणां नक्षत्राणां कथनम्॥

**(८) नरसिंह का कथन है**

तथा महाश्विनो मास उत्तमः सर्वकामदः।
देवी तत्र सदा शक्रपांसुनापि प्रतिष्ठा॥
भवेत् फलदा पुंसां कर्कस्थे च वृषस्थिते।
न तिथिर्नच नक्षत्रं नापिवारोऽथ् कारणम्॥

अर्थात्—सब कामनाओं को देने वाली श्रेष्ठ और आश्विन मास के नवरात्रों में भगवती जगदम्बा घर में पुरुषों को फल देने वाली हैं। कर्क (श्रावण) वृष (ज्येष्ठ) के सूर्य में करना ठीक नहीं। वहां वार-नक्षत्र-तिथि आदि भी कारण नहीं होते।

( ९ ) माघवीये-मयूखे-

मातृभैरव वाराह-नारसिंह-त्रिविक्रमाः।
महिषासुर-हन्त्रयश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने।

( १० ) महादेव की प्रतिष्ठा के मुहूर्त-

लिंगस्थापनं तु कर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये
प्रावृषि स्थापित लिंग भवेद् वरयोगदम्॥
हेमन्ते ज्ञानदं चैव शिशिरे सर्वभूतिदम्।
लक्ष्मीप्रदं वसन्ते च ग्रीष्मे च जयशान्तिदम्॥
यतीनां सर्वकाले च लिंगस्यारोपणंमतम्।
श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयनेमुक्ति मिच्छताम॥
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः

*—हेमाद्रौ।*

( ११ ) माघ फाल्गुन-वैशाख-ज्येष्ठाषाढेषु पंचसु।
प्रतिष्ठा शुभदाप्रोक्ता सर्वसिद्धिः प्रजायते।
श्रावणे च नभस्सि च लिंग स्थापनमुत्तमम्।
देव्याः माघाश्विने मासेऽप्युत्तमा सर्वकामदा॥

माघ महीना, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, तथा आषाढ़ महीने में शिवजी की प्रतिष्ठा सब प्रकार से सिद्धि देने वाली कही गई है। श्रावण महीना भी शुभ है। ऋतुओं की दृष्टि से हेमन्त ऋतु में शिवलिंग की स्थापना से यजमान व भक्तों को विशेष ज्ञान की प्राप्ति होती है। शिशिर में शुभ किन्तु वसन्त ऋतु में शिवमन्दिर की प्रतिष्ठा विशेष धनदायक साबित होती है जबकि ग्रीष्म ऋतु में यह प्रतिष्ठा शान्ति, शीतलता व विजय प्रदाता कही गई है। इस प्रकार भगवती जगदम्बा की प्रतिष्ठा माघ एवं आश्विन मास से सर्वश्रेष्ठ फल देने वाली उत्तम कही गई है।

# संक्षेप में मण्डप-निर्माण

प्रतिष्ठादि कार्यों में मण्डप-निर्माण आवश्यक एवं जटिल कार्य है। स्थान की स्थिति को देखते हुए मण्डप का आकार छोटा-बड़ा भी हो सकता है, पर सोलह हाथ लम्बा, सोलह हाथ चौड़ा, समचौरस चबूतरे जैसा बनाना अच्छा रहता है। ऊपर छाया हो, मध्य में चौकोने गुम्बज हों, चबूतरे की ऊंचाई एक जैसी ही ऊंची हो, द्वार चारों दिशाओं में बनावे। प्रवेश द्वार हमेशा पश्चिम में ही होगा।

मण्डप के चारों तरफ ज़मीन पर जौ बोने के लिए पत्थर के टुकड़ों या इंटों से घेरा बनाना चाहिए। मण्डप के चारों ओर बारह स्तम्भ और मध्य भाग में चार स्तम्भ बनाएं। वे इस प्रकार लगाए जायें कि अग्निकोण से वायव्य कोण तक के चारों स्तम्भ एक सीध में दिखाई दें। इसी प्रकार मध्य के चारों स्तम्भ एक सीध में दिखते रहें।

मण्डप दक्षिण-उत्तर, पश्चिम-पूर्व के तीन-तीन भाग करके सूत्र दें। जहां-जहां सूत्र की समाप्ति हो और जहां-जहां सन्धि हो, वहां-वहां पर अग्निकोण से स्तम्भ गाड़ें। पहले बारह खम्भे बाहर के गाड़ें, पांच-पांच हाथ के अन्तर से और चूड़ के सहित दो-दो खम्भे प्रतिदिशा में हों, चारों कोनों में चार, इस प्रकार बारह खम्भे हुए। पांचवां भाग एक-एक हाथ हुआ, उसे जमीन में गाड़ना। पीछे चार खम्भे चूड में साथ आठ-आठ हाथों में आठ अंगुल चौड़े बीच की वेदी के अग्निकोण से उसका पांचवां हिस्सा एक हाथ चौदह अंगुल सात यव और डेढ़ यूका प्रदक्षिणा क्रम से जमीन में गाड़ने चाहिए। फीते से नापने से सुविधा रहती है।

अब सोलह खम्भों पर सोलह बल्लियां देना, उन्हें छिद्र वाली चूड में पहनावें। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—दो-दो लकड़ी अर्थात् आठ लकड़ी और चार कोणों में चार लकड़ी, ये सब अट्ठाइस लकड़ियां हुईं और मध्य में शिखर पर काष्ठ का लट्टू बनावें।

उसमें चारों कानों में चार लकड़ी लट्टू में से खम्भे तक देना, ऐसे सब मिलाकर बत्तीस लकड़ियां हुईं और स्तम्भ से लेकर ४८ होती हैं।
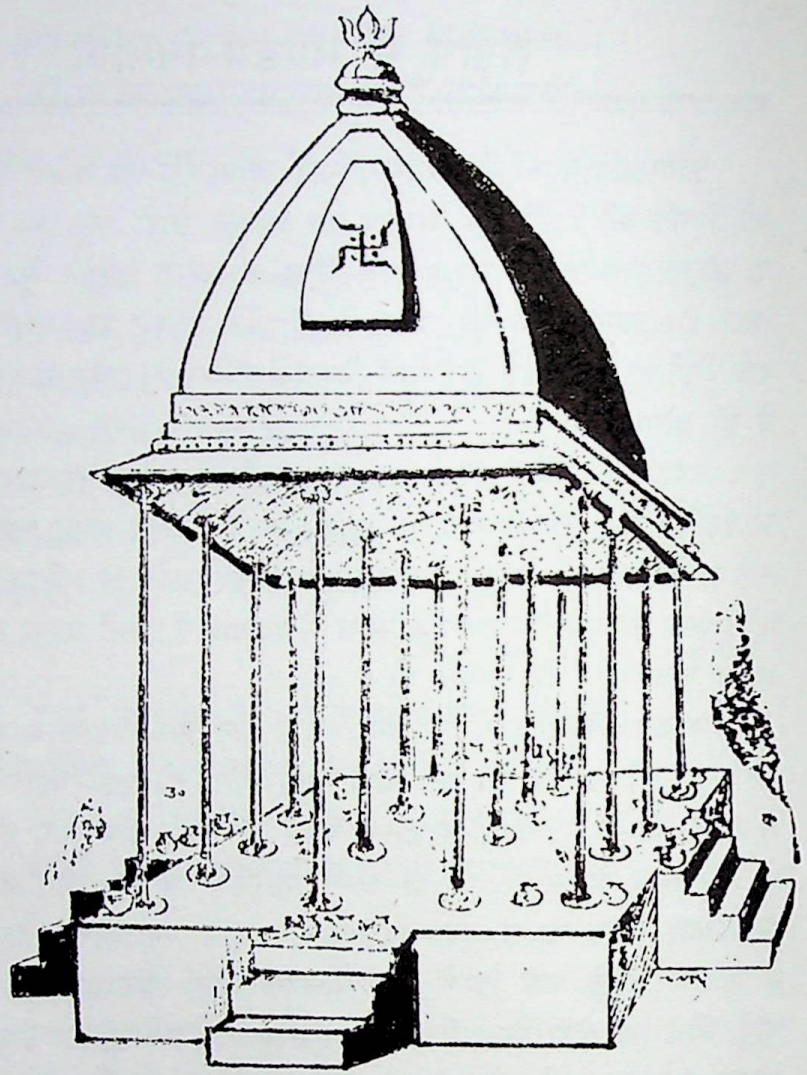
चित्र

मध्य भाग में शिखर बनाकर कोमल बांस या चटाइयां फूस आदि से चारों द्वारों कों छोड़कर छा देवें, तथा चारों तरफ टाटी से ढक देवें। वायु रक्षार्थ चार द्वार के दरवाजे अलग-अलग लगावें और सोलह खम्भों में अच्छे-अच्छे वस्त्र लपेट कर सुन्दर सजावट करें।

## तोरण निर्माण विधि

यज्ञ-मण्डप के चारों द्वारों में तोरण लगावें पूर्व दिशा में बड़ या पीपल का, दक्षिण में गूलर, उदुम्बर, पश्चिम में पीपल या पाकर का, उत्तर में पाकर या पीपल का, सभी प्रकार की लकड़ी न मिलें तो एक ही वृक्ष की लकड़ी चारों ओर लगाएं। सुगन्धित पुष्पों, केले, वृक्ष एवं आम्र पत्रों वाले तोरण अधिक कल्याणकारी होते हैं। यथा—**'सर्वाभावे शमीजंबुखदिराणा मम्यमेन मन्यतमेन वा कार्याणि'**।

मण्डप के चारों ओर ध्वजा एवं पताका भी लगावे। शिव प्रतिमा के समय चारों में त्रिशूल का चिह्न, विष्णु प्रतिमा में शंख-चक्र-गदा-पद्म पूर्वादि क्रम से लगावे। मण्डप के चारों ओर ध्वज-पताका लगावे। त्रिकोणाकार दो हाथ चौड़ी और पांच हाथ लम्बी ध्वजा, दिशाओं के वाहन व रंग वाली हों, उसे दस हाथ के बांस के सिर पर लगावें, पीला रंग पूर्व में, लाल रंग अग्निकोण में, काला दक्षिण में, नीला नैऋत्य में, सफेद ईशान में, हरा या धूम्र, वायव्य में, सफेद व हरा रंग उत्तर में, सफेद रंग ईशान में, सफेद व लाल रंग ईशान पूर्व के मध्य में, पीला या काली ध्वजा नैऋत्य वरुण के मध्य में लगावे।

## दिशाओं में लगने वाली ध्वजाओं के चिह्न व नाम

(शिखर व ध्वजा का रूप)

## दिशाओं में लगनेवाली ध्वजाओं के चिह्न व नाम

आठ ध्वजाएँ दो हाथ चौड़ी एवं पांच हाथ लम्बी होनी चाहिए। पूर्व की काली ध्वजा में हाथी, अग्नि कोण की रक्त ध्वजा में मेंढ़ा (बकरी), दक्षिण की काली ध्वजा में महिष, नैऋत्य की नीली ध्वजा में सिंह, पश्चिम की सफेद में मछली, वायव्य की हरे रंग की ध्वजा में हरिण, उत्तर की सफेद या हरे रंग की ध्वजा में घोड़ा, ईशान्य की सफेद ध्वजा में वृषभ-चिह्न युक्त शिव ध्वज, पश्चिम नैऋत्य के मध्य में पीत व काली ध्वजा में गरुड़ चिह्न होना चाहिए। पूर्व दिशा की ध्वजा को **इन्द्रध्वज,** अग्निकोण-**अग्निध्वज,** दक्षिण दिशा में **यमध्वज,** नैऋत्य में **राक्षसध्वज,** पश्चिम में **वरुणध्वज,** वायुकोण में **वायुध्वज,** उत्तर में **कुबेरध्वज,** ईशान्य को **शिवध्वज** कहते हैं।

## पताका का रंग एवं आयुध

पताका एक हाथ चौड़ी, सात हाथ लम्बी होनी चाहिए, पताका के रंग भी ध्वजा की तरह होंगे। पूर्व की पताका में वज्र, अग्नि कोण में शक्ति, दक्षिण में दण्ड, नैऋत्य में खड्ग, पश्चिम में पाश, वायव्य में अंकुश, उत्तर में गदा, ईशान्य में त्रिशूल, पूर्व-ईशान्य के मध्य में कमण्डल, पश्चिम-नैऋत्य मध्य में चक्र बनाना चाहिए। इस प्रकार के कुल दस ध्वज एवं, दस पताकाएं कुल बीस संख्या हुई।

ये दस हाथ के बांस से ऊपर-विदिशा में लगाएं। मण्डप के मध्य में या ईशान्य में पंचरंगा महाध्वज-वृषभ से चिह्नित कर तीन हाथ लम्बा, चार हाथ चौड़ा लगाना चाहिए।

## स्तम्भों पर वस्त्रों के रंग

(१) मण्डप के मध्य में स्थित ईशान्य कोण के स्तम्भ में लाल वस्त्र।
(२) अग्निकोण के स्तम्भ में काला वस्त्र।
(३) नैऋत्य कोण के स्तम्भ में पीला वस्त्र।
(४) वायव्य कोण के स्तम्भ में पीला वस्त्र।

## बाहरी स्तम्भों पर वस्त्रों के रंग

(१) ईशान्य के स्तम्भ पर लाल
(२) ईशान्य-पूर्व स्तम्भ में श्वेत
(३) पूर्व-अग्निकोण मध्य में काला
(४) अग्निकोण में काला
(५) अग्निकोण-दक्षिण के मध्य में सफेद
(६) दक्षिण-नैऋत्य कोण के मध्य पर धूम्र
(७) नैऋत्य-पश्चिम मध्य में सफेद
(८) पश्चिम-वायव्य कोण में सफेद
(९) वायव्य कोण में पीला
(१०) उत्तर और वायव्य कोण में पीला
(११) उत्तर-ईशान मध्य कोण में लाल वस्त्र लपेटें।

दरवाजों के ऊपर वाले तोरणों पर पूर्व में शंख लाल रंग का, दक्षिण में चक्र काले रंग का, पश्चिम में गदा सफेद, उत्तर में पद्म पीले रंग का होना चाहिए।

## कुश विचार

प्रत्येक प्रकार के हवन एवं पवित्र कामों में पुष्टि-शान्ति एवं मृतक कार्यों तक में कुश का बड़ा माहात्म्य, आवश्यकता दिखलाई देती है। कुश मुद्रिका भी धारण की जाती है। इस पर विचार करना अभिप्रेत है। जो इस प्रकार है।

**यथा चक्रायुधं विष्णौ र्यथा शूलं हरस्य च।**
**यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य तथा विप्रकरे कुशाः॥**

*—कारिका*

जिस प्रकार विष्णु का आयुध चक्र, शंकर का त्रिशूल एवं वज्र इन्द्र का शस्त्र है, ठीक उसी प्रकार से कुश ब्राह्मणों का परम अमोघ शास्त्र है।

**कुश कुञ्जर विप्राणाम्, वेदो खड्ग धनुर्धरः।**
**गायत्री सर्व सैन्यानि, स विप्रो रणगर्जितः॥**

*—प्रकीर्ण*

एक तेजस्वी ब्राह्मण के लिए चारों वेद उसके खड्ग एवं धनुष हैं। गायत्री उसकी सेना एवं कुशाएं हाथी के समान उसका दिव्य वाहन हैं। जिस पर आरूढ़ होकर वह विप्र रण में केसरी सिंह की तरह गर्जना करता है।

**अनामिका मूलदेशे पवित्रं धारयेद्विजः।**

*—मार्कण्डेय*

प्रत्येक धार्मिक कृत्य में अनामिका के मूल प्रदेश में द्विज मात्र को कुश निर्मित पवित्रिका धारणं करनी चाहिए। नित्य-नैमित्तिक कर्म में दो दर्भ की, पितृ कार्य में तीन दर्भ की, एक शान्ति-पुष्टि कर्म में चार दर्भ की पवित्रिका धारण करनी चाहिए। जप-होम आदि कार्यों में असुर चोरी से वस्तुओं को अपवित्र कर देते हैं परन्तु पवित्रिका हाथ में होने से इस दोष की शंका नहीं रहती। पवित्रिका की जगह सोलह माशा की सुवर्ण मुद्रिका हो तो पवित्रिका की आवश्यकता नहीं रहती।

## दरिद्रता नाशक अंगूठी

**तारताम्रसुवर्णानामर्क षोडशखेन्दुभिः।**
**कृता त्रिशक्तिमुद्रेयं तीव्रदारिद्र्यनाशिनी॥**

*—शारदातिलक*

सोलह रत्ती ताम्बा, बारह रत्ती चांदी एवं दस रत्ती सुवर्ण इन तीनों धातु की पवित्रिका पुष्य नक्षत्र के घटीपल में बनाकर पहनी जाये तो कैसी भी दरिद्रता हो धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। यह अनुभूत है। हमारे कार्यालय में इस प्रकार के प्रयोग किए गये हैं जो ९०% सफल रहे हैं। कुश विद्युत का कुसंचालक है। पूजा के समय कुशासन नीचे होने से पूजा व यन्त्रों द्वारा प्राप्त दिव्य शक्ति की विद्युत तरंगें अर्थ (पृथ्वी में) नहीं होतीं। वे तरंगें शरीर में ही संचित रहकर ऊर्ध्वगामी होकर चेहरे के तेज को बढ़ाती हैं। इसलिए ऋषि लोग पैर में लकड़ी की खड़ाऊं पहनते थे ताकि उनके शरीर की दिव्य-विद्युत तरंगें व्यर्थ में ही नष्ट न हो जायें।

## दक्षिणा विचार

**यज्ञो दक्षिणया सार्द्ध पुत्रेण च फलेन च।**
**कर्मिणां फलदाता चेत्येव वेदविदो विदुः॥**
**कृत्वा कर्म च तस्यैव शीघ्र दद्याच्च दक्षिणाम्।**
**तत्कर्मफल-माप्नोति वेदैरुक्त मिदं मुने॥**
**मुहूर्ते समतीते तु भवेच्छतगुणा च सा।**
**त्रिरात्रे तद्दशगुणा सप्तेह द्विगुणा ततः॥**
**मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्रह्मणानां च वर्द्धते।**
**संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटि गुणा भवेत्॥**
**कर्म्म तद्यजमानानां सर्व च निष्फलं भवेत्।**
**स ब्रह्मस्वापहारी च न कर्माहो शुचिर्नरः॥**

*—ब्रह्मवैवर्त पुराण*

यज्ञ की दक्षिणा फल के सहित तत्काल देनी चाहिए। यदि यज्ञकर्ता का पुत्र साथ हो तो उसे भी आधी दक्षिणा देनी चाहिए। कर्म की निवृति के साथ तत्काल दक्षिणा दे देनी चाहिए, तभी उस कर्म का फल मिलता है। एक मुहूर्त के बीत जाने पर दक्षिणा दुगुनी हो जाती है। तीन रात्रि व्यतीत होने पर दस गुणा, एक सप्ताह व्यतीत होने पर बीस गुणा, एक महीना व्यतीत होने पर लक्षगुणा, एक संवत्सर बीत जाने पर तीन करोड़ गुणा ब्रह्म-ऋण बढ़ जाता है। दक्षिणा में क्रमानुसार देरी से यजमान हेतु किया गयां सारा काम निष्फल हो जाता है तथा यजमान को वज्रलेप के समान ब्रह्महत्या का दोष लगता है जिसकी शुद्धि किसी भी प्रकार के प्रायश्चित्त से नहीं हो सकती। और कहा भी है—

**अन्नहीनो दहेराष्ट्रं, मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः।**
**यजमानं अदक्षण्यो, नास्तियज्ञ समो रिपुः॥**

जिस प्रकार अन्नहीन राष्ट्र का नाश हो जाता है, मन्त्रहीन ऋत्विज का नाश हो जाता है ठीक उसी प्रकार से दक्षिणा से हीन यजमान का नाश हो जाता है। यज्ञ में दक्षिणा के समान यजमान का कोई शत्रु नहीं है। यजमान को दक्षिणा हमेशा धर्म से कमाये हुए धन से, शान्त चित्त और प्रसन्न मुद्रा से तत्काल देनी चाहिए।

# हवन में अग्निवास एवं ग्रहमुख आहुति

यज्ञ-यागों में अग्नि में प्रथम आहुति शुभ ग्रहों की होनी चाहिए। इसका विचार इस प्रकार से है—स्पष्ट मान से सूर्य जिस नक्षत्र पर है उस नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक अर्थात् दिन नक्षत्र तक गणना से क्रमशः तीन-तीन नक्षत्रों २७-३ ये नव ग्रहों के भाग होते हैं। ९ ग्रहों में प्रथमादिक नवम पर्यन्त विभागों के क्रमशः (१) सूर्य, (२) बुध, (३) शुक्र, (४) शनि, (५) चन्द्रमा, (६) मंगल, (७) बृहस्पति, (८) राहु, और (९) केतु—ये हवन में ग्रहों के मुख कहे गए हैं।

उदाहरण से जैसे संवत् २०२८ चैत्रशुक्ल नवमी रविवार तदनुसार ता. ४-४-७१ को सूर्य रेवती नक्षत्र में है और इस दिन चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में है। रेवती से पुनर्वसु तक संख्या ८ में तीन का भाग देने से ८ ÷ ३ लब्धि २ शेष २ अर्थात् तीसरे ग्रह शुक्र का हैं। अतः इस दिन किए गये हवन में प्रथम आहुति शुक्र शुभग्रह के मुख में जावेगी तो उत्तम शुभफल होगा। पापग्रह के मुख में होम की आहुति नहीं पड़नी चाहिए। उसका फल अशुभ होता है।

यदि दैववश भूल से पापग्रह के मुख में आहुति चली गई तो ऐसी स्थिति में शान्ति कर्म के साथ तपस्वी आचार निष्ठ ब्राह्मण को गौ का दान देना चाहिए। शान्ति के अनेक उपाय शास्त्रान्तर में सम्यक् उपलब्ध होते हैं।

**होम के दिन अग्नि का वास भूमि में होना चाहिए**—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से कृष्णपक्ष अमावस्या तक ३० तिथियों को लक्षित तिथि में १ जोड़कर उसमें वार संख्या (रवि से शनि तक ७) जोड़कर, इस जोड़ में ४ का भाग देने से यदि शून्य और तीन (०,३) शेष बचें तो भूमि में अग्नि का वास होता है। भूमि में अग्निवास तिथि का हवन उत्तम शुभेष्ट फलद होगा।

४ का भाग देने से यदि १ शेष बचे तो स्वर्ग में अग्नि की स्थिति होगी। उसमें होम करने से प्राणनाश, और २ शेष बचने से अग्नि पाताल में रहने से इस दिन किये गए हवन से धन का नाश होता है। जैसे पूर्व उदाहरण में नवमी ९+१-१०+ रविवार १-११ में चार का भाग देने पर शेष तीन बचेंगे। ३ अर्थात् भूमि में ही अग्निवास होने से हवन के लिए उत्तम सिद्ध होता है।

उपनयन, विवाह इत्यादि संस्कारों एवं नित्य नैमित्तिक शुभ कार्यों में उक्त अग्निवास विचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि यह विचार केवल काम्य कर्मों में ही किया जाता है।

### भूमि-शयन अभिज्ञान

मकान-दूकान मुहूर्त, मंदिर-प्रतिष्ठा, यज्ञ कार्यों एवं नींव के मुहूर्त में पहले यह पता लगाना आवश्यक है कि भूमि जागृत है या सोई हुई है। सोई हुई अवस्था में भूमि-पूजन का निषेध तथा जागृत अवस्था में भूमि-पूजन शीघ्र फलदाई होता है। सूर्य संक्रांति से ५/७/९/१५/२१ तथा २४ वें दिनों में पृथ्वी सोई रहती है। अन्य मत से ५/७/९/१२/१९ तथा २६ वें दिनों में पृथ्वी जागृत रहती है।

## कर्म विशेष में अग्नि के विशिष्ट नाम

विविध संस्कारों एवं अलग-अलग काम्य प्रयोगों में अग्नि के नाम अलग-अलग प्रकार से उच्चारित किये जाते हैं। संकल्प में विशिष्ट अग्नि का नाम लेने से वह अग्नि उस विशिष्ट प्रकार के कार्य को करने में त्वरित गति से सहायक सिद्ध होती है। यथा—

**पावको लौकिके अग्निः प्रथमः संप्रकीर्तितः।**
**अग्निस्तु मारुते नाम गर्भाधाने विधीयते॥**
**ततः पुंसवने ज्ञेयः पावमानस्तथैव च।**
**सीमन्ते मंगलो नाम, प्रबलो जातकर्मणि॥**
**नाम्नि वे पार्थिवो अग्निः प्राशने तु शुचि स्मृतः।**
**सभ्यो नाम स चौले तु व्रतादेशे समुद्भवः॥**

गोदाने सूर्यनामाग्निः विवाहे योजको मतः।
आवसध्ये द्विजो श्रेयो वैश्वदेवे तु रुक्यकः॥
प्रायश्चित्ते विटश्चैव, पाकयज्ञेषु पावकः।
देवानां हव्यवाहश्च पितृणां कव्यवाहनः॥
शान्ति के वरदः प्रोक्तः पौष्टिके बलवर्धनः।
पूर्णात्यां मृडो नाम, क्रोधाग्निश्चाभिचारके॥
वश्यार्थे कामदो नाम, वनदाहे तु दूषकः।
कुक्षौ तु जठरो ज्ञेय क्रव्यादो मृतदाहके॥
वह्नि नामा लक्षहोमे, कोटि होमे हुताशनः।
वृषोत्सर्गेऽध्वरो नाम, शुचये ब्राह्मण स्मृतः।
समुद्रे वाडवो अग्निः यमे संवर्तकस्तथा॥
ब्रह्मावे गार्हपत्यश्च ईश्वरो दक्षिणस्तथा।
विष्णुराहवनीयः स्यादग्नि होत्रे त्रयोऽग्नयः॥
ज्ञात्वैवमग्निनामानि गृह्य कर्म समाचरेत्॥

*—देवलः स्मृति*

लौकिक कामों के लिए पावक नामक अग्नि, गर्भाधान में मारुत नाम की अग्नि, पुंसवन में पावमान, सीमन्त में मंगल, जातकर्म में प्रबल, नामकरण में पार्थिव, अन्नप्राशन में शुचि, चौल में सभ्य, गोदान में सूर्याग्नि, विवाह में योजक, वैश्वदेव में रुक्मक, प्रायश्चित्त कर्म में विट; ब्रह्मभोजन में पावक, देव कार्य में हव्यवाहन, पितृकर्म में कव्यवाहन, शान्ति कर्म में वरद, पौष्टिक कार्य में बलवर्धन, पूर्णाहुति में समय मृड, अभिचार कर्मों में क्रोधाग्नि, वशीकरण में कामदा, वनदाह में दूषक, उदर में जठराग्नि, मृत कार्य में क्रव्यदा, लक्षहोम एवं कोटिहोम में हुताशन, वृषोत्सर्ग में अध्वर, शुचि में ब्राह्मणाग्नि, समुद्र में बड़वाग्नि, ब्रह्मा के कार्यों में गार्हपत्य, विष्णु कार्य में अग्निहोत्र, अग्नि के इन नामों का आह्वान करके कार्य करना चाहिए जिससे शीर्घ सफलता मिलती है।

नवग्रह होम के समय सूर्य ग्रह की शान्ति हेतु **कपिल,** चन्द्रमा हेतु **पिंगला,** मंगल हेतु **धूमकेतु,** बुध की **जठराग्नि,** गुरु हेतु **शिखि,** शुक्र हेतु **हाटक,** शनि हेतु **महातेज,** राहु-केतु के लिए **हुताशन** नाम की अग्नि का स्मरण किया जाता है।

चाण्डाल, शूद्र, चिताग्नि, सूतकी एवं पतित के घर की अग्नि भूलकर भी यज्ञ कार्यों में न लावें।

## कुशकण्डिका-विधान तथा अग्नि-जिह्वाओं के नाम

**सूतजी कहते हैं—** ब्राह्मणो! अब मैं याग-विशेषों में स्वगृह्याग्नि-विधि कह रहा हूं। अपनी वेदादि शाखा के अनुकूल ही गृह्याग्नि-विधि करनी चाहिए। दूसरे की शाखा के विधान से याग-विशेषों का अनुष्ठान करने पर भय की प्राप्ति होती है और कीर्ति का नाश होता है। पुत्र, कन्या और आगे उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि गृह्यनाम से कहे जाते हैं। यजमान के जितने दायाद होते हैं, वे सब गृह्यनाम से कहे जाते हैं। उनके संस्कार, याग और शान्तिकर्म-क्रियाओं में अपने गृह्याग्नि से ही अनुष्ठान करना चाहिए। आचार्य द्वारा विहित कल्प को दक्षस्मृति में कहा गया है। आचार्य इन कर्मों में तीन कुशाओं का परिग्रहण करता है। जिस मन्त्र से कुशा ग्रहण करता है, उसके ऋषि दक्ष, जगती छन्द और विष्णु देवता हैं। पृथ्वी के शोधन में **'भूरसि०'** (यजु० १३। १८) इस मन्त्र का

चित्र

---

पद्मनाभो हृषीकेशो दाता दामोदरो हरिः। त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्रीतिवंधनः॥
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो ध्रुवः शुचिः। संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञस्त्रिपञ्चाशद्गुणात्मकः॥
विदारी विंनयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः। यज्ञस्त्वं हि वषट्कारस्त्वमोंकारस्त्वमग्नयः॥
त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरुषोत्तमः।
नमो देवाधिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च। अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज॥
ब्रह्मस्तवमिमं प्रोक्तं महादेवेन भाषितम्। प्रयत्नाद् यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति॥
ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं हृत्पद्ममध्ये स्वयमाव्यवस्थितम्।
उपासकानां प्रभुमेकमीश्वरं ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम्॥

*(मध्यमपर्व २। १२। १५६-१६३)*

विनियोग करे। इस मन्त्र के ऋषि सुवर्ण हैं, गायत्री और जगती छन्द तथा सूर्य देवता हैं। अनन्तर उन तीन कुशाओं को तर्जनी तथा अंगूठे से पकड़कर ईशानकोण से लेकर दक्षिण होते हुए ईशानकोण तक वलयाकृति में घुमाये तथा उनसे भूमि का मार्जन करे। यही **परिसमूहन**-क्रिया है। **'मा नस्तोके०'** (यजु० १६। १६) इस मन्त्र के द्वारा गोमय से भूमि का **उपलेपन** करे। तदनन्तर (खैर की लकड़ी से बने स्फ्य के द्वारा) **रेखाकरण** करे। **पूरब से पश्चिम की** ओर तीन रेखाएं खींचे। पहली रेखा दक्षिण की ओर अनन्तर उत्तर की ओर बढ़े। इसके विपरीत करने पर अमङ्गल होता है। इसके बाद अङ्गुष्ठ तथा अनामिका से उन तीनों रेखाओं से **मिट्टी** निकाले, इसे **उद्धरण** कहा जाता है। इस समय **'मित्रावरुणाभ्यां०'** (यजु० ७। २३) इत्यादि मन्त्रों का स्मरण करे। अनन्तर कुश-पुष्पोदक अथवा पञ्चगव्य या पञ्चरत्नोदक अथवा पञ्चपल्लवों के जलसे **अभ्युक्षण** (अभिसिञ्चन) करे। अनन्तर कर्मसाधनभूत लौकिक स्मार्त अथवा श्रौताग्नि का आनयन करे और अपने सामने स्थापित करे। इस क्रिया में **'मे गृह्णामि०'** इस मन्त्र का पाठ करे। **'क्रव्यादमग्निं०'** (यजु० ३४। १९) इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए लायी गई अग्नि में से कुछ आग दक्षिण दिशा की ओर फेंक दे, यह **'क्रव्यादाग्नि'** कही गयी है। क्रव्यादाग्नि का ग्रहण न करे। **'संसरक्ष०'** इस मन्त्र से उस अग्नि का आवाहन करे। तदनन्तर **'वैश्वानर०'** (यजु० २६। ७) इस मन्त्र से कुण्ड आदि में अग्नि-स्थापन करे। **'बध्नासि०'** इस मन्त्र से अग्नि की प्रदक्षिणा करे तथा अग्निदेव को नमस्कार करे। अग्नि के दक्षिण में वरण किये गए ब्रह्मा को कुश के आसन पर **'ब्रह्मन् इह उपविश्यताम्'** कहकर बैठाये। उस समय **'ब्रह्म जज्ञानं०'** (यजु० १३। ३) तथा **'दोग्ध्री धेनुः०'** इन दो मन्त्रों का पाठ करे। अग्नि के उत्तरभाग में प्रणीता-पात्र को स्थापित करे। **'इमं मे वरुण०'** (यजु० २१। १) इस मन्त्र से प्रणीतापात्र को जल से भर दे। इसके अनन्तर कुण्ड के चारों ओर कुश-परिस्तरण करे और काष्ठ (समिधा), व्रीहि, अन्न, तिल, अपूप, भृङ्गराज, फल, दही, दूध, पनस, नारिकेल, मोदक आदि यज्ञ-सम्बन्धी प्रयोज्य पदार्थों को यथास्थानं स्थापित करे। विकंकत वृक्ष की लकड़ी से बनी स्रुवा तथा शमी, शमीपत्र, चरुस्थाली आदि भी स्थापित करे। प्रणीता-पात्र का स्पर्श होम-काल में नहीं करना चाहिए। स्नान-कुम्भ को यज्ञपर्यन्त स्थिर रखना चाहिए। प्रादेशमात्र के दो पवित्रक बनाकर प्रोक्षणी-पात्र में स्थापित

करे। प्रणीता-पात्र के जल से प्रोक्षणी-पात्र में तीन बार जल डाले। प्रोक्षणी-पात्र को बायें हाथ में रखकर मध्यमा तथा अङ्गुष्ठ से पवित्रक ग्रहण कर **'पवित्रं ते०'** (ऋ० ९। ८३। १) इस मन्त्र से तीन बार जल छिड़के, स्थापित पदार्थों का प्रोक्षण करे और प्रोक्षणी-पात्र को प्रणीता-पात्र के दक्षिण भाग में यथास्थान रख दे। प्रादेशमात्र के अन्तर में आज्यस्थाली रखे। घी को अग्नि में तपाये, घी में से अपद्रव्यों का निरसन करे। इसके बाद पर्यग्निकरण करे। एक जलते हुए आग के अंगारे को लेकर आज्यस्थाली और चरुस्थाली के ऊपर भ्रमण कराये। इस समय **'कुलायिनी०'** (यजु० १४। २) इस मन्त्र का पाठ करे। अनन्तर स्रुवा को दायें हाथ में ग्रहण कर अग्नि पर तपाये। सम्मार्जन-कुशाओं से स्रुवा को मूल से अग्रभाग की ओर सम्मार्जित करे। इसके बाद प्रणीता के जल से तीन बार प्रोक्षण करे। पुनः स्रुवा को आग पर तपाये और प्रोक्षणी के उत्तर की ओर रख दे। आज्यपात्र को सामने रख ले। पवित्री से घी का तीन बार उत्प्लवन कर ले। पवित्री से ईशान से आरम्भ कर दक्षिणावर्त होते हुए ईशानपर्यन्त पर्युक्षण करे। अनन्तर अग्निदेव का इस प्रकार ध्यान करे—'अग्नि देवता का रक्त वर्ण है, उनके तीन मुख हैं, वे अपने बायें हाथ में कमण्डलु तथा दाहिने हाथ में स्रुवा ग्रहण किये हुए हैं।' ध्यान के अनन्तर स्रुवा लेकर हवन करे।

इस प्रकार स्वगृह्योक्त विधि के द्वारा ब्रह्मा तथा ऋत्विजों का वरण करना चाहिए। कुशकण्डिका-कर्म करके अग्नि का पूजन करे। आघार, आज्यभाग, महाव्याहृति, प्रायश्चित्त, प्राजापत्य तथा स्विष्टकृत् हवन करे। प्रजापति और इन्द्र के निमित्त दी गयी आहुतियां आघारसंज्ञक हैं। अग्नि और सोम के निमित्त दी जानेवाली आहुतियां आज्यभाग कहलाती हैं। **'भूर्भुवः स्वः'**—ये तीन महाव्याहृतियां हैं। **'अयाश्चाग्ने०'** इत्यादि पांच मन्त्र प्रायश्चित्त-संज्ञक हैं। एक प्राजापत्य आहुति तथा एक स्विष्टकृत् आहुति—इस प्रकार होम में चौदह आहुतियां नित्य-संज्ञक हैं। इस प्रकार चतुर्दश आहुत्यात्मक हवन कर कर्म-निमित्तक देवता को उद्देश्य कर प्रधान हवन करना चाहिए। अग्नि की सात जिह्वाएं कंही गयी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) हिरण्या, (२) कनका, (३) रक्ता, (४) आरक्ता, (५) सुप्रभा, (६) बहुरूपा, तथा (७) सती। इन जिह्वा-देवियों के ध्यान करने से सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है।

# विविध कर्मों में अग्नि के नाम तथा होम-द्रव्यों का वर्णन

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! अब मैं शास्त्रसम्मत-विधि के अनुसार किये गए विविध यज्ञों में अग्नि के नामों का वर्णन करता हूं। शतार्ध-होम में, पांच सौ संख्या तक की आहुतिवाले यज्ञों में अग्नि को काश्यप कहा गया है। इसी प्रकार आज्य-होम में विष्णु, तिल-याग में वनस्पति, सहस्र-याग में ब्राह्मण, अयुत-याग में हरि, लक्ष-होम में वह्नि, कोटि-होम में हुताशन, शान्तिक कर्मों में वरुण, मारण-कर्म में अरुण, नित्य-होम में अनल, प्रायश्चित्त में हुताशन तथा अन्न-यज्ञ में लोहित नाम कहा गया है। देवप्रतिष्ठा में लोहित, वास्तुयाग, मण्डप तथा पद्मक-याग में प्रजापति, प्रपा-याग में नाग, महादान में हविर्भुक्, गोदान में रुद्र, कन्या दान में योजक तथा तुला-पुरुष-दान में धातारूप से अग्निदेव स्थित रहते हैं। इसी प्रकार वृषोत्सर्ग में अग्नि का सूर्य, वैश्वदेव-कर्म में पावक, दीक्षा-ग्रहण में जनार्दन, उत्पीडन में काल, शवदाह में कव्य, पर्णदाह में यम, अस्थिदाह में शिखण्डिक, गर्भाधान में मरुत्, सीमन्त में पिङ्गल, पुंसवन में इन्द्र, नामकरण में पार्थिव, निष्क्रमण में हाटक, प्राशन में शुचि, चूड़ाकरण में षडानन, व्रतोपदेश में समुद्भव, उपनयन में वीतिहोत्र, समावर्तन में धनञ्जय, उदर में जठर, समुद्र में वडवानल, शिखा में विभु तथा स्वरादि शब्दों में सरीसृप नाम है। अश्वाअग्नि का मन्थर, रथाग्नि का जातवेदस्, गजाग्नि का मन्दर, सूर्याग्नि का विन्ध्य, तोयाग्नि का वरुण, ब्राह्मणाग्नि का हविर्भुक्, पर्वताग्नि का नाम क्रतुभुक् है। दावाग्नि को सूर्य कहा जाता है। दीपाग्नि का नाम पावक, गृह्याग्नि का धरणीपति, घृताग्नि का नल और सूतिकाग्नि का नाम राक्षस है।

चित्र

जिन द्रव्यों का होम में उपयोग किया जाता है, उनका निश्चित प्रमाण होता है। प्रमाण के बिना किया गया द्रव्यों का होम फलदायक नहीं होता। अतः शास्त्र के अनुसार प्रमाण का परिज्ञान कर लेना चाहिए। घी, दूध, पञ्चगव्य, दधि, मधु, लाजा, गुड़, ईख, पत्र-पुष्प, सुपारी, समिध्, व्रीहि, डंठल के साथ जपापुष्प और केसर, कमल, जीवन्ती, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), नारियल, कूष्माण्ड, ककड़ी, गुरुच, तिंदुक, तीन पत्तोंवाली दूब आदि अनेक होम-द्रव्य कहे गए हैं। भूर्जपत्र, शमी तथा समिधा प्रादेशमात्र के होने चाहिए। बिल्वपत्र तीन पत्रयुक्त, किन्तु छिन्न-भिन्न नहीं होना चाहिए। इनमें शास्त्रनिर्दिष्ट प्रमाण से न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिए। अभीष्ट-प्राप्ति के निमित्त किये जानेवाले शान्तिकर्म शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न होने चाहिए।

## अग्नि-पूजन की सम्पूर्ण विधि

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! नित्य-नैमित्तिक यागादि की समाप्ति में हवन हो जाने पर भगवान् अग्निदेव की षोडश उपचारों से पूजा करनी चाहिए। अग्नि को वायु द्वारा प्रदीप्त कर पीठस्थ देवताओं की पूजा कर हाथ में लाल फूल ले निम्न मन्त्र पढ़कर ध्यान करे—

**इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरान्तम्।**
**हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः॥**

*(मध्यमपर्व १। १६। ३)*

'भगवान् अग्निदेवता अपने हाथों में उत्तम इष्ट (यज्ञपात्र)', शक्ति, स्वस्तिक और अभय-मुद्रा धारण किये हैं, देदीप्यमान सुवर्ण-सदृश उनका स्वरूप है, कमल के ऊपर विराजमान हैं, तीन नेत्र हैं तथा वे जटाओं और मुकुट से सुशोभित है।

मण्डप के पूर्व आदि द्वार देशों में कामदेव, इन्द्र, वराह तथा कार्तिकेय को आह्वान कर स्थापित करे। तदन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गन्धादि उपचारों से पूजन कर आठ मुद्राएं प्रदर्शित करे। फिर सुवर्ण वर्णवाले निर्मल, प्रज्वलित, सर्वतोमुख, महाजिह्व तथा महोदर भगवान् अग्निदेव की आकाश-रूप में पूजा करे[१]। अग्नि की जिह्वाओं का भी ध्यान करे। इसके

---

१. प्रकारान्तर से विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहितास्या, करालास्या तथा काली—ये भी सात प्रकार की अग्निजिह्वाएं कही गयी हैं।

# विविध कर्मों में अग्नि के नाम तथा होम-द्रव्यों का वर्णन

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! अब मैं शास्त्रसम्मत-विधि के अनुसार किये गए विविध यज्ञों में अग्नि के नामों का वर्णन करता हूं। शतार्ध-होम में, पांच सौ संख्या तक की आहुतिवाले यज्ञों में अग्नि को काश्यप कहा गया है। इसी प्रकार आज्य-होम में विष्णु, तिल-याग में वनस्पति, सहस्र-याग में ब्राह्मण, अयुत-याग में हरि, लक्ष-होम में वह्नि, कोटि-होम में हुताशन, शान्तिक कर्मों में वरुण, मारण-कर्म में अरुण, नित्य-होम में अनल, प्रायश्चित्त में हुताशन तथा अन्न-यज्ञ में लोहित नाम कहा गया है। देवप्रतिष्ठा में लोहित, वास्तुयाग, मण्डप तथा पद्मक-याग में प्रजापति, प्रपा-याग में नाग, महादान में हविर्भुक्, गोदान में रुद्र, कन्या दान में योजक तथा तुला-पुरुष-दान में धातारूप से अग्निदेव स्थित रहते हैं। इसी प्रकार वृषोत्सर्ग में अग्नि का सूर्य, वैश्वदेव-कर्म में पावक, दीक्षा-ग्रहण में जनार्दन, उत्पीडन में काल, शवदाह में कव्य, पर्णदाह में यम, अस्थिदाह में शिखण्डिक, गर्भाधान में मरुत्, सीमन्त में पिङ्गल, पुंसवन में इन्द्र, नामकरण में पार्थिव, निष्क्रमण में हाटक, प्राशन में शुचि, चूड़ाकरण में षडानन, व्रतोपदेश में समुद्भव, उपनयन में वीतिहोत्र, समावर्तन में धनञ्जय, उदर में जठर, समुद्र में वडवानल, शिखा में विभु तथा स्वरादि शब्दों में सरीसृप नाम है। अश्वाअग्नि का मन्थर, रथाग्नि का जातवेदस्, गजाग्नि का मन्दर, सूर्याग्नि का विन्ध्य, तोयाग्नि का वरुण, ब्राह्मणाग्नि का हविर्भुक्, पर्वताग्नि का नाम क्रतुभुक् है। दावाग्नि को सूर्य कहा जाता है। दीपाग्नि का नाम पावक, गृह्याग्नि का धरणीपति, घृताग्नि का नल और सूतिकाग्नि का नाम राक्षस है।

चित्र

जिन द्रव्यों का होम में उपयोग किया जाता है, उनका निश्चित प्रमाण होता है। प्रमाण के बिना किया गया द्रव्यों का होम फलदायक नहीं होता। अत: शास्त्र के अनुसार प्रमाण का परिज्ञान कर लेना चाहिए। घी, दूध, पञ्चगव्य, दधि, मधु, लाजा, गुड़, ईख, पत्र-पुष्प, सुपारी, समिध्, व्रीहि, डंठल के साथ जपापुष्प और केसर, कमल, जीवन्ती, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), नारियल, कूष्माण्ड, ककड़ी, गुरुच, तिंदुक, तीन पत्तोंवाली दूब आदि अनेक होम-द्रव्य कहे गए हैं। भूर्जपत्र, शमी तथा समिधा प्रादेशमात्र के होने चाहिए। बिल्वपत्र तीन पत्रयुक्त, किन्तु छिन्न-भिन्न नहीं होना चाहिए। इनमें शास्त्रनिर्दिष्ट प्रमाण से न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिए। अभीष्ट-प्राप्ति के निमित्त किये जानेवाले शान्तिकर्म शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न होने चाहिए।

## अग्नि-पूजन की सम्पूर्ण विधि

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! नित्य-नैमित्तिक यागादि की समाप्ति में हवन हो जाने पर भगवान् अग्निदेव की षोडश उपचारों से पूजा करनी चाहिए। अग्नि को वायु द्वारा प्रदीप्त कर पीठस्थ देवताओं की पूजा कर हाथ में लाल फूल ले निम्न मन्त्र पढ़कर ध्यान करे—

**इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरान्तम्।**
**हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः॥**

*(मध्यमपर्व १। १६। ३)*

'भगवान् अग्निदेवता अपने हाथों में उत्तम इष्ट (यज्ञपात्र)', शक्ति, स्वस्तिक और अभय-मुद्रा धारण किये हैं, देदीप्यमान सुवर्ण-सदृश उनका स्वरूप है, कमल के ऊपर विराजमान हैं, तीन नेत्र हैं तथा वे जटाओं और मुकुट से सुशोभित है।

मण्डप के पूर्व आदि द्वार देशों में कामदेव, इन्द्र, वराह तथा कार्तिकेय को आह्वान कर स्थापित करे। तदन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गन्धादि उपचारों से पूजन कर आठ मुद्राएं प्रदर्शित करे। फिर सुवर्ण वर्णवाले निर्मल, प्रज्वलित, सर्वतोमुख, महाजिह्व तथा महोदर भगवान् अग्निदेव की आकाश-रूप में पूजा करे[१]। अग्नि की जिह्वओं का भी ध्यान करे। इसके

---

१. प्रकारान्तर से विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहितास्या, करालास्या तथा काली—ये भी सात प्रकार की अग्निजिह्वाएं कही गयी हैं।

बाद भगवान् अग्निदेव का विविध उपचारों से पूजन करे[२]।

## कुण्ड-निर्माण एवं उनके संस्कार की विधि और ग्रह-शान्ति का माहात्म्य

**सूतजी बोले**—द्विजश्रेष्ठ! अब मैं यज्ञकुण्डों के निर्माण एवं उनके संस्कार की संक्षिप्त विधि बतला रहा हूं। कुण्ड दस प्रकार के होते हैं—(१) चौकोर, (२) वृत्त, (३) पद्म, (४) अर्धचन्द्र, (५) योनि की आकृति का, (६) चन्द्राकार, (७) पञ्चकोण, (८) सप्तकोण (९) अष्टकोण और (१०) नौ कोणोंवाला।

सबसे पहले भूमि का संशोधन कर भूमि पर पड़े हुए तृण, केश आदि हटा देने चाहिए। फिर उस भूमि पर भस्म और अंगारे घुमाकर भूमि-शुद्धि

---

२. सर्वप्रथम निम्नलिखित मन्त्र से तीन पुष्पगुच्छों द्वारा अग्निदेव को आसन प्रदान करे—

**आसन-मन्त्र—त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकं। परमज्योतिरूपस्त्वमासनं सफलीकुरु॥**

संसार-रूपी सागर से उद्धार करने वाले, सम्पूर्ण प्राणियों में आदि, परम ज्योतिः-स्वरूप हे अग्निदेव! आप इस आसन को ग्रहण कर मुझे सफल बनायें। अनन्तर करबद्ध प्रार्थना करे—

**प्रार्थना-मन्त्र—वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन। स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते॥**

हे हव्यवाहन वैश्वानर देव! आप देवताओं में श्रेष्ठ हैं, आपका स्वागत है, आपको नमस्कार है, आप शान्ति प्रदान करें।

**पाद्य-मन्त्र—नमस्ते भगवन् देव आपोनारायणात्मक। सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्यताम्॥**

नर-नारायणस्वरूप हे भगवान् वैश्वानरदेव! आपको नमस्कार है। आप समस्त संसार के हित के लिये इस पाद्य-जल को ग्रहण करें।

**अर्घ्य-मन्त्र—नारायण परं धाम ज्योतिरूप सनातन। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप नमोऽस्तु ते॥**

हे विश्वरूप! आप ज्योतिरूप हैं, आप ही सनातन, परम धाम एवं नारायण हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे द्वारा दिये गए इस अर्घ्य को ग्रहण करें।

**आचमनीय मन्त्र—जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा। तसौ प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे॥**

जो आदित्यरूप से सम्पूर्ण संसार को नित्य प्रकाशित करते रहते हैं, ऐसे उन जातवेदा तथा प्रकाशस्वरूप भगवान् वैश्वानर को नमस्कार है। हे अग्निदेव! इस आचमनीय जल को आप ग्रहण करें।

**स्नानीय मन्त्र—धनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन। स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये॥**

सभी पापों का नाश करनेवाले हे धनञ्जय देव! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये मेरे द्वारा दिये गये इस स्नानीय जल को आप ग्रहण करें।

**अङ्गप्रोक्षण एवं वस्त्र-मन्त्र—हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन। शरणं ते प्रगच्छामि देहि मे परमं पदम्॥**

हे देवाधिदेव सनातन महाबाहु हुताशन! मैं आपकी शरण हूं, मुझे आप परम पद प्रदान करें। (मेरे द्वारा प्रदत्त इस अङ्गप्रोक्षण एवं वस्त्र को आप स्वीकार करें)।

करनी चाहिए, तदनन्तर उस भूमि पर जल-सिंचन कर बीजारोपण करे और सात दिन के बाद कुण्ड-निर्माण के लिए खनन करना चाहिए। तत्पश्चात् अभीष्ट उपर्युक्त दस कुण्डों में से किसी का निर्माण करना चाहिए। कुंड-निर्माणार्थ विधिवत् नाप-जोख के लिए सूत्र का उपयोग करे। कामना-भेद से कुण्ड भी अनेक आकार के होते हैं। कुण्ड के अनुरूप ही मेखला भी बनायी जाती है। यज्ञों में आहुतियों की संख्या का भी अलग-अलग विधान है। विधि-प्रमाण के अनुसार आहुति देनी चाहिए। मान रहित हवन करने से कोई फल नहीं मिलता। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को मान का पूर्ण ज्ञान रखकर ही कुण्ड का विधिवत् निर्माण कर यज्ञानुष्ठान करना चाहिए।

जिस यज्ञ का जितना मान होता है, उसी मान की ही योजना करनी चाहिए। पचास आहुतियों का मान सामान्य है, इसके बाद सौ, हजार, अयुत, लक्ष और कोटि होम भी होते हैं। बड़े-बड़े यज्ञ सम्पत्ति रहने पर हो सकते हैं या राजा-महाराजा कर सकते हैं। मनुष्य अपने-अपने प्राक्तन कर्म के अनुसार

---

**अलंकार-मन्त्र—ज्योतिषां ज्योतिरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत। मया दत्तमलंकारमलंकुरु नमोऽस्तु ते॥**

अपने स्थान से कभी च्युत न होनेवाले हे अग्निदेव! आपका न आदि है न अन्त। आप ज्योतियों के परमज्योतिरूप हैं, आपको मेरा नमस्कार है। मेरे दिये गए इस अलंकार को आप अलंकृत करें।

**गन्ध-मन्त्र—देवीदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात्। सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥**

हे देव! आपके सम्यक् सन्निधन से सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण दोषों की शान्ति के लिये मेरे द्वारा दिये गए इस गन्ध को आप ग्रहण करें।

**पुष्प-मन्त्र—विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर। गृहाण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद् भवेत्॥**

हे देवेश! आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा ज्योतियों की गति हैं और आप ही ईश्वर हैं। आप इस पुष्प को ग्रहण करें, जिससे सारा संसार पुष्पगन्ध से सुवासित हो जाये।

**धूप-मन्त्र—देवतानां पितृणां च सुखमेकं सनातनम्। धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यतां मे धनञ्जय॥**

हे देवदेवेश धनञ्जय! आप देवताओं और पितरों के सुख प्राप्त करने में एकमात्र सनातन आधार हैं। आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस धूप को ग्रहण करें।

**दीप-मन्त्र—त्वमेकः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्यताम्॥**

परमात्मन्! आप सम्पूर्ण चराचर प्राणियों में व्याप्त हैं। आपकी आकृति परम उत्कृष्ट है। आप इस दीपक को ग्रहण करें।

**नैवेद्य-मन्त्र—नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवेजातवेदसे। सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥**

हे यज्ञपति जातवेदा! आप शक्तिशाली हैं तथा समस्त संसार का कल्याण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। मेरे द्वारा प्रदत्त इस नैवेद्य को आप ग्रहण करें। परम अन्नस्वरूप मधु भी नैवेद्य के रूप में निवेदित करे तथा यज्ञसूत्र भी अर्पित करे। अन्त में समस्त कर्म भगवान् अग्निदेव को निवेदित कर दे—

**हुताशन नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहन। लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे॥**

हे हुताशनदेव! आपको नमस्कार है, रुक्मवाहन लोकनाथ! आपको नमस्कार है, हे जातवेदा! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

सुख-दुःख का उपभोग करता है तथा शुभाशुभ-फल ग्रहों के अनुसार भोगता है। अतः शान्ति-पुष्टि-कर्म में ग्रहों की शान्ति प्रयत्नपूर्वक परम भक्ति से करनी चाहिए। दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी-सम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उत्पातों के होने पर शुभाशुभ फल देनेवाली ग्रह-शान्ति करनी चाहिए। इन अवसरों पर अयुत होम करना चाहिए। काम्य-कर्म या शान्ति-पुष्टि के लिए ग्रहों का भक्तिपूर्वक नित्य पूजन एवं हवन करना चाहिए। कलि में ग्रहों के लिए लक्ष एवं कोटि होम का विधान है। गृहस्थ को आभिचारिक कर्म नहीं करना चाहिए।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ *कुण्डों का शास्त्रानुसार संस्कार करना चाहिए। बिना संस्कार* ॐ
ॐ *किये होम करने पर अर्थ-हानि होती है। अतः संस्कार करके* ॐ
ॐ *होमादि क्रियाएं करनी चाहिए।* ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

कुण्डों के स्थान का ओंकारपूर्वक अवेक्षण, कुश के जल से प्रोक्षण, त्रिशूलीकरण तथा सूत्र से आवेष्टित करना, कीलित करना, अग्निजिह्वा की भावना करना एवं अग्न्याहरण आदि अठारह संस्कार होते हैं। शूद्र के घर से अग्नि कभी न लाये। स्त्री के द्वारा भी अग्नि नहीं मंगवानी चाहिए। शुद्ध एवं पवित्र व्यक्ति द्वारा अग्नि ग्रहण करना चाहिए। तदनन्तर अग्नि का संस्कार करे और उसे अपने अभिमुख रखे। अग्नि-बीज (रं) और शिव-बीज (शं) से उसका प्रोक्षण करे और शिवशक्ति का ध्यान करे, इससे अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। उसके बाद वायु के सहारे अग्नि प्रज्वलित करे। देवी भगवती का और भगवान् का अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि से पूजन करे। अग्नि-पूजन में इस मन्त्र का उपयोग करे—

**'पितृपिङ्गल दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा।'**

यज्ञदत्त मुनि ने अग्नि की तीन जिह्वाएं बतलायी हैं—हिरण्या, कनका तथा कृष्णा। समिधा-भेद से जिन जिह्वा भेदों का वर्णन है, उनका उन्हीं में विनियोग करना चाहिए। बहुरूपा, अतिरूपा और सात्त्विका—इनका योग-कर्म में विनियोग होता है। आज्य होम में हिरण्या, त्रिमधु (दूध, चीनी और मधु—इन तीनों के समाहार) से हवन करने पर कर्णिका, शुद्ध क्षीर से हवन करने पर रक्ता, नैत्यिक कर्म में प्रभा, पुष्पहोम में बहुरूपा, अन्न और पायस से

हवन करने में कृष्णा, इक्षुहोम में पद्मरागा, पद्म होम में सुवर्णा और लोहिता, बिल्वपत्र से हवन करने पर श्वेता, तिल-होम में धूमिनी, काष्ठ होम में करालिका, पितृ-होम में लोहितास्या, देवहोम में मनोजवा नाम की अग्नि-ज्वाला कही गयी है। जिन-जिन समिधाओं से हवन किया जाता है, उन-उन समिधाओं में 'वैश्वानर' नामक अग्निदेव स्थित रहते हैं।

अग्नि के मुख में मन्त्रोच्चारणपूर्वक आहुति पड़ने पर अग्नि देवता सभी प्रकार का अभ्युदय करते हैं। मुख के अतिरिक्त शेष स्थानों पर आहुति देने से अनिष्ट फल होता है। अग्नि की जिह्वाएं विशेष रूप से घृताहुति में हिरण्या एवं अन्यान्य आहुतियों में गणना, वक्रा, कृष्णाभा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अति-रूपिका नाम से प्रसिद्ध हैं। कुण्ड के उदर में अर्थात् मध्य में आहुतियां देनी चाहिए। इधर-उधर नहीं देनी चाहिए। चन्दन, अगरु, कपूर, पाटला तथा यूथिका (जूही) के समान अग्नि से प्रादुर्भूत गन्ध सभी प्रकार का कल्याणकारक होता है।

यदि अग्नि की ज्वाला छिन्न-वृत्त-रूप में उठती हो तो मृत्यु-भय होता है और धन का क्षय होता है। अग्नि बुझ जाने तथा अत्यधिक धुआं होने पर भी महान् अनिष्ट होता है। ऐसी स्थितियों में प्रायश्चित्त करना चाहिए। पहले अट्ठाईस आहुतियां देकर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। अनन्तर घी से मूल-मन्त्र द्वारा पचीस आहुतियां देनी चाहिए। तीनों कालों में महास्नान करे तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करे।

## होममुद्रा विचार

**होममुद्रा त्रिधा ज्ञेया मृगी हंसी च सूकरी।**
**सूकरी सर्वांगुलीभिः हंसी मुक्त कनिष्ठिका॥**
**मृगी कनिष्ठंतर्जन्योः मुद्रा त्रयमुदाधृतम्।**
**यज्ञे शान्ति कल्याणे, मृग हंसी प्रकीर्तिता।**
**अभिचारादिके होमे, सूकरी कथिता बुधैः॥**

*—कुशकण्डिकाभाष्ये*

यज्ञ कार्यों में शाकल्य होमने की तीन मुद्राऐं, **मृगी, हंसी** एवं **सूकरी** कही गई हैं। सभी अंगुलियों द्वारा शाकल्य होमने को सूकरी, एक कनिष्ठिका को छोड़कर शाकल्य दी जाये तो हंसी तथा कनिष्ठिका व तर्जनी दोनों को छोड़कर

शाकल्य होमी जाये, उसे मृगी मुद्रा कहते हैं। शान्ति और कल्याणकारी कार्य हेतु मृगी व हंसी तथा अभिचार कर्म में लिए शूकरी मुद्रा काम में लेते हैं।

कुछ विद्वान् इसके अतिरिक्त **मयूरी** एवं **कुक्कुटी** नामक दो और मुद्राओं का प्रमाण भी देते हैं जो कि जार और मारण कार्यों के लिए काम में ली जाती है।

### ❖ सर्व प्रथम वराहुति—

ध्यान रहे, प्रत्येक यज्ञ के प्रारम्भ में वराहुति लगती है। अन्य आहुतियां बाद में गिरती हैं। वराहुति में स्रुवा पर गुड़ की डली घृत से परिलुप्त क़रके गणपति के वैदिक मन्त्र—"**गणानांत्वां०**" से दी जाती है। वराहुति के अभाव में यज्ञ के शुभफल क्षीण हो जाते हैं। अग्नि-स्थापना के तत्काल बाद जब अग्नि प्रज्वलित हो जाये, तो अग्नि देवता का रक्त पुष्प, कुंकुम व अक्षत से स्वागत करके सर्वप्रथम वराहुति दी जाती है।

### ❖ आज्यस्थली विचार—

**आज्यस्थली कांस्यमयी यदा ताम्रमयी तथा।**
**प्रदेश मात्र दीर्घा सा ग्रहीतत्या व्रणा शुभा॥**

*—कर्मप्रदीप*

आज्यस्थली घृतपात्र को कहते हैं। यह पात्र कांसे या तांबे का होना चाहिए अथवा पीतल का हो सकता है, पर (स्टील) लोहा पूजा में अशुभ माना गया है। कम-से-कम एक बालिश्त लम्बा-चौड़ा होना चाहिए। बड़े यज्ञ में घी का पात्र आवश्यकतानुसार बड़ा होगा।

### ❖ चरुस्थाली विचार—

**दृढा प्रदेशमात्रोर्ध्य तिर्यङ् नातिबृहन्मुखी**
**मृन्मयौदुम्बरी वापि चरुस्थली प्रशस्येत्॥**

*—रत्नमालायाम्*

चरुस्थाली हवनीय सामग्री (शाकल्य) चावल रखने के पात्र को कहते हैं। यह पात्र मजबूत एक बलिताश्त लम्बा और चौड़ाई ज्यादा होनी चाहिए। यह पात्र मिट्टी का, औदुम्बर लकड़ी या किसी शुद्ध धातु का भी हो सकता है।

❖ हवनीय वृक्ष—

पलाशः खदिरोऽश्वस्थः शमी बट उदुम्बरः।
अपामार्गार्कके दूर्वाश्च कुशाशचेत्यपरे विदुः॥

*—ब्रह्मपुराणे*

शमी पलाशन्यग्रोध प्लक्षवैङ् कृतोद्भवाः।
अश्वत्थोदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनास्सलस्तथा॥
सालश्च देवदारुश्च खदिरश्चैव यज्ञिमाः।

*—मरीतिचः*

हवनीय वृक्ष उसे कहते हैं जिसकी समिधा यज्ञ में काम ली जा सकती हैं। इनमें पलाश, खदिर, बड़, पीपल, शमी (खेजड़ी), उदुम्बर, अपामार्ग, दूर्वा, कुश, प्लक्ष, बिल्व, चन्दन, साल, देवदारु इत्यादि प्रमुख हैं।

❖ ग्रह समिधा विचार—

अर्कः पलाशः खदिरः अपामार्गेऽथ पिप्पलः।
उदुम्बरः शमी दुर्वा कुशाश्च समिधस्तथाः

(१) सूर्य के लिए अर्क, (२) चन्द्रमा के लिए पलाश, (३) मंगल के लिए खदिर, (४) बुध के लिए अपामार्ग, (५) गुरु के लिए पीपल, (६) शुक्र के लिए उदुम्बर, (७) शनि के लिए शमी, (८) राहु के लिए दूर्वा, (९) केतु के लिए कुश, काम में लायी जाती हैं। प्रत्येक ग्रह की नव-नव दण्डक आहुति अलग-अलग मन्त्रों से लगती है। उसके बाद ही चरु और घृत की आहुतियां होती हैं।

❖ समिधा विचार—

प्रादेशमात्राः समिधः सरला अपलाशिनी।
समिधः कल्पयेतप्राज्ञः सर्वकर्मषु सर्वदा॥

*—याज्ञवल्क्य*

यह कार्य हेतु काम में ली जानेवाली यज्ञीय वृक्ष की लकड़ी को 'समिधा' कहते हैं। यह समिधा प्रादेश मात्र एक बालिश्त दीर्घ, सरल व सीधी होनी

चाहिए तथा कांटों से रहित होनी चाहिए। होमने के पूर्व समिधा घृत संस्कार से युक्त होनी चाहिए। यह जरूरी है।

### ❖ शाकल्य विचार—

> तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा।
> अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवैः समाः॥
> आयुः क्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम्।
> सर्वकामसमृद्ध्यर्थे तिलाधिक्यं सदैव हि॥

*—शारदातिलके*

यव से हमेशा तिल दुगुने होने चाहिए। अन्य सुगन्धित पदार्थ गुग्गुल, चन्दन, दशांग धूप, दिव्य औषधियां सभी यव के समान बराबर भाग में होनी चाहिए। यव अधिक होने से यजमान के आयु का नाश, यव और तिल बराबर होने से धनक्षय होता है। अतः सभी प्रकार के काम्य कर्मों में तिल सदैव अधिक लेने चाहिए।

# वास्तुदेवता एवं वास्तुचक्र

'वास्तु' शब्द **'वस निवासे'** धातु से निष्पन्न होता है, जिसे निवास के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। जिस भूमि पर मनुष्यादि प्राणी वास करते हैं, उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवप्रासाद, ग्राम, नगर, पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। वास्तु की शुभाशुभ-परीक्षा आवश्यक है। शुभ वास्तु में रहने से वहां के निवासियों को सुख-सौभाग्य एवं समृद्धि आदि की अभिवृद्धि होती है और अशुभ वास्तु में निवास करने से इसके विपरीत फल होता है। 'वास्तु' शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति-कथा वास्तुशास्त्रों तथा पुराणादि में इस प्रकार प्राप्त होती है—

वास्तु के प्रादुर्भाव के कथा-विषय में मत्स्यपुराण (अ० २५१) में बताया गया है कि प्राचीन काल में अन्धकासुर के वध के समय भगवान् शंकर के ललाट से पृथ्वी पर जो स्वेदबिन्दु गिरे, उनसे एक भयंकर आकृति वाला पुरुष प्रकटे हुआ, जो विकराल मुख फैलाये था। उसने अन्धकगणों का रक्त-पान किया, किंतु तब भी उसे तृप्ति नहीं हुई और वह भूख से व्याकुल होकर त्रिलोक को भक्षण करने के लिए उद्यत हो गया। बाद में शंकर आदि देवताओं ने उसे पृथ्वी पर सुलाकर वास्तुदेवता के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसके शरीर में सभी देवताओं ने वास किया, इसलिए वह वास्तु (वास्तु पुरुष या वास्तुदेवता) के नाम से प्रसिद्ध हो गया। देवताओं ने उसे गृह-निर्माणादि के, वैश्वदेव बलि के तथा पूजन-यज्ञ-यागादि के समय पूजित होने का वर देकर प्रसन्न किया। इसीलिए आज भी वास्तुदेवता का पूजन होता है। देवताओं ने उसे वरदान दिया कि तुम्हारी सब मनुष्य पूजा करेंगे। इसकी पूजा का विधान प्रासाद तथा भवन बनाने एवं तडाग, कूप और वापी के खोदने, गृह-मन्दिर आदि के जीर्णोद्धार में, पुर बसाने में, यज्ञ-मण्डप के निर्माण तथा यज्ञ-यागादि के अवसरों पर किया जाता है। इसलिए इन अवसरों पर यत्नपूर्वक वास्तु पुरुष की पूजा करनी चाहिए। वास्तु पुरुष ही वास्तुदेवता कहलाते हैं।

हिन्दू संस्कृति में देव-पूजा का विधान है। यह पूजा साकार एवं निराकार

दोनों प्रकार की होती है। साकार पूजा में देवता की प्रतिमा, यन्त्र अथवा चक्र बनाकर पूजा करने का विधान है। वास्तु देवता की पूजा के लिए वास्तु की प्रतिमा एवं चक्र भी बनाया जाता है, जो वास्तुचक्र के नाम से प्रसिद्ध है।

वास्तुचक्र अनेक प्रकार के होते हैं। इसमें प्रायः ४९ से लेकर एक सहस्र तक पद (कोष्ठक) होते हैं। भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न पद के वास्तुचक्र का विधान है। उदाहरणस्वरूप ग्राम तथा प्रासाद एवं राजभवन आदि के अथवा नगर-निर्माण करने में ६४ पद के वास्तुचक्र का विधान है। समस्त गृह-निर्माण में ८१ पद का, जीर्णोद्धार में ४९ पद का, प्रासाद में तथा सम्पूर्ण मण्डप में १०० पद का, कूप, वापी तड़ाग और उद्यान, वन आदि के निर्माण में १९६ पद का वास्तुचक्र बनाया जाता है। सिद्धलिंगों की प्रतिष्ठा, विशेष पूजा-प्रतिष्ठा, महोत्सवों, कोटि होम-शान्ति, मरुभूमि में ग्राम, नगर, राष्ट्र आदि के निर्माण में सहस्र पद (कोष्ठक) के वास्तुचक्र की निर्माण और पूजा की आवश्यकता होती है।

जिस स्थान पर गृह, प्रासाद, यज्ञमण्डप या ग्राम, नगर आदि की स्थापना करनी हो उसके नैर्ऋत्य कोण में वास्तुदेवता निर्माण करना चाहिए। सामान्य विष्णु-रुद्रादि यज्ञों में भी यज्ञमण्डप में यथास्थान नवग्रह, सर्वतोभद्र मण्डलों की स्थना के साथ-साथ नैर्ऋत्यकोण में वास्तुपीठ की स्थापना आवश्यक होती है और प्रतिदिन मण्डलस्थ देवताओं की पूजा-उपासना तथा यथासमय उन्हें आहुतियां भी प्रदान की जाती हैं। किन्तु वास्तु-शान्ति आदि के लिए अनुष्ठीयमान वास्तुयाग-कर्म में तो वास्तुपीठ की ही सर्वाधिक प्रधानता होती है। वास्तु पुरुष की प्रतिमा भी स्थापित कर पूजन किया जाता है।

वास्तुदेवता का मूल मन्त्र इस प्रकार है—

**वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवानः।**
**यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्वशं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥**

(ऋग्वेद ७। ५४। १)

इसका भाव इस प्रकार है—हे वास्तुदेव! हम आपके सच्चे उपासक हैं, इस पर आप पूर्ण विश्वास करें और तदनन्तर हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं को सुनकर आप हम सभी उपासकों को आधि-व्याधिमुक्त कर दें और जो हम

# एकलिंगतोभद्रचक्रम्
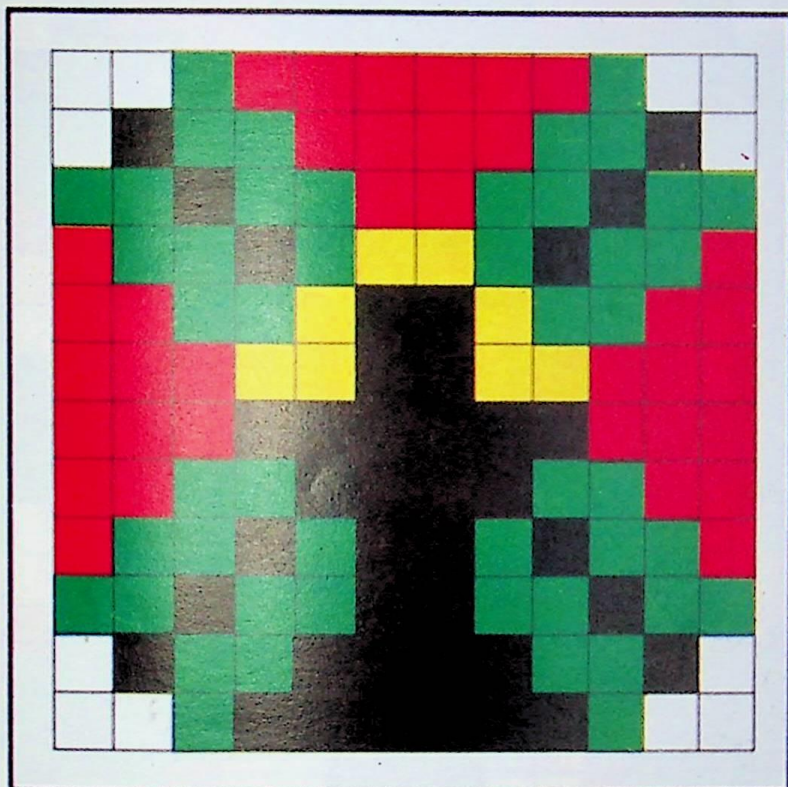
इस 'एकलिंगतोभद्रचक्र' में १३ खड़ी लाइनें, १३ आड़ी लाइनों से कुल १४४ चौकोर बनते हैं। इसमें लाल रंग में मसूर की दाल, हरा रंग में मूंग, पीले रंग में चने की दाल, सफेद रंग में चावल एवं काले रंग में उड़द की दाल भरी जाती है।

# चतुर्लिंगतोभद्रचक्रम्
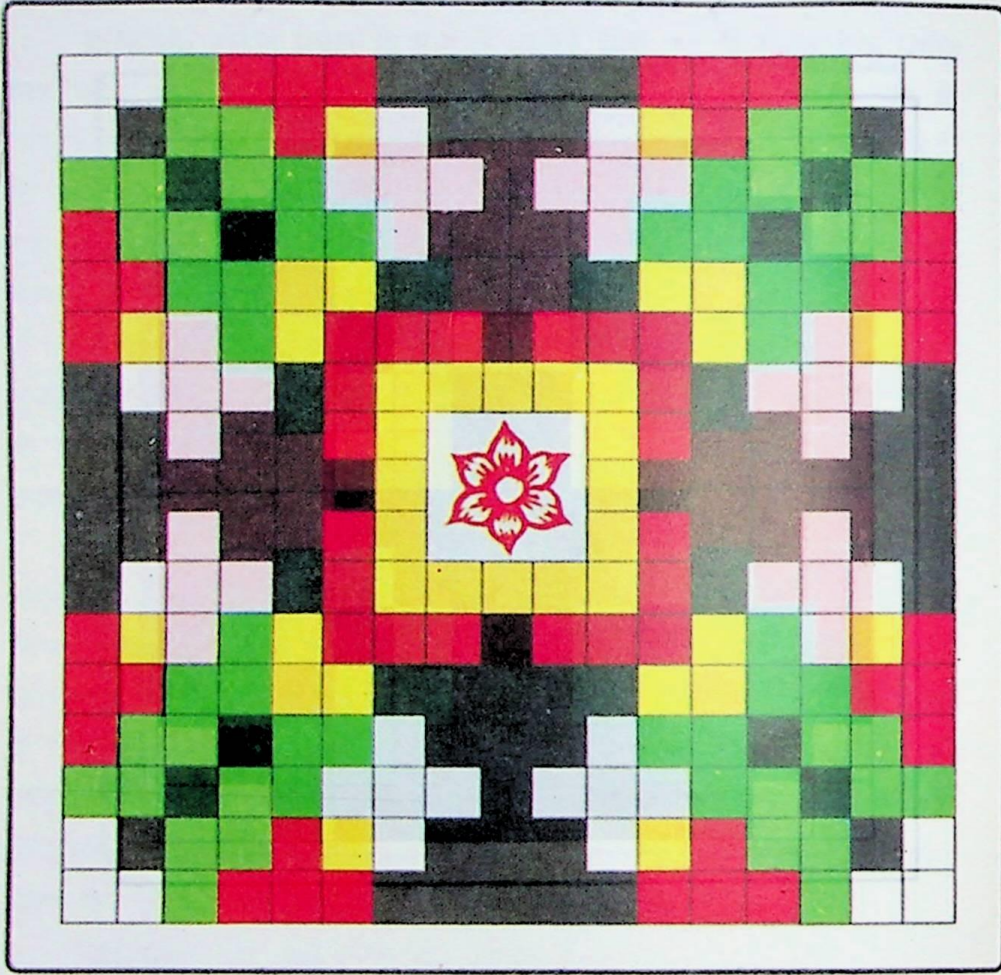
इस '**चतुर्लिंगतोभद्रचक्रम्**' में १८ खड़ी लाइनें, १८ आड़ी लाइनों से कुल २८९ चौकोर बनते हैं। इसमें लाल रंग में मसूर की दाल, हरे रंग में मूंग, पीले रंग में चने की दाल, सफेद रंग में चावल एवं काले रंग में उड़द की दाल भरी जाती है।

# अष्टलिंगतोभद्रम्
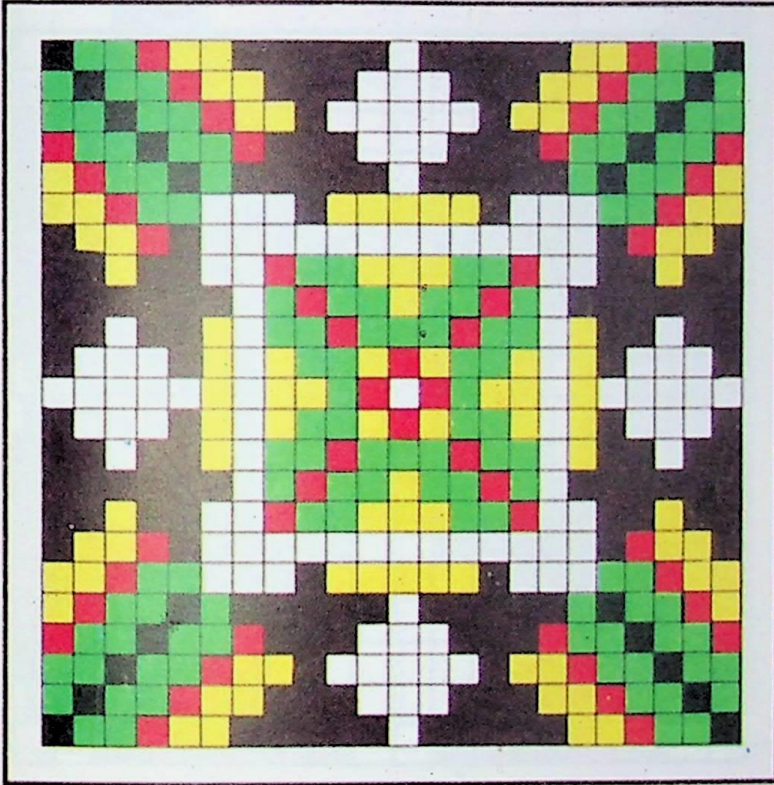
इस अष्टलिंगतोभद्रम् में २४ खड़ी लाइनें, २४ आड़ी लाइनों से कुल ५२९ चौकोर बनते हैं। इसमें लाल रंग में मसूर की दाल, हरे रंग में मूंग, पीले रंग में चने की दाल, सफेद रंग में चावल एवं काले रंग में उड़द की दाल भरी जाती है।

# सर्वतोभद्रमण्डलम्
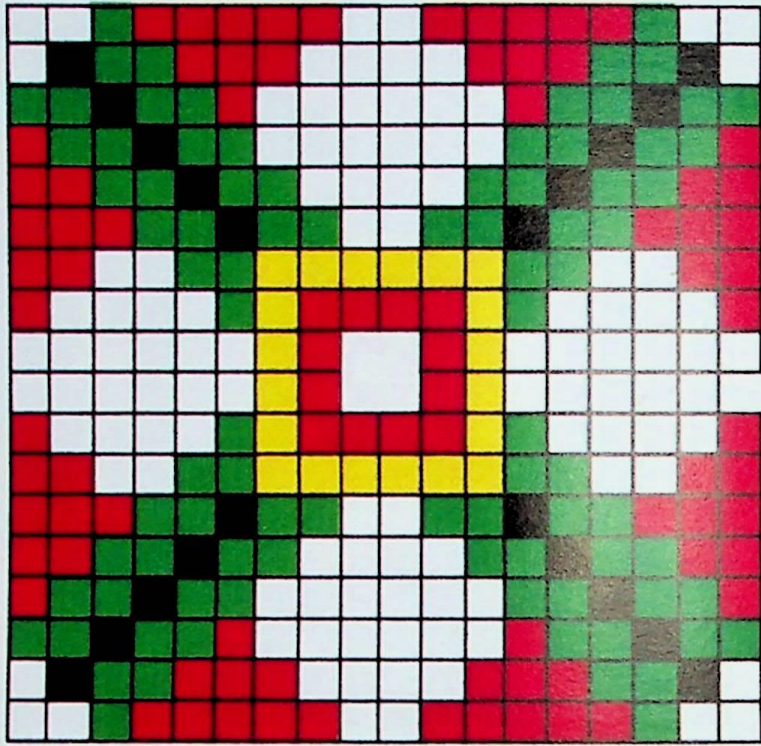
इस '**सर्वतोभद्रमण्डलम्**' में १९ खड़ी लाइनें, १९ आड़ी लाइनों से कुल ३२४ चौकोर बनते हैं। इसमें लाल रंग में मसूर की दाल, हरे रंग में मूंग, पीले रंग में चने की दाल, सफेद रंग में चावल एवं काले रंग में उड़द की दाल भरी जाती है।

# वारुण मण्डल चक्रम्
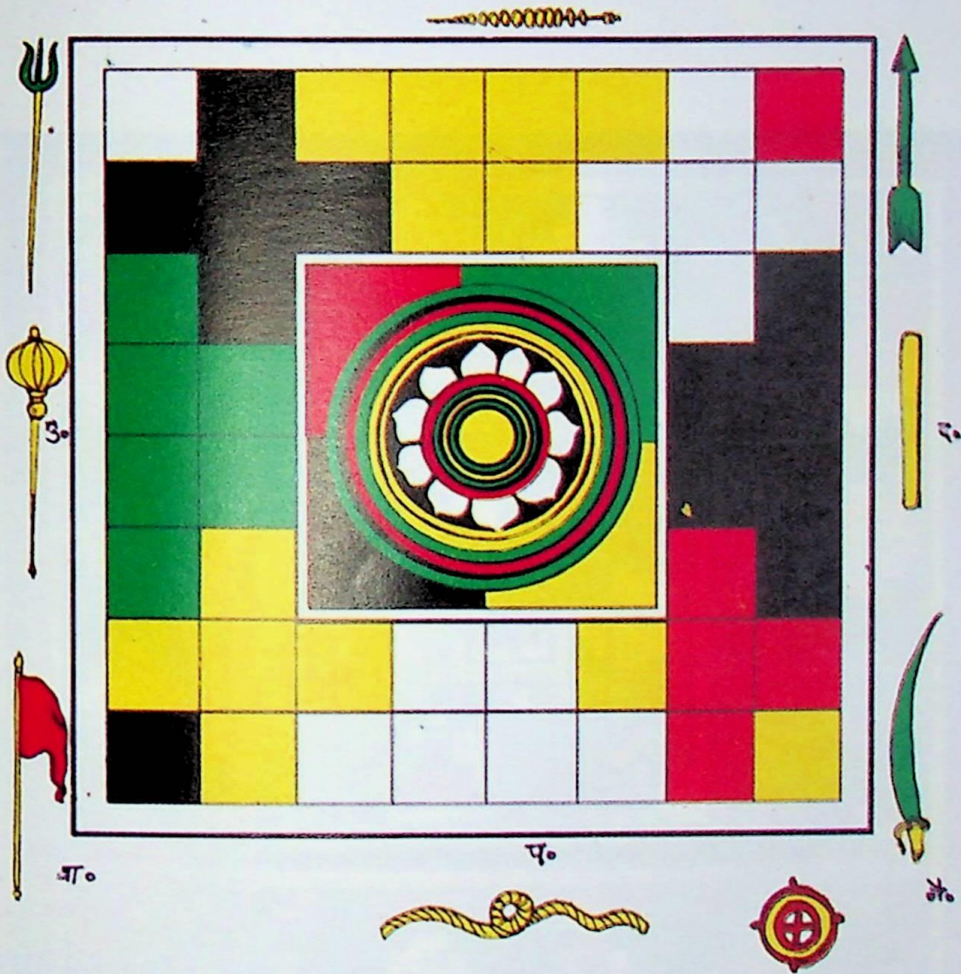
इस 'वारुण मण्डल चक्रम' में ९ खड़ी लाइनें, ९ आड़ी लाइनों से कुल ६४ चौकोर बनते हैं। इसमें लाल रंग में मैसूर की दाल, हरे रंग में मूंग, पीले रंग में चने की दाल, सफेद रंग में चावल एवं काले रंग में उड़द की दाल भरी जाती है।

# द्वादशलिङ्गतोभद्रं हरिहरमंडलं

# वास्तु पुरुष मंडल

'वास्तु पुरुष मंडळ'

# चतुःषष्ठियोगिनीचक्रम्

# पात्रचित्रम्

अथपंचाग्निकुंडचित्रम्.
१
२
य
ब्र
३
४
५
आहवनीयकुण्ड १ आवसथ्यकुं. २ सभ्यकुण्डम् ३ गार्हपत्यकुण्ड ४
दक्षिणाग्निकुण्डमिति ५ ब्रह्मासनं यजमानासनम्.
आज्यस्थाली १
अथपात्राणामाकृतय :
चरूस्थाली २
प्रणीतापात्र ३
पुरोडाशपात्र ४
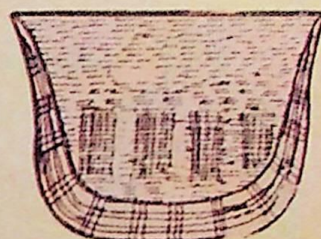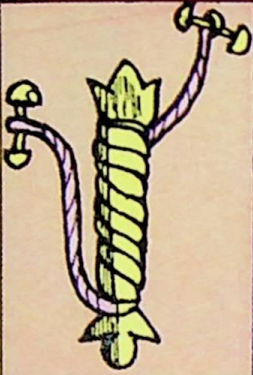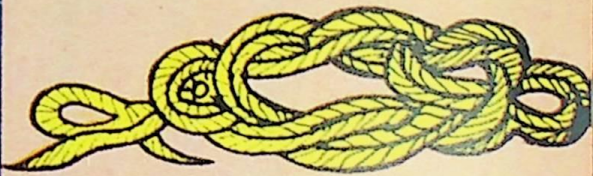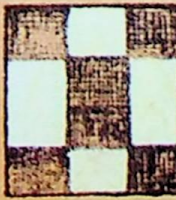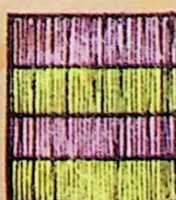
| | | |
|---|---|---|
| स्रुव ५ | उपश्रृतस्रुक ६ | ध्रुवास्रुक ७ |
| पुष्करलुक ८ | अग्निहोत्र हवनी ९ | वैकङ्कत स्रुव १० |
| उलूखलं ११ | मुसलं १२ | शूर्पम् १३ |

# पात्रचित्रम्

| १४ शम्या | १५ स्पन्यः | शृतावद्रानं १६ | उपवेषः १७ |
|---|---|---|---|
| कूर्च्च १८ | १९ दृषत् | २० उपल | २१ पट्टर्त |
| २२ आत्रि | २३ अरणि | २४ उत्तरारणि | २५ मोविली |

२६ प्रमन्थ
२७ नेत्रम्
२८ अंतर्धानकटः
२९ हविर्धानपात्री
३० प्राशित्र हरणं
३१ चमसा :
३२ इडापात्री
३३ यजमानासनं
३४ पल्यासनं
३५ होत्रसनं

# पात्रचित्रम्
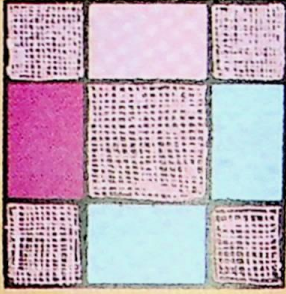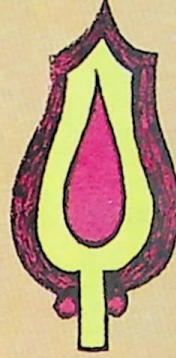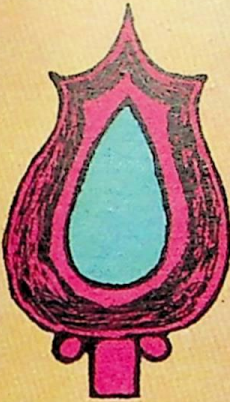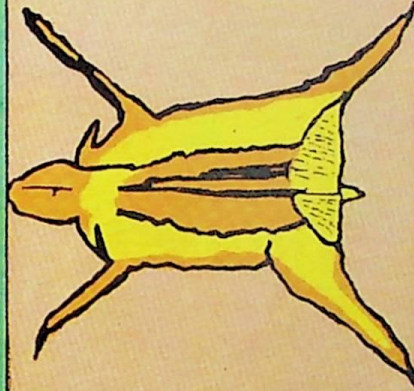
# अथपंचकुण्डीपक्षे कुण्डादि निर्माण प्रकारः
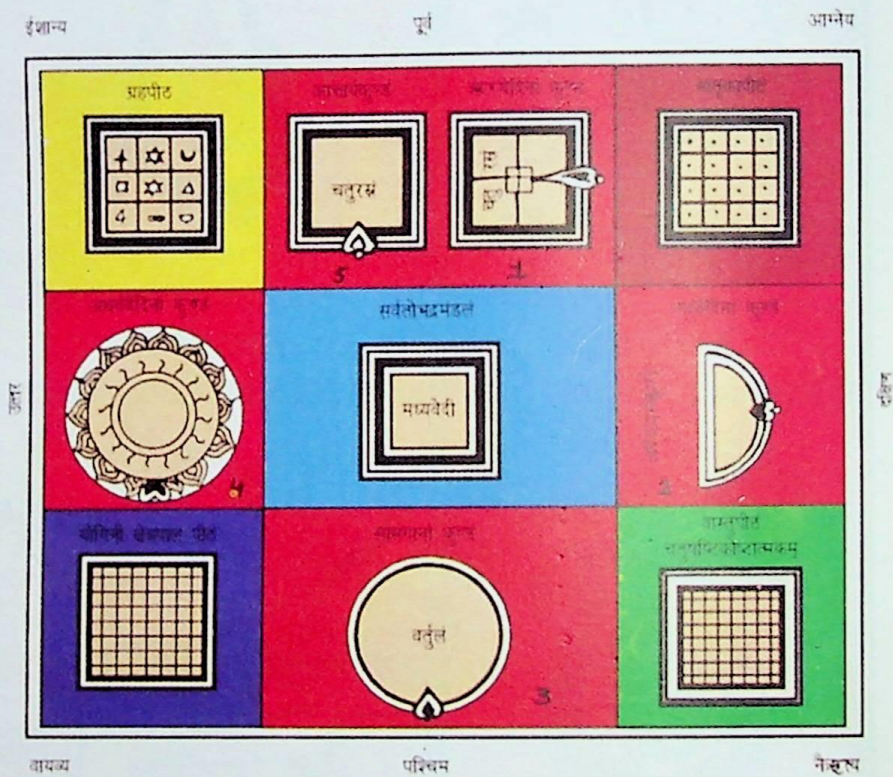
॥ श्रीशः शरणम् ॥

# मंडपसहितो नवपंचैककुण्डीपट्टः।

( कुण्डसिद्धिः )

*अत्रेयं स्पष्टप्रतिपत्ति—अयमेव नवकुण्डीपट्टो विदिक्स्थकुण्डानि वर्जयित्वा ईशान्यामष्टास्रस्थाने चतुरस्रे कृते पंचकुण्डीप्रदर्शकः। तथा चतुरस्रं पद्मं वृतं वा नवकुण्डानामन्यतमं वा किंचनैकमेव कुण्डं मध्ये प्रतीच्यामुदीच्यामीशान्यां वा कृतं चेदेककुण्डीप्रदर्शको भवति॥ इति॥

# कुण्डा भावे स्थण्डिल वेदी प्रमाणं

ग्रह-शान्ति-प्रयोग

अपने धन-ऐश्वर्य की कामना करते हैं, आप उसे भी परिपूर्ण कर दें, साथ ही इस वास्तुक्षेत्र या गृह में निवास करने वाले हमारे स्त्री-पुत्रादि परिवार-परिजनों के लिए कल्याणकारक हों तथा हमारे अधीनस्थ गौ, अश्वादि सभी चतुष्पद प्राणियों का भी कल्याण करें।
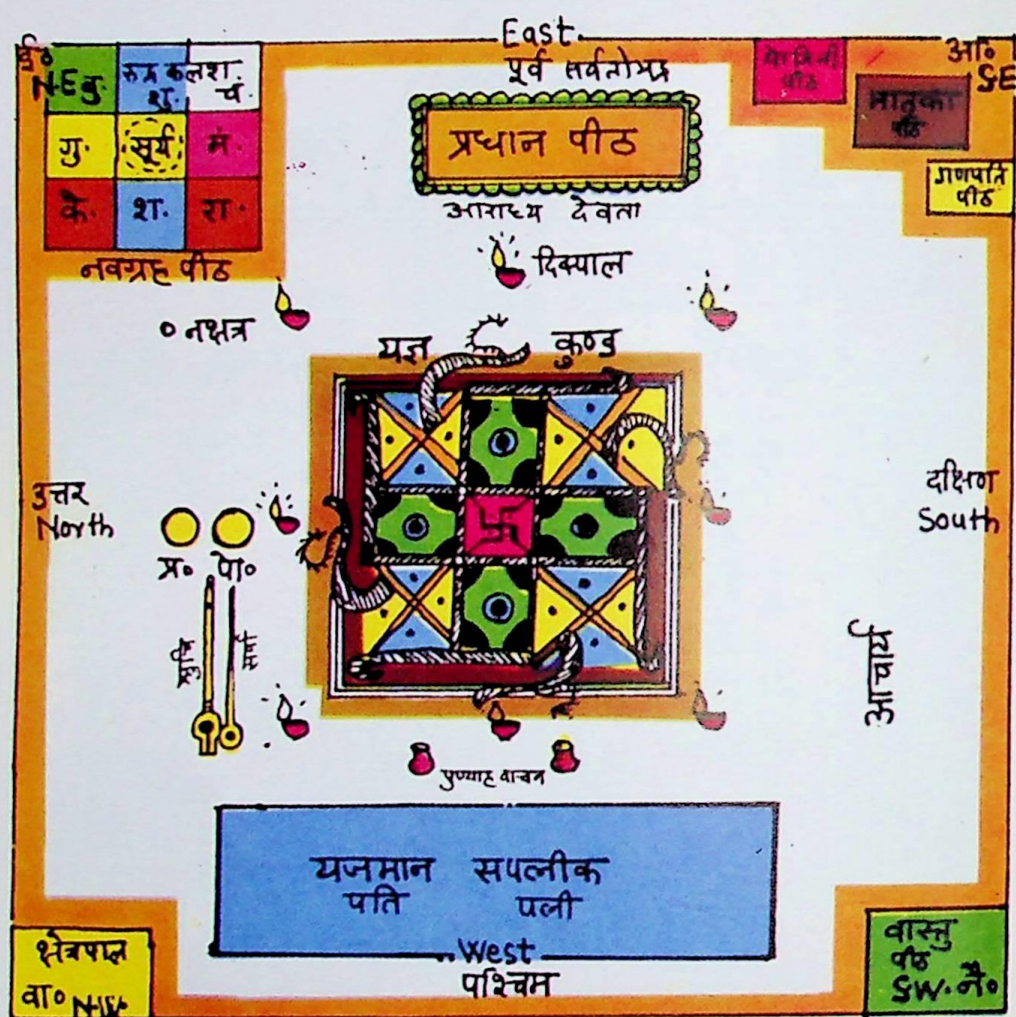
## वास्तुमण्डलचक्र

वैदिक संहिताओं के अनुसार '**वास्तोष्पति**' साक्षात् परमात्मा का ही नामान्तर है; क्योंकि वे विश्वब्रह्माण्डरूपी वास्तु के स्वामी हैं। आगमों एवं पुराणों के अनुसार वास्तु पुरुष नामक एक भयानक उपदेवता के ऊपर ब्रह्मा, इन्द्र आदि अष्टलोकपाल सहित ४५ देवता अधिष्ठित होते हैं, जो वास्तु का कल्याण करते हैं। कर्मकाण्ड ग्रन्थों तथा गृह्य सूत्रों में इनकी उपासना और हवन आदि के अलग-अलग मन्त्र निर्दिष्ट हैं।

यद्यपि तड़ाग, कूप, वापी, ग्राम, नगर और गृह, प्रासाद तथा दुर्ग आदि के निर्माण में विभिन्न प्रकार के कोष्ठकों के वास्तुमण्डल की रचना का विधान है, किन्तु उनमें मुख्य उपास्य देवता ४५ ही होते हैं। हयशीर्षपाञ्चरात्र, कपिलपाञ्चरात्र, वास्तुराजवल्लभ आदि ग्रन्थों के अनुसार प्रायः सभी वास्तु सम्बन्धी कृत्यों में एकाशीति (८१) तथा चतुषष्टि (६४) कोष्ठात्मक चक्रयुक्त वास्तुदेवी के निर्माण करने की विधि है। इन दोनों में सामान्य अन्तर है। एकाशीति पद वास्तुमण्डल की रचना में उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम से १०-१० रेखाएं खींची जाती हैं और चक्र-रचना के समय २० देवियों के नामोल्लेखपूर्वक नमस्कार-मन्त्र से रेखाकरण-क्रिया सम्पन्न की जाती है। इसी प्रकार चतुषष्टिपद वास्तुमण्डल में दोनों ओर से ९-९ रेखाएं होती हैं। वास्तुदेवी में श्वेत वस्त्र बिछाकर उसमें कुंकुम आदि के द्वारा पूर्व-पश्चिम ९ रेखाएं खींची जाती हैं। ये ९ रेखाएं ९ देवियों की प्रतिनिधिभूत हैं। इन्हें रेखा-देवता भी कहा जाता है। रेखा खींचते समय क्रमशः नाम-मन्त्रों से या वेद-मन्त्रों से इन देवियों को नमस्कार करना चाहिए। रेखा देवियों के नाम इस प्रकार हैं—लक्ष्मी, यशोवती, कान्ता, सुप्रिया, विमला, श्री, सुभगा, सुमति एवं इड़ा। इसी प्रकार उत्तर-दक्षिण की रेखा देवियों के नाम इस प्रकार हैं—धान्या, प्राणा, विशाला, स्थिरा, भद्रा, स्वाहा, जया, निशा तथा विरजा।

इस प्रकार चतुष्षष्टि-कोष्ठात्मक वास्तुचक्र को निर्दिष्ट रंगों के चावलों या चूर्ण आदि से भरकर ४५ देवताओं का आह्वान-प्रतिष्ठापूर्वक लब्धोपचारों द्वारा पूजन करना चाहिए। मण्डलस्थ देवताओं के नाम इस प्रकार हैं। (स्थापना-क्रम एवं कोष्ठकों के वर्ण चित्र में देखने चाहिए)—

(१) शिखी, (२) पर्जन्य, (३) जयन्त, (४) कुलिशायुध, (५) सूर्य, (६) सत्य, (७) भृश, (८) आकाश, (९) वायु, (१०) पूषा, (११) वितथ, (१२) गृहक्षत, (१३) यम, (१४) गन्धर्व, (१५) भृङ्गराज, (१६) मृग, (१७)

पितृ, (१८) दौवारिक, (१९) सुग्रीव, (२०) पुष्पदन्त, (२१) वरुण, (२२) असुर, (२३) प्रेत, (२४) पाप, (२५) रोग, (२६) अहि, (२७) मुख, (२८) भल्लाट, (२९) सोम, (३०) सर्प, (३१) अदिति, (३२) दिति, (३३) अप्, (३४) आपवत्स, (३५) अर्यम्, (३६) सावित्री, (३७) सविता, (३८) विवस्वत्, (३९) विबुधाधिप, (४०) जयन्त, (४१) विप्र, (४२) राजयक्ष्मा, (४३) रुद्र, (४४) पृथिवीधर, तथा (४५) ब्रह्मा।

तदनन्तर मण्डल के बाहर ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोणों में क्रमशः चरकी, विदारी, पूतना, पापराक्षसी की पुनः पूर्वादि चार दिशाओं में स्कन्द, अर्यमा, जृम्भक तथा पिलिपिच्छ देवताओं की स्थापना करनी चाहिए। उसके बाद पूर्वादि दस दिशाओं में क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋदि, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त—इन दश दिक्पालों का आह्वान कर पूजन करना चाहिए।

इस प्रकार चक्रस्थ सभी देवताओं का आह्वान, प्रतिष्ठा तथा वैदिक-पौराणिक अथवा नाम मन्त्रों से पूजन करना चाहिए। वास्तु चक्र के उत्तर वास्तुकलश की स्थापना-पूजा कर उसमें वास्तुदेवता की प्रतिमा की अग्न्युत्तारणपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तदनन्तर विधिपूर्वक वास्तोष्पति व वास्तुदेवता की पूजा-आराधना कर अन्त में चक्रस्थ देवताओं तथा वास्तुदेवताओं को पायस-बलि देकर सर्वविध सुख-शान्ति एवं कल्याण के लिए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए।

## वास्तु-मण्डल के निर्माण एवं वास्तु-पूजन की संक्षिप्त विधि

पहले भूमि पर अङ्कुरों का रोपण करके भूमि की परीक्षा कर ले। तदनन्तर उत्तम भूमि के मध्य में वास्तु-मण्डल का निर्माण करे।

इन पैंतालीस देवताओं के साथ वास्तु-मण्डल के बाहर ईशान कोण में चरकी, अग्नि कोण में विदारी, नैर्ऋत्य कोण में पूतना तथा वायव्य कोण में पापराक्षसी की स्थापना करनी चाहिए। मण्डल के पूर्व दिशा में स्कन्द, दक्षिण में अर्यमा, पश्चिम में जृम्भक तथा उत्तर में पिलिपिच्छ की स्थापना करनी चाहिए। इस प्रकार वास्तु-मण्डल में तिरपन देवी-देवताओं की स्थापना होती है। इन सभी का अलग-अलग मन्त्रों से पूजन करना चाहिए। मण्डल के बाहर

ही पूर्वादि दस दिशाओं में दस दिक्पाल देवताओं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्तकी भी यथास्थान पूजा कर उन्हें बलि (नैवेद्य) निवेदित करनी चाहिए। वास्तु-मण्डल की रेखाएं श्वेत वर्ण से तथा मध्य में कमल लाल वर्ण से अनुरंजित करना चाहिए। शिखी आदि पैंतालीस देवताओं के कोष्ठकों को रक्तादि रंगों से अनुरंजित करना चाहिए। गृह, देवमन्दिर, महाकूप आदि के निर्माण में तथा देव-प्रतिष्ठा आदि में वास्तु-मण्डल का निर्माण कर वास्तुमण्डलस्थ देवताओं का आह्वान कर उनका पूजन आदि करना चाहिए। पवित्र स्थान पर लिपी-पुती डेढ़ हाथ के प्रमाण की भूमि पर पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण दस-दस रेखाएं खींचें। इससे इक्यासी कोष्ठक के वास्तुपदचक्र का निर्माण होगा। इसी प्रकार ९-९ रेखाएं खींचने से चौंसठ पद का वास्तुचक्र बनता है।

वास्तुमण्डल में जिन देवताओं का उल्लेख किया गया है, उनका ध्यान और पूजन अलग-अलग मन्त्र से किया जाता है। उल्लिखित देवताओं की तुष्टि के लिए विधि के अनुसार स्थापना तथा पूजा करके हवन-कार्य सम्पन्न करना चाहिए। तदनन्तर ब्राह्मणों को सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिए।

वास्तु-यागादि में एक विस्तृत मण्डल के अन्तर्गत योनि तथा मेखलाओं से समन्वित एक कुण्ड तथा वास्तु-वेदी का विधि के अनुसार निर्माण करना चाहिए। मण्डल के ईशानकोण में कलश स्थापित कर गणेश जी का एवं कुण्ड के मध्य में विष्णु, दिक्पाल और ब्रह्मा आदि का तत्तद् मन्त्रों से पूजन करना चाहिए। प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। तदनन्तर वास्तु पुरुष का ध्यान इस प्रकार करे—

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ *वास्तुदेवता श्वेत वर्ण के चार भुजावाले शान्तस्वरूप और* ॐ
ॐ *कुण्डलों से अलंकृत हैं। हाथ में पुस्तक, अक्षमाला, वरद एवं* ॐ
ॐ *अभय-मुद्रा धारण किये हुए हैं। पितरों और वैश्वानर से युक्त* ॐ
ॐ *हैं तथा कुटिल भ्रू से सुशोभित हैं। उनका मुख भयंकर है।* ॐ
ॐ *हाथ जानुपर्यन्त लंबे हैं।*[1] ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

---

१. श्वेतं चतुर्भुजं शान्तं कुण्डलाद्यैरलंकृतम्। पुस्तकं चाक्षमालां च वराभयकरं परम्॥
पितृवैश्वानरोपेतं कुटिलभ्रूपशोभितम्। करालवदनं चैव आजानुकरलम्बितम्॥
*(—मध्यमपर्व २। ११। ११-१२)*

ऐसे वास्तुपुरुष का विधि के अनुसार पूजन कर उन्हें स्नान कराये। **'वास्तोष्पते०'** यह वास्तुदेवता के पूजन का मुख्य मन्त्र है [१]। पूजा की जितनी सामग्री है, उसे प्रोक्षण द्वारा शुद्ध कर ले। आसन की शुद्धि कर गणेश, सूर्य, इन्द्र और आधारशक्तिरूप पृथ्वी तथा ब्रह्मा का पूजन करे। तदनन्तर हाथ में श्वेत चन्दनयुक्त श्वेत पुष्प लेकर विष्णुरूप वास्तु पुरुष का ध्यान कर उन्हें आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि प्रदान करे और विविध उपचारों से उनकी पूजा करे।

विद्वान् ब्राह्मण को चाहिए कि कुण्ड और वास्तु वेदी के मध्य में कलश की स्थापना करे। कलश में पर्वत के शिखर, गजशाला, वल्मीक, नदी-संगम, राजद्वार, चौराहे तथा कुश के मूल की—यह सात प्रकार की मिट्टी छोड़े। साथ ही उसमें इन्द्रवल्ली (पारिजात), विष्णुक्रान्ता (कृष्ण शंखपुष्पी), अमृत (आमलकी), त्रपुष (खीरा), मालती, चंपक तथा ऊर्वारुक (ककड़ी)—इन वनस्पतियों को छोड़े। पारिभद्र (नीम) के पत्रों से कलश के कण्ठ का परिवेष्टन करे और कलश के मुख में फणाकाररूप में पंचपल्लवों की स्थापना करे। उसके ऊपर श्रीफल, बीजपूर, नारिकेल, दाड़िम, धात्री तथा जम्बूफल रखे। कलश में सुवर्णादि पंचरत्न छोड़े। गन्ध-पुष्पादि पंचोपचारों से कलश का पूजन करे। कलश में वरुण का आवाहन करे। कलश का स्पर्श करते हुए उसमें समस्त समुद्रों, तीर्थों, गंगादि नदियों तथा पवित्र जलाशयों आदि के पवित्र जल की भावना कर, उनका आह्वान करे। कलश-स्थापन के अनन्तर तिल, चावल, मध्वाज्य तथा दही, दूध आदि से यथाविधि वास्तु-होम करे। वास्तु-हवन के समय वास्तुदेवता के मन्त्र का जप करे। अनन्तर वास्तु-मण्डल के समस्त देवताओं को पायसान्न, कृशरान्न आदि पृथक्-पृथक् क्रमशः बलि

---

१. पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवानः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

(ऋ० ७। ५४। १)

हे वास्तुदेव! हम आपके सच्चे उपासक हैं, इस पर आप पूर्ण विश्वास करें और हमारी स्तुति-प्रार्थनाओं को सुनकर हम सभी उपासकों को आधि-व्याधिमुक्त कर दें और जो हम अपने धन-ऐश्वर्य की कामना करते हैं, आप उसे भी परिपूर्ण कर दें, साथ ही इस वास्तुक्षेत्र या गृह में निवास करनेवाले हमारे स्त्री-पुत्रादि-परिवार-परिजनों के लिए कल्याणकारक हों तथा हमारे अधीनस्थ गौ, अश्वादि सभी चतुष्पद प्राणियों का भी कल्याण करें।

निवेदित करे। सभी देवताओं को उन्हीं के अनुरूप पताका भी प्रदान करे। अपनी सामर्थ्य के अनुसार मन्त्र-जप और वास्तुपुरुषस्तव का पाठ करे[१]। भगवान् शंकर ने भगवान् विष्णुस्वरूप वास्तोष्पति की इस स्तुति को कहा है। इसका जो प्रयत्नपूर्वक निरन्तर पाठ करता है, उसे अमरता प्राप्त हो जाती है और जो हृत्कमल के मध्य निवास करनेवाले भगवान् अच्युत-विष्णु का ध्यान करता है, वह वैष्णवी सिद्धि प्राप्त करता है। यज्ञ कर्म की पूर्णता में आचार्य को पयस्विनी गौ तथा सुवर्ण दक्षिणा में दे, अन्य ब्राह्मणों को भी सुवर्ण प्रदान करे। प्राजापत्य और स्विष्टकृत् हवन करे। आचार्य और ऋत्विज् मिलकर यजमान पर कलश के जल से अभिषेक करें। पूर्णाहुति देकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे। ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर यजमान घर में प्रवेश करे, अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराये। दीन, अन्ध और कृपणों का अपनी शक्ति के अनुसार सम्मान करे। फिर अपने बन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भोजन करे। उस दिन भोजन में दूध, कसैले पदार्थ, भुने हुए शाक तथा करेला आदि निषिद्ध पदार्थों का उपयोग न करे। शाल्यन्न, मूली, कटहल, आम, मधु, घी, गुड़, सेंधा नमक के साथ मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), बदरीफल, धात्रीफल एवं तिल और मरिच आदि से बने पदार्थ भोजन में प्रशस्त कहे गये हैं।

## सर्वतोभद्र-चक्र एवं चक्रस्थ देवता

### (क) सर्वतोभद्र-चक्र

उद्यापन, प्रतिष्ठा तथा यज्ञादि अनुष्ठान-कर्मों में सर्वतोभद्रचक्र बनाकर नियत स्थानों पर अक्षतपुंजों अथवा सुपारियों पर नियत देवताओं का आह्वान कर पूजन किया जाता है। यह चक्र बहुत मङ्गलप्रद एवं कल्याणकारी माना जाता है। सर्वतोभद्र के दो अर्थ होते हैं—

१-जिस चक्र में सब ओर भद्र नामक कोष्ठक-समूह हों, उसे सर्वतोभद्र-चक्र कहते हैं। इस चक्र में प्रत्येक दिशा में दो-दो भद्र बने हाते हैं, अतः यह विग्रह सार्थक होता है।

---

१. भगवान् शंकर के द्वारा की गयी 'ब्रह्मस्तव' नाम की विष्णु-स्तुति इस प्रकार है—

**विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञियो यज्ञपालकः। नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो हुताशनः॥**
**यज्ञेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः! आदिदेवो जगत्कर्ता मण्डलेशो महीधरः॥**

२-दूसरा अर्थ है जो पूजक का सब प्रकार कल्याण करे।

**चक्र-निर्माण-विधि**—एक चौकोर वेदी अथवा चौकी पर श्वेत वस्त्र बिछा दे। वस्त्र इतना बड़ा हो कि वह चौकी के चारों ओर आठ-आठ अंगुल नीचे लटक जाये। वस्त्र के चारों कोनों को चौकी के चारों पावों में तानकर बांध दे। सिलवट न रहे। अब चौकी के चारों ओर आठ-आठ अंगुल छोड़कर रंगे हुए सूत से ईशानकोण से प्रारम्भ कर अग्निकोण तक रेखा खींचे, फिर अग्निकोण से नैर्ऋत्यकोण तक। नैर्ऋत्यकोण से बायव्यकोण तक और वायव्यकोण से ईशानकोण तक रेखाएं खींचे। इस प्रकार चौकोर रेखा तैयार हो जायेगी।

## सर्वतोभद्रचक्र
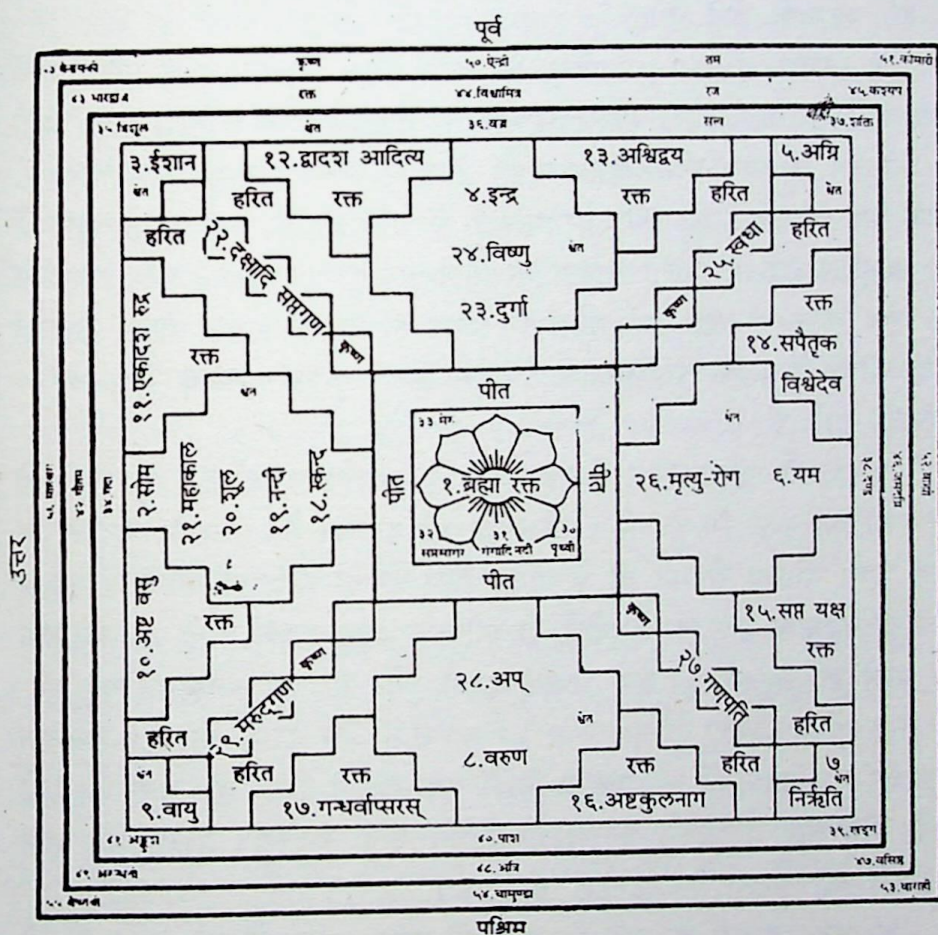
अब इस चौकोर रेखा में दक्षिण से उत्तर की ओर बराबर दो रेखाएं खींचे। इस प्रकार चार रेखाएं और तीन कोष्ठक तैयार हो जाते हैं। अब प्रत्येक कोष्ठक में बराबर-बराबर दो-दो रेखाएं और खींचे। इस प्रकार कुल मिलाकर दस रेखाएं तैयार हो जायेंगी और कोष्ठकों की संख्या ९ होगी। अब प्रत्येक कोष्ठक में एक-एक रेखा और खींचे। इससे रेखाओं की संख्या १९ हो जायेगी। इसी प्रकार पश्चिम की ओर से पूरब की ओर भी बराबर-बराबर ९ रेखाएं खींचे। इस प्रकार रेखाओं की संख्या १९×२=३८ हो जायेगी।

**१-खण्डेन्दुका निर्माण**—ईशानकोण से प्रारम्भ कर प्रत्येक कोण के एक-एक कोष्ठक को श्वेत चावल से भर दे। तदनन्तर इसके अगल-बगल वाले एक-एक कोष्ठकों को भी श्वेत चावल से भर दे। इस प्रकार तीन-तीन कोष्ठकों का एक-एक खण्डेन्दु चारों कोनों पर बन जायेगा। कुल मिलाकर खण्डेन्दु में १२ कोष्ठक होते हैं।

**२-कृष्ण-शृंखला**—खण्डेन्दु के कोण वाले कोष्ठक के ठीक नीचे एक खाने में तिल अथवा काला चावल भर दे। इसके ठीक नीचे पूरब वाली दो कोष्ठक छोड़कर तीसरे कोष्ठक में, तीन कोष्ठकों को छोड़कर चौथे में, फिर चार कोष्ठकों को छोड़कर पांचवें में और इसके बाद पांच कोष्ठकों को छोड़कर छठे में काला चावल या तिल भर दे। इस प्रकार पांच कोष्ठकों की एक कृष्ण-शृंखला एक कोण में तैयार हो जायेगी। इसी विधि से तीन तीनों कोणों में कृष्ण-शृंखला बना दे। इस प्रकार कृष्ण-शृंखला में ५×४=२० कोष्ठक होते हैं।

**३-वल्ली**—ईशानकोण से खण्डेन्दु के बगलवाले कोष्ठक के नीचे दो कोष्ठकों को नीले रंग से भरे (हरित का भी प्रचलन है)। उसके बाद उसके नीचे कृष्ण मेखला से सटे दो कोष्ठक, फिर उसके नीचे दो कोष्ठक, उसके नीचे दो कोष्ठक तथा उसके नीचे दो कोष्ठक और उसके नीचे एक कोष्ठक को नीले रंग से भर दे। इसी प्रकार दूसरी ओर भी ११ कोष्ठकों को भरे। इस तरह कृष्ण मेखला के एक ओर ११ कोष्ठक और दूसरी ओर ११ कोष्ठक मिलाकर २२ कोष्ठकों की एक कोने में एक वल्ली तैयार हो जाती है। इसी प्रकार शेष तीन कोणों में वल्ली तैयार कर लेनी चाहिए। वल्ली की कुल कोष्ठकों की संख्या २२×४=८८ होती है।

**४-भद्र**—वल्ली के सटे रिक्त ऊपरी पांच कोष्ठकों को लाल रंग से

भर दे, फिर तीन कोष्ठकों को और फिर एक कोष्टक को लाल रंग से भरे। यही भद्र है। एक भद्र में ९ कोष्ठक लगते हैं। ८ भद्रों में ७२ कोष्ठक होते हैं।

**५-वापी**—भद्र से सटे ऊपरी २ कोष्ठकों को श्वेत चावल से भर दे। फिर उसके नीचे के ४ कोष्ठकों, उसके नीचे के ६ कोष्ठकों, पुनः उसके नीचे के ६ कोष्ठकों, उसके नीचे ४ कोष्ठकों तथा उसके नीचे २ कोष्ठकों को श्वते चावल से भर दे। इस प्रकार वापी में चौबीस कोष्ठक लगते हैं। चार वापियों में ९६ कोष्ठक होते हैं।

**६-परिधि**—अब वापी के नीचे ३६ कोष्ठकों में परिधि और मध्य बनाना है। परिधि के लिए वापी के सटे ही ठीक नीचे छः खानों में पीला रंग भर दे, इसी प्रकार चारों वापियों से सटे चार कोष्ठक, छः कोष्ठक तथा पुनः चार कोष्ठकों में पीला रंग भर दे। इस प्रकार परिधि में २० कोष्ठक होते हैं।

**७-मध्य**—शेष १६ कोष्ठकों को मध्य कहते हैं। इसका वर्ण लाल होता है। इसमें कर्णिकायुक्त अष्टदल-कमल होना चाहिए।

**बाह्य परिधि**—अब सर्वतोभद्र के बाहर तीन परिधियां बनानी हैं। पहली परिधि को सफेद चावल (सत्त्वगुण) भरे। दूसरी परिधि लाल चावल (रजोगुण) से, तीसरी परिधि काले रंग के चावल (तमोगुण) से भरे।

सर्वतोभद्र मण्डल के कुल कोष्ठक ३२४ होते हैं। जसे १२ खण्डेन्दु, २० कृष्ण शृंखला, ८८ वल्ली, ७२ भद्र, ९६ वापी, २० परिधि तथा १६ मध्य के कोष्ठक होते है।*

## (ख) सर्वतोभद्र मण्डल के देवता

सर्वतोभद्र मण्डल में जिन इन्द्रादि देवताओं, मातृशक्ति तथा ऋष्यादिकों का आह्वान-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

---

*प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादिकोनविंशतिः। खण्डेन्दुस्त्रिपदः श्वेतः पञ्चभिः कृष्णशृङ्खला॥
नीलैकादशवल्ली तु भद्रं रक्तं पदैर्नव। षण्णवतियुता वापी परिधिः पीतविंशतिः॥
मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः रक्तं पद्मं सकर्णिकम्। परिध्यावेष्ठितं पद्मं बाह्ये सत्त्वरजस्तमः॥
तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरेश्वरान्।

*(–ग्रहशान्ति में स्कन्दपुराण के वचन)*

१-ब्रह्मा, २-सोम (चन्द्रमा), ३-ईशान, ४-इन्द्र, ५-अग्नि, ६-यम, ७-निर्ऋति, ८-वरुण, ९-वायु, १०-अष्टचक्र, ११-एकादश रुद्र, १२-द्वादश आदित्य, १३-आश्विन, १४-सपैतृक-विश्वेदेव, १५-सप्तयक्ष, १६-अष्टकुलनाश, १७-गन्धर्वाप्सरस्, १८-स्कन्द, १९-नन्दी, २०-शुक्र, २१-महाकाल, २२-दक्षादि सप्तगण, २३-दुर्गा, २४-विष्णु, २५-स्वधा, २६-मृत्यु-रोग, २७-गणपति, २८-अप, २९-मरुद्गण, ३०-पृथ्वी, ३१-गंगादि नदी, ३२-सप्तगण, ३३-मेरु, ३४-गदा, ३५-त्रिशूल, ३६-वज्र, ३७-शंख, ३८-दण्ड, ३९-खड्ग, ४०-पाश, ४१-अंकुश, ४२-गौतम्, ४३-भरद्वाज, ४४-विश्वामित्र, ४५-कश्यप; ४६-जमदग्नि, ४७-वसिष्ठ, ४८-अत्रि, ४९-अरुन्धती, ५०-ऐन्द्री, ५१-कौमारी, ५२-ब्राह्मी, ५३-वाराही, ५४-चामुण्डा, ५५-वैष्णवी, ५६-माहेश्वरी, तथा ५७-वैनायकी।

इनमें से ब्रह्मा, सोम, ईशान, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋदि, वरुण, वायु, अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, अश्विद्वय, विश्वेदेव, अष्टकुलनाग, स्कन्द, दुर्गा, विष्णु, स्वच्छ आदि।

## लिङ्गतोभद्रमण्डल के विशिष्ट देवता

माङ्गलिक पूजा-महोत्सवों, यज्ञ-यागादि अनुष्ठानों तथा देव-प्रतिष्ठा आदि शुभ कर्मों में प्रायः नवग्रह, मातृका, योगिनी तथा सर्वतोभद्रमण्डल आदि चक्रों के साथ-साथ लिङ्गतोभद्रमण्डल-चक्र की रचना कर उस मण्डल में विभिन्न देवताओं की प्रतिष्ठा तथा पूजा-उपासना की जाती है इससे साधक, उपासक, पूजक का सभी प्रकार कल्याण-मङ्गल होता है। लिङ्गतोभद्र चक्र एकलिङ्ग, चतुर्लिङ्ग, अष्टलिङ्ग, द्वादशलिङ्ग आदि लिङ्ग एवं रचना भेद से अनेक प्रकार के बनते हैं। भद्रमार्तण्डादि ग्रन्थों में इन चक्रों की संरचना तथा पीठ में तत्तद् देवताओं की स्थापना का विधान बताया गया है। साथ ही कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में पूजन का विस्तृत वर्णन भी प्राप्त होता है। यहां संक्षेप में चतुर्लिङ्गतोभद्र चक्र की संरचना एवं उसमें पूजित होने वाले विशेष देवताओं का नामोल्लेखमात्र किया जा रहा है। विशेष जानकारी के लिए शास्त्रों का अवलोकन करना चाहिए तथा इन विषयों के मर्मज्ञ पण्डितों का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

किसी पीठ अथवा वेदी में पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण अठारह-अठारह रेखाएं खींचने से २८९ कोष्ठात्मक चतुर्लिङ्गतोभद्रचक्र बनता है। चक्र में अङ्कित वर्णों के क्रम से कोणेन्दु के तीन-तीन कोष्ठकों में श्वेत, तीन-तीन कोष्ठकयुक्त

चार कृष्ण शृंखलाओं में कृष्ण, वल्लियों में नीला (मतान्तर से हरित), आठ भद्रों में रक्त, चार महारुद्रों में कृष्ण, आठ वापियों में श्वेत, भद्र तथा वापी के मध्य आठ कोष्ठकों में पीत, चार कृष्ण शृंखलाओं के शीर्ष भाग के तीन-तीन कोष्ठकों में पुनः पीत, लिङ्ग के स्कन्धों से सटे बीस कोष्ठकों में रक्त, पुनः षोडशकोष्ठात्मक परिधि में पीत तथा मध्य के नवकोष्ठात्मक पद्म में रक्तवर्ण से रंगे अक्षत अथवा तत्तद् वर्ण के चूर्णादि भर देने चाहिए। सत्त्व, रज, तमात्मक बाह्य परिधि भी बनानी चाहिए। इस प्रकार भद्रमण्डल की संरचना कर उसमें तत्तद् देवताओं की स्थापना करनी चाहिए।

## चतुर्लिङ्गतोभद्रचक्र
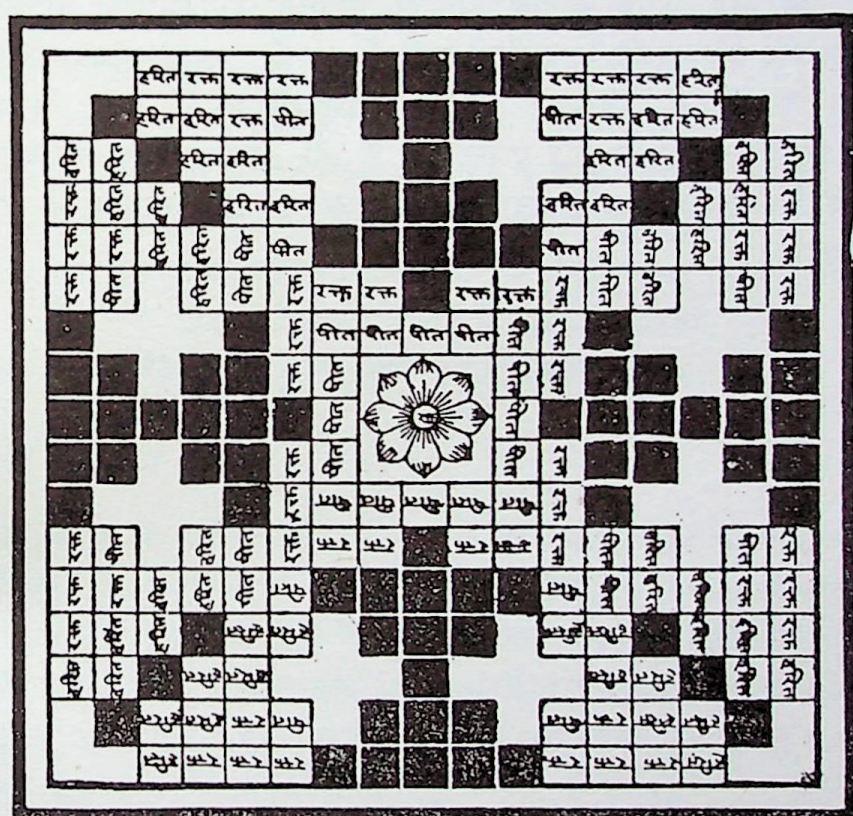
इस पीठमण्डल में सर्वतोभद्र के प्रायः सभी देवताओं का आह्वान कर उनका भी पूजन करने की परम्परा है। मण्डल के विशिष्ट देवता इस प्रकार हैं—

(१) असिताङ्ग भैरव, (२) रुरु भैरव, (३) चण्ड भैरव, (४) क्रोध भैरव, (५) उन्मत्त भैरव, (६) कपाल भैरव, (७) भीषण भैरव, (८) संहार भैरव, (९) भव, (१०) शर्व, (११) पशुपति, (१२) ईशान, (१३) रुद्र, (१४) उग्र, (१५) भीम, (१६) महान्, (१७) अनन्त, (१८) वासुकि, (१९) तक्षक, (२०) कुलिश, (२१) कर्कोटक, (२२) शङ्खपाल, (२३) कम्बल, (२४) अश्वतर, (२५) शूल, (२६) चन्द्रमौलि; (२७) चन्द्रमा, (२८) वृषभध्वज, (२९) त्रिलोचन, (३०) शक्तिधर, (३१) महेश्वर (३२) शूलपाणि।

इन देवताओं की स्थापना कर मण्डल की प्राण-प्रतिष्ठा करके देवताओं का नाम-मन्त्रों अथवा वैदिक पौराणिक मन्त्रों से गन्ध-पुष्पादि उपचारों द्वारा पूजन कर हवन आदि कार्य किये जाते हैं। मूलतः लिङ्गतोभद्रचक्र में भगवान् शिव के परिकरों, परिच्छदों, आयुधों, आभूषणों का ही पूजन किया जाता है। इससे भगवान् आशुतोष प्रसन्न होते हैं और साधक के अभीष्ट की सिद्धि होती है। साथ ही उनके अनुग्रह से उपासक को शिव-सायुज्य भी प्राप्त हो जाता है।

# एक कुण्ड निर्माण की प्रमाणिक विधि

कुण्डवत्तद्बहिर्भागे कारयेद्चातुरस्रकम्।
वितस्तिद्वयखातंयत्सकुंडं चतुरङ्गुलम्॥
विप्राणां क्षत्रियाणांच चाङ्गुलत्रयसंयुतम्॥
वैश्यानां द्वयंगुलाधिक्यं शूद्राणां हस्तमात्रकम्॥
प्रथमा मेखला तत्र द्वादशाङगुलविस्तृता।
चतुर्भिरंगुलैस्तस्याश्चोन्नतत्त्वं समंततः॥
तस्याश्चोपरि वप्रः स्याद्चतुरङ्गुलमुन्नतः।
अष्टाभिरङ्गुलैः सम्यग्विस्तीर्णश्च समंततः॥
तस्योपरि पुनः कार्यो वप्रः सोऽपितृतीयकः।
चतुरङ्गुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः॥
योनिश्च पश्चिमे भागे प्राङ्मुखी मध्यसंस्थिता।
षडंगुलश्च विस्तीर्णा चायता द्वादशांगुलैः॥
पृष्ठोन्नता गजस्येव सच्छिद्रा मध्यमोन्नता।
एवं लक्षणसंयुक्तं कुण्ड मिष्टार्थसिद्धते॥
अनेकदोषदं कुण्डं यत्र न्यूनाधिको भवेत्॥

## मेखला प्रमाण

२४ अंगुल के क्षेत्र में आठ भाग करके तीन-तीन अंगुल के पांच भाग करने अथवा १५ अंगुल भूमि खोदनी। भूमि के ऊपर तीसरे भाग में अर्थात् ९ अंगुल में तीन मेखलाएं होती हैं। इनकी ऊंचाई कुण्ड से ४-३-२ अंगुल होती हैं। अथवा खात के ऊपर एक अंगुल कुण्ड रूप छोड़कर पहली मेखला चार अंगुल, दूसरी तीन अंगुल एवं तीसरी सबसे उपर वाली मेखला दो अंगुल की होती है।

पांच मेखलाओं के पक्ष में पहली मेखला ६ अंगुल चौड़ी एवं ९ अंगुल ऊंची, दूसरी मेखला पांच अंगुल चौड़ी और ७ यव १ यूका ४ लिक्षा ६ बालाग्र ऊंची करनी। तीसरी ४ अंगुल, चौथी तीन अंगुल, पांचवी दो अंगुल।

प्रत्येक मेखला ऊंचाई से पहले से पंचमांश न्यून-ऊंची करनी। जिस प्रकार का कुण्ड हो उस प्रकार की मेखला करनी। नाभि कुण्ड से बारहवा अंश तथा नाभि की ऊंचाई चार अंगुल की होती है।

**पहिला १ वप्र**
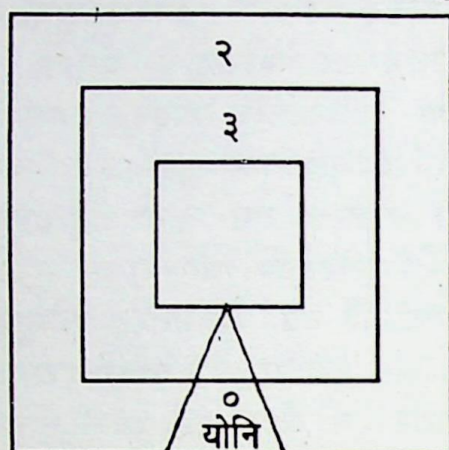
## एक कुण्डीय स्वरूप

मण्डप के बाहर एक चौखुंटा कुण्ड बनावे—दो बालिश्त लंबा और दो बालिश्त चौड़ा चार अंगुल गहरा गड्ढा है खात जिसका, ऐसा कुण्ड बनावे। परन्तु ब्राह्मणों का कुण्ड एक हाथ चार अंगुल लंबा, चौड़ा बनाना चाहिए, क्षत्रियों के वास्ते एक हाथ तीन अंगुल लंबा-चौड़ा बनाना चाहिए और वैश्यों के वास्ते एक हाथ दो अंगुल का कुण्ड बनाना चाहिए। शूद्रों के वास्ते केवल एक हाथ लंबा-चौड़ा कुण्ड बनाना चाहिए। उस कुण्ड के ऊपर प्रथम मेखला बारह अंगुल चौड़ी, चार अंगुल ऊंची बनानी चाहिए। उस मेखला के ऊपर चार अंगुल ऊंची और आठ अंगुल चौड़ा वप्र बनाना चाहिए। जिसके ऊपर फिर तीसरा वप्र बनावे, चार अंगुल लंबा और चार अंगुल ऊंचा वप्र बनाना चाहिए। कुण्ड के पश्चिम की तरफ पूर्व को है मुख जिसका, कुण्ड के वप्र में छः अंगुल चौड़ी बारह अंगुल लंबी योनि बनावे अर्थात् भगाकार स्वरूप बनाना चाहिए। वह योनि पीठ की तरफ से ऊंची, बीच में छेद जिसके और बीच में ऊंचाई लिए होना चाहिए। इन लक्षणों सहित जो कुण्ड है सो इष्ट अर्थात् सब प्रकार के मनोरथ सिद्धिदायक होते हैं। जो पूर्व कहे गये प्रमाण के विपरीत कुण्ड जो कम-ज्यादा नाप में हो तो अनेक प्रकार के दोष देता है।

## एक कुण्डीय यज्ञ का मण्डप विचार

अच्छे काल में पुण्यस्थान में पंडितजन मंडप बनावे। मण्डप मकान के ईशान्य कोण में अथवा पूर्व में या उत्तर दिशा में बनावे। वह मण्डप आठ हाथ का अथवा चार हाथ का चौरस चार दरवाजे सहित वंदनवार से अलंकृत करके। इस मण्डप के बाहर ग्रहों के यज्ञरीति के अनुसार कुण्ड बनावे।

## कुण्ड स्वरूप

> कुण्डस्वरूपं तु जानीयात्परमं प्रकृतैर्वपुः।
> प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः॥
> उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे॥

अर्थात् यह जो कुण्ड है वह रचनात्मक सृष्टि का स्वरूप (शरीर) है। पूर्व दिशा में इसका सिर, दक्षिण और उत्तर दोनों हाथ, कुण्ड का खात इसका पेट और पश्चिम में इसकी योनि मानो इसके पैर हैं।

एक हाथ के कुण्ड की लंबाई-चौड़ाई २४ अंगुल की होती है, दो हाथ के कुण्ड की चौंतीस अंगुल और तीन हाथ के कुण्ड की एकतालीस अंगुल होती है। इसी तरह से अधिक हाथों के विषय में भी समझना चाहिए।

## वर्ण भेद से कुण्डों का आकार-प्रकार

> विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
> वैश्यानामर्द्धचंन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरतम्॥
> चतुरस्रं तु सर्वेषां क्वचिच्छन्ति तान्त्रिकाः॥

ब्राह्मणों के लिए चतुरस्र कुण्ड, क्षत्रियों के लिए वर्तुल कुण्ड, वैश्य के लिए अर्धचन्द्र कुण्ड और शूद्रों के लिए त्रिकोण कुण्ड प्रशस्त माने गये हैं। तन्त्र शास्त्रों के अनुसार चतुरस्र कुण्ड सभी वर्ण एवं सभी प्रकार के कार्यों के लिए शुभ फलदायक कहा गया है।

कुण्ड यदि टेढ़ा-मेढ़ा हो तो यजमान को भारी सन्ताप होता है। मेखला के टूटने पर यजमान का घर टूट जाता है। कुण्ड का खात अधिक होने पर यजमान रोगी होता है। उसके घर में अचानक रोग व मृत्यु का प्रवेश होता है। खात कम होने पर धन और गायों (पशुधन) का नाश होता है। कुण्ड

में योनि न हो तो भार्या का नाश होता है और कण्ठ न होने पर यजमान का घर ध्वस्त होता है।

### कुण्डाभावे स्थण्डिलं कार्यम्

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत्।
हस्तमात्रेण तत्कुर्या द्वालुकाभिः सुशोभनम्।
अंगुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समंततः॥

नित्य, नैमित्तिकं और काम्य कार्यों में कुण्ड के अभाव में बालू मिट्टी से सुन्दर (वेदी) बनावे, यह वेदी प्रमाण में २४ अंगुल अर्थात् एक हस्त मात्र चमचौरस होनी चाहिए। शास्त्रकारों ने और भी कहा है—

कुण्डे तु बहवः दोषाः, स्थण्डिले बहवः गुणाः।

अर्थात् कुण्ड निर्माण में तो अनेक दोष हैं परन्तु स्थण्डिल निर्माण में कोई दोष नहीं है अतः विद्वान् लोगों को कुण्ड के अभाव में सदैव सुन्दर स्थण्डिल का निर्माण करना चाहिए जो कि सर्वत्र प्रशस्त कही गयी है।

### वेदी प्रमाण एवं लक्षण

वेदिका दर्भहीना तु विनग्ना प्रोच्यते बुधैः।
परिधानं ततः कुर्यात् दर्भेणैव विशेषतः॥

*—नारद पंचरात्रे*

कुण्ड के अभाव में नाना प्रकार के हवन के लिए सुवर्ण जैसी कान्ति वाली बालू मिट्टी से एक हस्त चमचौरस (२४ अंगुल) की वेदी बनानी चाहिए। यह वेदी ४ अंगुल ऊंची, पांच अंगुल तथा कही-कहीं आठ अंगुल भी ऊंची हो सकती है। दर्भहीन वेदी अपूर्ण मानी जाती है अतः विद्वान् लोग कुश-दर्भ में वेदी को वेष्टित करके वस्त्र पहनाते हैं।

### दिशानुसार कुण्ड फल

पूर्व दिशा में यज्ञ कुण्ड बनाने से कार्य की सिद्धि, अग्निकोण में पुत्र प्राप्ति, दक्षिण में शुभ, नैऋत्य में शत्रुनाश, पश्चिम में शांतिकर्म, वायुकोण में मारण, उत्तर में वृष्टि, ईशान्य में आरोग्य की प्राप्ति होती है।

### विभिन्न कुण्ड महिमा

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं, चतुरस्रमुदाहृतम्॥
पुत्रप्रदं योनि कुण्डं, अर्द्धेन्दुलाभं शुभप्रदम्॥
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्त्रं, वर्तुलं शान्तिकर्मणि।
छेदमारणयोः कुण्डं षडस्रं पद्मसन्निभम्॥
वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डं अष्टास्रमीरिरतम्॥

चतुरस्र कुण्ड सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाला एवं सभी प्रकार के कर्मो में ग्राह्य है। योनिकुण्ड पुत्र-सन्तान को देने वाला कहा गया है। अर्धचन्द्र मनोकामना प्रद सब प्रकार से शुभ है। त्रिकोण कुण्ड के द्वारा शत्रु व रोगों का नाश किया जाता है। वर्तुल शान्ति व पुष्टिकर्म के लिए श्रेष्ठ है। षट्कोण द्वारा मारण व अभिचार प्रयोग किया जाता है। पद्मकुण्ड प्रधान कुण्ड कहा गया है जो सभी सिद्धियों व मनोरथों को देने वाला है। अष्टकोण वृष्टिदायक एवं विभिन्न उपद्रवों का नाश करता है।

## होम संख्यानुसार कुण्ड के प्रकार

५० आहुति में रत्नी मात्र कुण्ड (२१ अंगुल पर्व) चाहिए।
१०० आहुति में अरत्नी मात्र (२२½ अंगुल पर्व) कुण्ड चाहिए।
१००० एक हजार आहुति में हस्तमात्र (२४ अंगुल) कुण्ड चाहिए।
१०,००० दस हजार आहुति में दो हाथ वाला कुण्ड चाहिए।
१,००,००० एक लाख आहुति में चार हाथ वाला कुण्ड चाहिए।
१०,००,००० दस लाख आहुति में छः हाथ वाला कुण्ड चाहिए।
१०,०००,०००० एक करोड़ आहुति में आठ हाथ वाला, किसी मत से दस या सोलह हाथ वाला कुण्ड भी बनता है।

### अन्य मत

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।
लक्षाणां दशकं यावत्तावद्हस्तेन वर्धयेत्॥

*–सिद्धान्त शेखरे*

अन्य विद्वानों के मतानुसार एक लाख आहुतियों का हवन यदि हो तो एक हाथ का कुण्ड होना चाहिए! दो लाख आहुतियों पर दो हाथ, इसी प्रकार से दस लाख आहुतियों पर दस हाथ का कुण्ड करना चाहिए। कुछ विद्वानों के हिसाब से पचास लाख आहुति पर सात हाथ, दस लाख पर पांच हाथ, बीस लाख आहुति पर छः हाथ तथा पचास हजार आहुति पर एक हाथ का चतुरस्र कुण्ड बनना चाहिए।

## एक हाथ से दस हाथ तक के कुण्डों का भुजमान

एक हाथ का कुण्ड चौबीस (२४) अंगुल, एक यव का प्रशस्त कहा गया है। दो हाथ का कुण्ड चौंतीस अंगुल तीन यव, तीन हाथ का कुण्ड ४१ अंगुल और पांच यव, चार हाथ का कुण्ड अड़तालीस (४८) अंगुल का होता है।

## कुण्ड ऊपर योनि बनाने का प्रमाण

पूर्व दिशा के क्रम से तीन कुण्ड चौरस कुण्ड, योनि और अर्धचन्द्र कुण्ड पर दक्षिण भाग पर योनि लगती है और योनि का अग्रभाग उत्तर दिशा की तरफ होता है। अन्य पांच कुण्डों में योनि पश्चिम दिशा में लगती है। तथा इसका अग्रभागं पूर्व दिशा की ओर रहता है। नवमा जो कुण्ड ईशान्य और पूर्व के मध्य है उसकी पश्चिम दिशा में योनि होती है।

**नार्पयेत्कुण्डकोणेषु योनि तां तत्रवित्तमः।**
**योनिकुण्डे तथा योनि, पद्मं नाभि विवर्जयेत्॥**

*—त्रैलोक्यसारे*

**योनिकुण्डेयोनि मब्जकुण्डे नाभि विवर्जयेत्।**
**नाभिक्षेत्रं त्रिधाभित्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम्।**
**बहिरंशद्वयेवाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत्॥**

ध्यान रहे कि योनि कभी भी कोण (कोने) में नहीं लगती। योनि कुण्ड में योनि नहीं होती तथा पद्मकुण्ड में नाभि नहीं होती। नाभि को तीन भागों में विभाजित करे। बीच में कर्णिका और कुण्ड के बाहर के भाग में कमल-पत्र की आकृति बनती है।

### योनि लक्षण एवं प्रमाण

क्षेत्र से आधी अर्थात् २४ अंगुल क्षेत्र में १२ अंगुल लम्बी एवं आठ अंगुल चौड़ी और एक अंगुल मेखला युक्त और कुण्ड की तरफ लटकती हुई, एक अंगुल कुण्ड में प्रविष्ट करती हुई, अर्धचन्द्रों से युक्त नीचे भाग में स्थूल, मध्य में खातयुक्त, छिद्र सहित, नालयुक्त सुन्दर अश्वत्थ-पत्र के आकार की योनि बनानी चाहिए।

मेखला यदि १२ अंगुल की हो तो उस पक्ष से दस अंगुल चौड़ी तथा पन्द्रह अंगुल लम्बी योनि बनानी चाहिए।

### नाभि लक्षण एवं प्रमाण

सभी प्रकार के कुण्डों में कमल जैसी आकार वाली नाभि की रचना करनी परन्तु पद्मकुण्ड में नाभि की रचना नहीं होती। २४ अंगुल हस्तमात्र प्रमाण वाले कुण्ड में नाभि दो अंगुल ऊंची एवं चार अंगुल चौड़ी (चौकोर) होती है। अंगुल का बारहवां अंश यवादि २-५-२-५ बाद करने से ४ अंगुल, बाकी ३-६-२-३-२ क्षेत्र में तीन वृत करने चाहिए। जैसे अंगुलादि १-१-६-०-१ व्यास का प्रथम वृत्त प्रकार से सिद्ध होगा। यवापि ४-७-०-०-४ इस विस्तार का प्रकार से प्रथम वृत्त, अंगुलादि १-६-५-०-१-० इसी विस्तार का तीसरा वृत्त होगा। तीन वृत्त में प्रथम वृत्त कर्णिका, दूसरा केसर और तीसरा पत्र होता है। जिस आकृति का कुण्ड होता है, उसी आकृति की नाभि होती है।

### कुण्ड पताकाओं का प्रमाण

**स्थापने सर्वकुडानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः।**
**शतरंशो बाधिकं हीनं हवासवृद्धि न दूषयेत्॥**
**आयदोष विशुद्ध्यर्थं क्रियेत शास्त्र कोविदैः॥**

प्रत्येक कुण्ड पर कुण्ड संख्या के साथ-साथ, छोटी-छोटी पताकाएं भी होनी चाहिए। इससे कुण्ड की शुद्धि, आय की वृद्धि एवं सिद्धि में वृद्धि होती है।

## सुव्रलक्षणम्

खादिरादेः स्रुवः कार्या हस्तमात्रप्रमाणतः।
अंगुष्ठपर्वखातं तन्त्रिभागं दीर्घपुष्करम्॥

*—संस्कार भास्करे*

शमीमयः स्रुवः कार्यस्तदलाभेऽन्यवृक्षजः।
खादिरस्तु स्रुवः कार्यः सर्वकामार्थेसिद्धये॥

*—संग्रहे विशेषः*

खादिरो वाथ वार्णो वा द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः।
स्रुवो न्तश्चतुर्विंशः स्यात्षड्देवास्तत्र संस्थिताः॥
अग्निरुद्रौ विष्णुः शक्रः प्रजापतिः।
मूले चतुरगुंलेऽग्निर्द्वितीये रुद्रदैवतम्॥
तृतीय यमनो देवश्चतुर्थे विष्णुदेवता।
पंचमे शक्रदेवः स्यात्षष्ठे चैव प्रजापतिः॥
यममग्निं परित्यज्य शुक्रं रुद्रं प्रजापतिम्
विष्णुस्थाने च हूयेत एवं कर्म शुभप्रदम्॥
अग्रे घृत्वा तु वैधव्यं मध्ये घृत्वा प्रजाक्षयः।
मूले च म्रियते होता स्रुवस्थानं कथं भवेत्
अग्रन्मध्यस्तु यन्मध्यं मूलान्मध्यस्तु मध्यमम्।

*—कारिकायम्*

स्रुवं च धारयेद्विद्वानायुरारोग्यदं सदा॥
अरत्निमात्रकः स्रुवः अंगुष्ठ वृत्तपुष्कलः।
अग्निंः सूर्यश्च सोमश्च विरंचिरनिलो यमः॥
एते वै षड् देवाश्च चतुरंगुलभागिनः।
अग्निभागेऽर्थनाशाय सूर्ये व्याधिकरो भवेत्॥
सोमे च निष्फलो धर्मो विरंचिः सर्वकामदः।
अनिले रोगमाप्नोति यमे मृत्युः प्रजायते॥

*—शौनकेन*

खादिरेणस्रुवः कार्यः पालाशेन जुहूर्भवेत्।
तदभावे पलाशस्य पर्णाभ्यां हूयेते हविः॥
पलाशपर्णाभावे तु पर्णैयो पिप्लोद्भवैः॥
पलाशपर्णे मध्यमं ग्राह्यम्-मध्यमेन पर्णेन जुहोति

*–इति श्रुते*

## स्रुव एवं स्रुची विचार

यज्ञ में घृत होमने के लिए स्रुव तथा पूर्णाहुति में श्रीफल, बिल्वफल इत्यादि होमने के लिए स्रुची कामं में ली जाती है।

स्रुव के लिए खदिर की लकड़ी प्रशस्त की गई है तथा इसकी लम्बाई (चौबीस अंगुल) हस्तमात्र कही गई है। इसका मुंह अंगुष्ठ के पर्व जितनी खात वाला ही होता है। खदिर के अभाव में पलाश या पीपल तथा अन्य हवनीय वृक्ष की लकड़ी ले सकते हैं।

स्रुव में छः देवताओं का निवास कहा गया है। स्रुव मूल के चार अंगुल पर अग्नि देवता, रुद्र, यम, विष्णु, इन्द्र और प्रजापति इन छः देवताओं का क्रमशः निवास होता है। यम, अग्नि, इन्द्र व प्रजापति स्थान को छोड़कर विष्णु स्थल से स्रुव को पकड़ कर आहुति देनी चाहिए तब कर्म शुभफलप्रद होता है।

स्रुव को इसके आगे पकड़ेंगे तो वैधव्य, मध्य में प्रजा-क्षय, मूल में यज्ञ के होता की मृत्यु होती है। स्रुची छत्तीस अंगुल लम्बी होती है। इसका मुंह गाय के मुंह के समान पुष्कल होता है। जितना लम्बा मुख होता है, उसके छठे हिस्से की खात होती है तथा दण्ड के अन्त में कंकण अवश्य होता हैं। ऐसी श्रुचि यज्ञ-कार्य हेतु प्रशस्त मानी गयी है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ **यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति** ॐ

ॐ **सत्त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येपि मृत्योप्रब्रूहित्वं श्रद्धानाय मह्यम।** ॐ
ॐ **स्वर्गलोका अमृतत्त्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वरं वरेण॥** ॐ

ॐ *हे! यम आप स्वर्ग लोक की प्राप्ति के साधन भूत* ॐ
ॐ *अग्नि (अर्थात् यज्ञ) विद्या को जानते हो। अतः मुझ स्वर्गार्थी* ॐ
ॐ *श्रद्धालु के प्रति उसका ज्ञान दीजिए। जिस अग्नि का चयन* ॐ
*करने से स्वर्ग को प्राप्त करने वाले यजमानगण देवत्व* ॐ
ॐ *को प्राप्त हो जाते हैं, उस अग्नि-विज्ञान को मैं दूसरे वर* ॐ
ॐ *के द्वारा मांगता हूं।* ॐ

ॐ –नचिकेता, कठोपनिषद्-१। १। १३ ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

## प्रणीता लक्षण

**द्वादशांगुल दीर्घेण चतुरस्रः सगर्तकः**
**प्रस्थमात्रोदकं ग्राही प्रणीता चमसो भवेत्।**

*—कर्मप्रदीप*

अग्नि के उत्तर दिशा में दो कुशों का आसन देकर प्रणीता रखी जाती है। प्रणीता चमसाकार आकृति में होती है। यह बारह अंगुल लम्बी, चार अंगुल चौड़ी, तथा चार अंगुल खात वाली, अंजुली भर जल को ग्रहण करने वाली होती है।

## प्रोक्षणी विचार

प्रोक्षणी पात्र अर्घ्य के आकार का होता है तथा यह प्रणीता के पास रखा जाता है। प्रणीता से उदक इसमें डालकर यज्ञ की सभी वस्तुओं को प्रोक्षित कर मन्त्रपूत किया जाता है।

## पूर्णपात्र विचार

**अकृते पूर्ण पात्रे च छिद्रयज्ञः प्रजायते।**
**पूर्णपात्रे च सम्पूर्णे सर्व सम्पूर्णता भवेत्॥**
**अष्टमुष्टिर्भवेत् किंचिदष्टौ च पुष्कलम्।**
**पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं प्रचक्षते॥**

*—गदाधर भाष्ये*

ब्राह्मणों को पूर्णपात्र दिये बिना यज्ञ की सिद्धि नहीं मिलती ऐसा अनुष्ठान छिद्रयज्ञ कहलाता है। पूर्णपात्र को धान्य से भर कर दिये बिना यज्ञ अपूर्ण रहता है। इसलिए दक्षिणा सहित सम्पूर्ण पूर्णपात्र देने से यज्ञ भी सम्पूर्णता को प्राप्त होता है। पूर्णपात्र कितना बड़ा हो, इस विषय में कहा गया है कि पूर्णपात्र में कम-से-कम आठ (यजमान की) मुट्ठी भर, धान आना चाहिए।

# १. चतुरस्रकुण्डम्
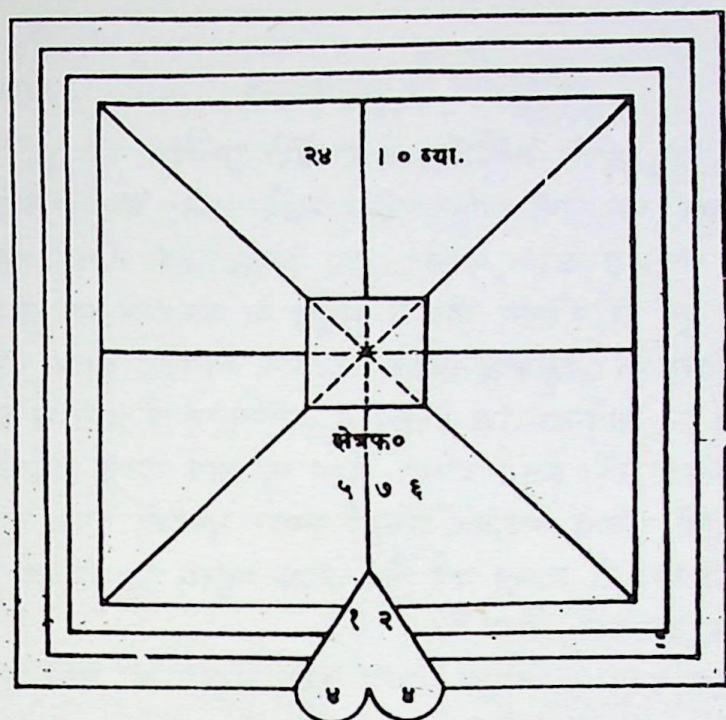
चतुरस्र कुण्डकारिका

> चतुर्विंशांगुलैः साध्ये द्वि गुणा रज्जुरीर्यते।
> अन्ते पाशद्वयं तस्यातर्द्धे लांछनं ततः॥
> मध्यात्षडंगुले चैकं ततः षडंगुलेऽपरम्।
> साध्ये पूर्वापरौ शंकु तयोः पाशो निधाय च॥
> मध्यात्शंकु नीत्वा विदिशाकर्षयेत्ततः।
> षडंगुले शंकुः स्याच्चैवं त्रिविदिक्षु च॥
> दत्ते शंकुत्रये चैव चतुरस्र च साधयेत्॥

२४ अंगुल का कुण्ड बनाने के लिए अर्थात् ४८ अंगुल की डोरी लेनी तथा उसके दोनों सिरे एकत्रित करके बीचो-बीच में निशान लगाना। फिर उसके मध्य में छः-छः अंगुल के अन्तर पर तीन चिह्न करके पूर्व एवं पश्चिम दिशा में दो शंकुओं के पास रखना और मध्य्र में छः अंगुल छोड़ कर। उसके मध्य चिह्न को अग्नि कोण में खींच कर छः अंगुल के अन्तर पर शंकु रखना। नैऋत्य, वायव्य, ईशान्य दिशाओं में भी इस रीति से छः-छः अंगुल

के अन्तर पर शंकु खीच कर, चारों तरफ एक समान भुजाओं वाले चतुरस्र कुण्ड की रचना करनी।

## चतुष्कोण कुण्ड साधन

सबसे पहले दिशा साधन करे फिर दोनों कोने पर पाश की हुई डोरी कुण्ड के व्यास से बाईं ओर लेनी चाहिए। फिर उसके समान चार भाग करना चाहिए और उनको चिह्नित करना चाहिए। इस प्रकार डोरी तीन जगह से चिह्नित होगी। फिर पूर्व से पश्चिम चौबीस अंगुल के अन्तराल पर दो शंकु देना चाहिए। सभी दिशा के एक-एक पाश करके बीच का चिह्न बराबर दक्षिण दिशा की मध्य रेखा पर आयेगा। फिर नैऋत्य व अग्निकोण में डोरी से बाकी के चिह्न खींचकर मिला ले। इससे दक्षिण दिशा के भाग वाला अर्धचतुरस्र बन जायेगा फिर दोनों भुजाऐं मिलकर सम्पूर्ण समान भुजाओं वाला चतुरस्र कर्ण नाप कर, सही ढंग से साधन कर ले। इससे चतुरस्र के लम्बाई और चौड़ाई का गुणावार क्षेत्रफल आता है।

उदाहरणार्थ एक हस्त २४ अंगुल प्रमाण वाला चतुरस्र की चारों भुजाएं समान होने से २४ लम्बाई ×२४ चौड़ाई = ५७६ क्षेत्रफल आयेगा। इस प्रकार से अन्य कुण्डों का भी साधन करे।

**प्रधान मन्दिर**
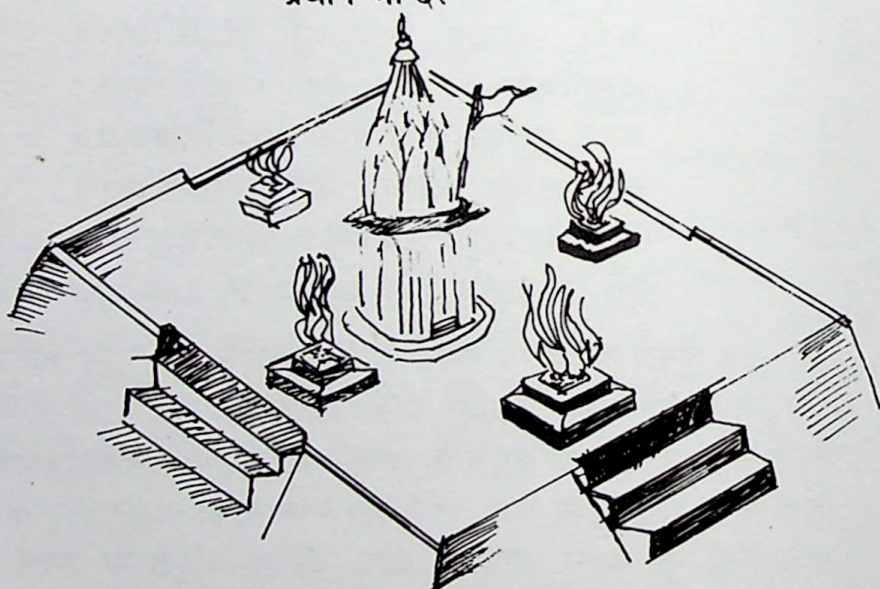
## चतुरस्र कुण्डमहिमा

चतुरस्र कुण्ड सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला, सभी जगह, सार्वकालिक प्रशस्त कुण्ड है। आचार्य कुण्ड सदैव चतुरस्र ही होगा। चतुरस्र कुण्ड में अन्य सभी प्रकार के कुण्डों का फल समाहित है। चतुरस्र कुण्ड अन्य कुण्डों के बनिस्बत सरल होता है तथा आसानी से बनता है। इसलिए इसका प्रचलन सर्वत्र देखने में आता है।

# २. योनिकुण्डम्
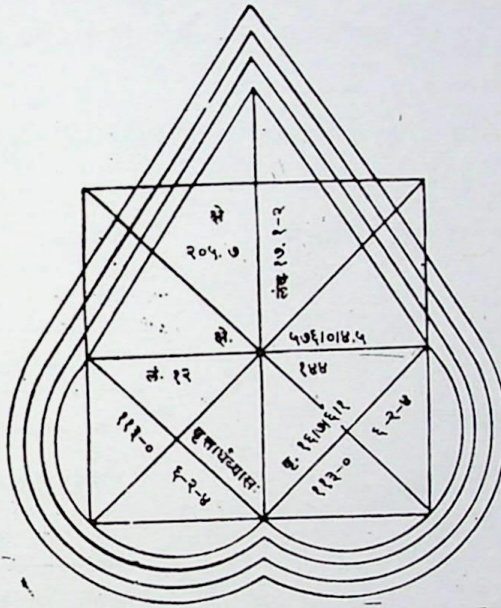
### योनिकुण्डकारिका

**अष्टाद्विंशगुलं रेखा वादीची षड्यवाधिका।**
**तन्मध्यतरतथा प्राची सूत्रयुग्मे त्रिकोणकम्।**
**अर्द्धतः श्रोणियुग्मार्द्धाबहिर्भागे वरांगकम्॥**

योनि कुण्ड के विषय में अठ्ठाईस अंगुल, छः यव उत्तर दिशा की ओर बढ़ाकर उसके मध्य १४ अंगुल ३ यव, इस प्रकार से २८ अंगुल ६ यव का सूत्र पूर्व-पश्चिम की ओर देकर दोनों तरफ कर्ण देने से त्रिकोण

बनेगा। बाहर दोनों श्रोणियों के लिए अर्धवृत्त करके सुन्दर योनि कुण्ड का निर्माण करना चाहिए।

### योनिकुण्ड साधन

हे शिष्य! अंगुल के विषय में २४ भाग कर के, उसमें से पांच भाग स्वयं के ३२ वां भाग लेकर, तत्परिमित क्षेत्र उत्तर की तरफ बढ़ाना और चतुरस्र के कर्ण का चतुर्थांश प्रमाण से व्यासार्ध से चतुरस्र के दक्षिण में, दक्षिण बिन्दु से पूर्व तक एक, दक्षिण बिन्दु से पश्चिम बिन्दु तक एक, ऐसे दो वृत्त (घेरे) बनाने और वृत्त के पूर्व-पश्चिम बिन्दु से वर्धित क्षेत्र के उत्तर बिन्दु तक दो सूत्र देने से योनिकुण्ड बन जाता है।

५ भाग के ३२ वाँ भाग ०-९-२- के सहित पांच में भाग २४ अंगुल के अर्धव्यास १२-०-०-०, ५-४-२-०।

१७-१-२ लम्ब, १२ गुणनफल से उसको बड़े त्रिकोणात्मक क्षेत्रफल २०५-७-० बनता है।

| | |
|---|---|
| छोटे त्रिकोण का क्षेत्रफल | १२-० |
| | × १२-० |
| | १४४.०० |
| बड़ा त्रिकोण | २०५-७-०-०-० |
| छोटा त्रिकोण | १४४-०-०-०-० |
| अर्धवृत्त क्षेत्रफल | ११३-०-६-२-४ |
| कुल क्षेत्रफल | ५७६-०-४-५-० |

चतुरस्र का वर्ण ३३ अंगुल, ५ यव, ७ यूका, ४ लीक्षा, चतुरस्र का अर्धकर्ण १६-७-६-१ वृत्तार्ध का व्यास इसका वर्ग २८८ हुआ। इसको ३९२९ से गुणा करने पर ५००० से भाग देने पर

२६६-१-५-० यह दो वृत्तार्ध का क्षेत्रफल हुआ।

११३-०-६-२-४ यह एक वृत्तार्ध का क्षेत्रफल हुआ इस प्रकार योनि कुण्ड का कुल क्षेत्रफल ५७६-५ हुआ।

**योनिकुण्ड फल**—योनि कुण्ड पर यज्ञ करने से यजमान को शीघ्र सन्तान की प्राप्ति होती है।

# ३. अर्धचन्द्र कुण्डम्
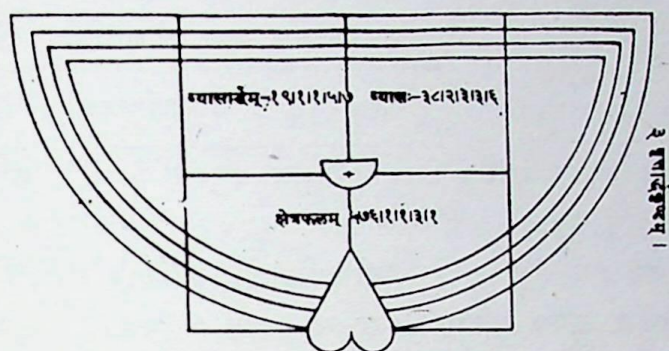
## अर्धचन्द्र कुण्डकारिका

यवार्द्धादर्धकेनैव ग्रहचंद्रांगुलेन वै।
वृत्तं कृत्वा द्विधाभक्तमर्धचंद्र भवेत्तु तम्॥

**अर्धचन्द्र कुण्ड**—१९ अंगुल, ० यव,४ यूक गोल वर्तुल करके, उसे दो भागों में विभक्त करने से अर्धचन्द्र कुण्ड बनेगा।

## अर्धचन्द्र अथवा वृत्तार्ध कुण्ड साधन

हे शिष्य! २४ अंगुल क्षेत्र में से उसका पंचमांश और पंचमांश में से शतांश बाद करके जो शेष रहे, तत्परिमित व्यासार्ध के मध्य बिन्दु क्षेत्र से दक्षिण तरफ वृत्तार्ध करके उसके अग्र में दो ज्या-रूप सूत्र देने से अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध) कुण्ड बनता है।

२४ अंगुल का पंचमांश — ४-६-३-१-५

उसका शतांश — ०-०-३-०-४

**योग** — ४-६-६-२-१

२४-०-०-०-० कुल योग में से बाद करे

हीन करे (-) ४-६-६-२-१

योग — १९-१-१-५-७ व्यासार्ध

\+ १९-१-१-५-७ व्यासार्ध

३८-२-३-३-६ पूर्ण व्यास,

इसका वर्गक्षेत्र १४६७-१-५-४-३ को ३९२९ से गुणा कर (गुणाकार ५७६१७४०) हुआ। ५००० से भाग देने पर ११५२-२-६-० वृत्त का क्षेत्रफल हुआ। उसका अर्ध ५७६-१-३-२ वृत्तार्ध अर्थात् अर्धचन्द्र का क्षेत्रफल हुआ।

**अर्धचन्द्र कुण्ड महिमा**—अर्धचन्द्र कुण्ड यजमान के मानसिक उद्वेग को संतुलित करके, उसकी मनइच्छा (मनोकामना) को पूर्ण करता है। ग्रह सम्बन्धित सभी कार्य शीघ्र पूर्ण फलदाई होते हैं।

## ४. त्रिकोणकुण्डम्
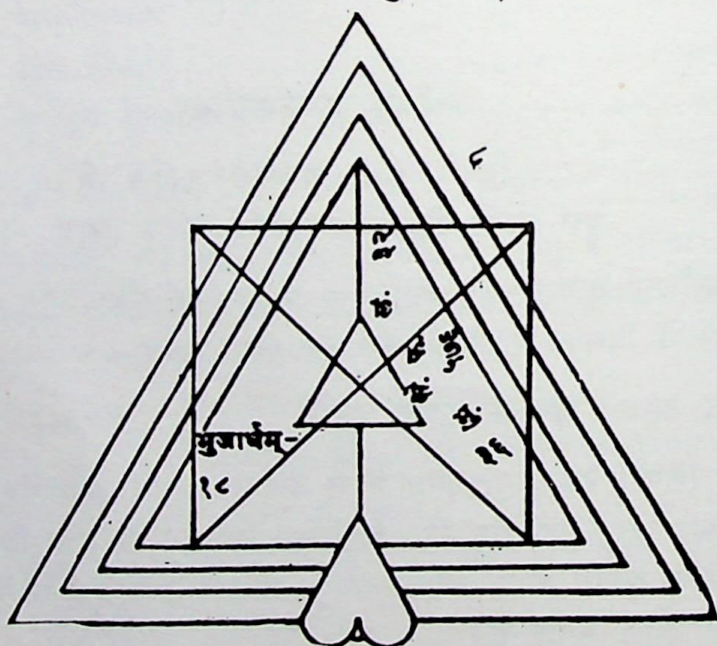
# त्रिकोण कुण्डकारिका

**चतुर्स्त्रिंशांगुला चौदक् प्राचीनमध्यतरतथा।**
**यवोना तु लिखेत्तत्र पार्श्वसूत्रो त्रिकोणकम्॥**

त्रिकोण कुण्ड बनाने के लिए ३४ अंगुल के मध्य से उत्तर-दक्षिण ३४ अंगुल बढ़ाकर एक यव कम करके ३३ अंगुल एवं ७ यव पर दोनों तरफ सूत्र देने से शत्रुनाश करने वाला सुन्दर त्रिकोण कुण्ड बनेगा।

## त्रिकोण कुण्डसाधन

२४ अंगुल के क्षेत्र का तृतीयांश आगे की ओर बढ़ाकर क्षोणि के दोनों ओर तीनों के अग्रभाग को जोड़ते हुए दो सूत्र देना। इससे त्र्यस्र (त्रिकोण) सिद्ध हो जाता है। क्षेत्र का तृतीयांश ८ अंगुल आगे बढ़ाने से लम्ब ३२ अंगुल और चतुर्थांश ६ अंगुल दोनों ओर बढ़ाने से ३६ अंगुल और १८ भुर्जार्ध होता है।

| | |
|---|---|
| लम्ब | ३२ |
| भुजा अर्ध | १८ |
| क्षेत्रफल | ५७६ |

## त्रिकोण कुण्ड महिमा

त्रिकोण कुण्ड में यज्ञ करने से शत्रु व रोगों का नाश होता है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

## यज्ञ से शत्रु-नाश

**यावती वेदिः तावती पृथ्वी-ति,**
**एतया ही मां सर्वा समविन्दन्त।**

*—शतपथ ब्राह्मण १-२/५/७*

वेद भगवान कहते हैं कि इसी प्रकार जब यजमान शत्रु-संकट के निवारणार्थ यज्ञ-वेदी का परिग्रह कर, यज्ञानुष्ठान करता है तब वह शत्रु का पराभव करता हुआ उसकी भूमि का भी स्वामी बन जाता है तथा सर्वप्रभुत्व सम्पन्न होकर शक्तिशाली हो जाता है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

# ५. वृत्तकुण्डम्
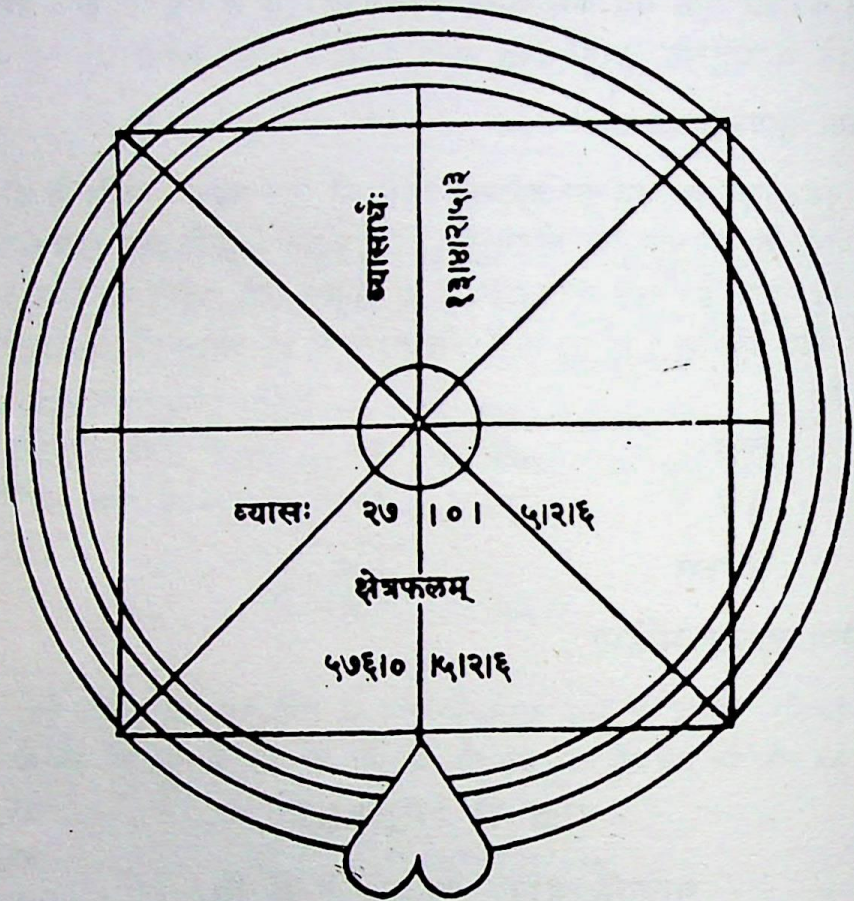
### वृत्तकुण्ड कारिका

सप्तविंशांगुलार्द्धेन सूत्रेण रचयेद्भूमिम्।

वृत्त कुण्ड के विषय में २७ अंगुल व्यास और १३ अंगुल, चार यव का व्यासार्ध करके सूत्र करने से सुन्दर वृत्त कुण्ड बन जाता है।

## वृत्तकुण्ड साधन

क्षेत्र के २४ भाग करके उसके तेरह भाग स्वयं के २४ वां भाग सहित लेकर तत्परिमित व्यासार्ध क्षेत्र के मध्य बिन्दु से वृत्त करने पर वृत्तकुण्ड हो जाता है।

| | |
|---|---|
| १३ और उसका २४ वां भाग | ०-४-२-५-३- |
| कुल | १३-४-२-५-३ व्यासार्ध हुआ |
| उसका दुगुना | २७-०-५-२-६ व्यास हुआ |
| उसका वर्ग | ७३३-४-१-० को ३९२७ से गुणा कर २८८०५१७ |
| ५००० से भाग देने पर | ५७६-०-०-६-५ |

वृत्तकुण्ड का क्षेत्रफल होगा।

**वर्तुल कुण्ड महिमा :** वर्तुल कुण्ड शान्ति कर्मों के लिए प्रशस्त कहा गया है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

## यज्ञ से वृष्टि

**अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।**
**यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥**

*–श्रीमद्भगवद्गीता ३/१४*

*प्राणियों की उत्पति अन्न से होती है और अन्न समय पर वृष्टि होने से उत्पन्न होता है। सामयिक वृष्टि यज्ञ से होती है। यज्ञ, यजमान और आचार्य के द्वारा धर्म शास्त्र विहित कर्म काण्ड के करने से होता है।*

**अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यागादित्यमुपजायते।**
**आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥**

*–मनुस्मृति ३/७६*

विधि पूर्वक यज्ञाग्नि में डाली हुई हवि भली प्रकार से सूर्य में प्रतिष्ठित होती है। तब सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से समस्त चराचर प्रजा की सृष्टि होती है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

## ६. षडस्रकुण्डम्

### षट्कोण तारा कुण्डकारिका

प्राची त्रिंशांगुला मध्ये वेदीची वरदांगुला॥
तस्याः प्रांतद्वये प्रत्यक्प्राक्च चांकं त्रिभिस्त्रिभिः।
अंकात्पार्श्वद्वये प्राच्याः सूत्रषट्के षड्स्रकम्॥

षट्कोण तारा कुण्ड बनाने के लिए पूर्व दिशा की ओर ३० और मध्य में उत्तर-दक्षिण दिशा में ३२ अंगुल डोरी लेकर, उस डोरी के दोनों और तीन-तीन भाग के बराबर चिह्न करने और दोनों तरफ ऊपर प्रमाण-चित्र के अनुसार प्रत्येक दिशाओं से छः सूत्र देने से देखने में अत्यन्त सुन्दर इस प्रकार का षट्कोण सितारा कुण्ड बन जाता है।

**षडस्र कुण्ड साधन**

२४ अंगुल के क्षेत्र से २४ का भाग करके, उसमें १८ भाग स्वयं का ७२ का भाग लेकर तत्परिमित व्यासार्ध का वृत्त (घेरा) करे। फिर प्रकार की सहायता से उत्तर बिन्दु से प्रारम्भ करके वृत्त में छः चिह्न करे तथा एक-एक चिह्न बीच में डालकर आमने-सामने चिह्न देकर ऐसे छः सूत्र देवे, फिर मध्य सन्धि के छः भुज और वृत्त निकालने से सुंदर षडस्र बन जाता है।

१८ भाग का ७२ वाँ भाग—०-२१-१८-२-० व्यासार्ध हुआ
३६-४-० पूर्ण व्यास। २७-३-० चतुर्थांश बाद करने पर (लम्ब)
०-०३६४ * १०३९२३ के गुणाकार में १२,००० का भाग देने पर
भुजा ३१-४-७ लम्ब २७-३ और भुजार्ध
१५-६-३-४ का गुणा करने पर बृहत्त्रिकोण
४३२-५-१-६ होगा।
लघुभुज १०-४-२-३, लघुलम्ब ९-१
लघुभुजार्ध ५-२-१-१ का गुणन फल ४८-०-४-६-५
लघुत्रिकोण का क्षेत्रफल १४४-१-६-३-७ और ४३२-५-१-९
का क्षेत्रफल ५७६-७-०-१-७ प्राप्त होता है।

## ७. प्रकारान्तरेण षट्कोण कुंडम्
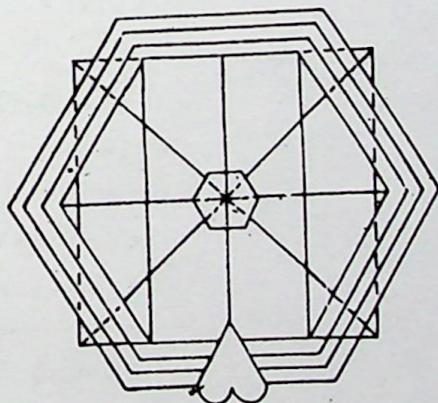
## समान भुजाओं वाला षट्कोण कुण्ड

अष्टधा विभजेत्क्षोमं मध्यसूत्रस्य पार्श्वयोः।
भागं न्यसेदेकमेकं मानेनानेन मध्यतः॥
कुर्यात्पार्श्वयुगे मत्स्यचतुष्कं तंत्र वित्तमः।
सूत्रषटंक ततो दद्यात्षडस्र कुंडमुत्तमम्॥
कामिके-षड्भागवृद्धितो मत्स्यैश्चतुर्भिः स्यात्षडस्रकम्॥
त्रिपुरासारे-पार्श्वद्वन्द्वे भूमयुगयुगं सूत्रषट्कोणपातम्।
कुर्यात् कुंडं भवति तदिदं तर्ककोणं मनोज्ञम्॥

*—शारदायां*

## अन्य प्रकार के षट्कोण का साधन

क्षेत्र के २४ भाग करके, उसमें से पन्द्रहवां भाग स्वयं रखकर १६० भाग कम कर ले। तत्परिमित व्यासार्ध का वृत करे और प्रकार यन्त्र की सहायता से उत्तर दिशा से प्रारम्भ करके वृत्त को छः चिह्न देकर, छः भुजाएं करने पर सुन्दर षडस्र प्राप्त होगा।

भुजमान १४-७-२ क्षेत्र के मध्य के दक्षिण व उत्तर तरफ रेखा, पूर्व-पश्चिम, अर्धभुज, ऊर्ध्वभुज पर्यन्तर खींचते हुए दो चतुरस्र परस्पर ऐसे मिले, पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण रेखाओं में उनका मान ७-३-५ होगा

| | | |
|---|---|---|
| अन्तर्मूल भुज | १४-७-२ | १४-७-२ अर्धव्यास |
| मध्य रेखा लम्ब | १२-७-४ | १४-७-२+ पूर्ण व्यास |
| भु. | २९-६-४ | २९-६-४ |
| भु. | १४-७-२ | |
| | | २२-२-७ लम्ब से गुणा |
| कुल | ४४-५-६ | ×१२-७-४ |
| अर्ध | २२-२-७ | २८८-३-१-५ अर्ध क्षेत्रफल |
| | | २८८-३-१-५ पूर्ण क्षेत्रफल |
| | | ५७६-६-३-२ पूर्ण क्षेत्रफल |

**षट्कोण कुण्ड फल**—षट्कोण कुण्ड यज्ञ से अभिचार, उच्चाटन एवं मारण का कार्य शीघ्र होता है।

# ८. पद्मकुण्डम्
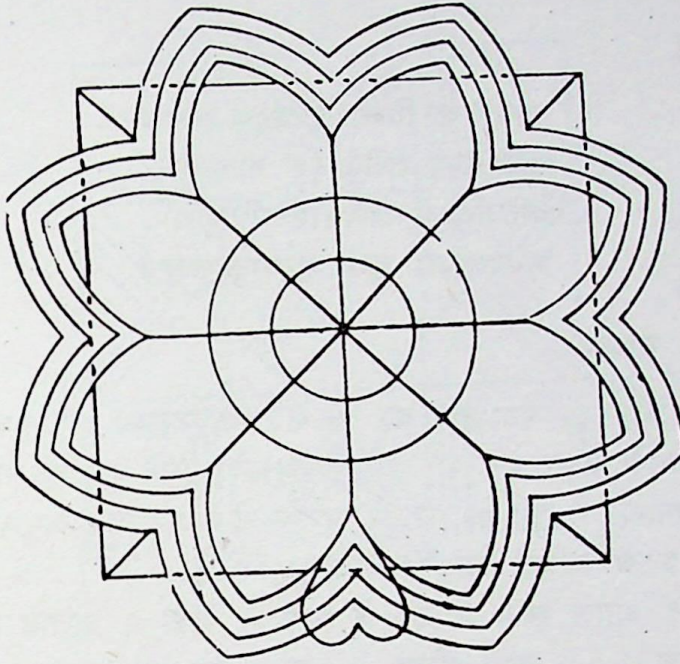
## पद्मकुण्ड कारिका

द्वादशांगुलसूत्रेण मध्यतो वृत्तमालिखेत्।
सार्द्ध पंचयवैर्युक्तं मन्वंगुलमितं बहिः॥
दिशां च विदिशां चैव वसुसूत्राणि पातयेत्।
दत्वा दलाग्रमर्यादां सूत्रेणादिभ्रमादभ्रमिम्।
कृत्वा चंद्रार्द्धभाकारान्दलांश्च वसुसंख्यकान्॥
शिष्टो बहिष्ठसंत्यागात्पद्माभं कुण्डमीदृशम्।

पद्मकुण्ड बनाने के लिए १२ अंगुल के सूत्र से पहले बीच का मध्य वर्तुल बनावे। उसके बाद बाहर १४ अंगुल, ५ यव, ४ यूका, ७ लीक्षा का दूसरा वर्तुल बनाना। फिर आठ दिशाओं में आठ बार सूत्र देवे। मध्य सूत्र

के उपर नव अंगुल शंकु देकर आठों दिशाओं में अर्ध चन्द्राकार, आठ पत्र (पत्ते) कोरने से विधि युक्त सुन्दर पद्मकुण्ड बन जायेगा। अथवा १८ अंगुल व्यास का वर्तुल देकर, बीच में शंकु देकर अर्ध चन्द्र के आठ घेरे करने से भी सुन्दर पद्मकुण्ड बन जायेगा।

अन्यत्र कहा भी है—

**पद्मकुण्डम्**

**दशांशे का विन्यस्य बाह्यें शमेकं**
**परिभ्राम्य तेनैव वृत्तं दलानाम्।**
**बहिर्मध्यमे कर्णिकाश्चापि कुर्याद्**
**भवेदष्टपत्र बुधः पद्मकुण्डम्॥**

**पद्मकुण्ड साधन**

पहले की तरह २४ भाग का जो क्षेत्र हो, उसका अष्टमांश जो वृत्त किये हो, उसके प्रथम वृत्त की कर्णिका बनाये। दूसरे वृत्त को तीन अंगुल छोड़ कर बनाना। ये वृत्त के शर १६ पत्ररूप हैं। फिर तीन अंगुल तीन वृत्त बनाए इस प्रकार प्रत्येक मिलकर पांच हुए।

फिर ३ अंगुल स्वयं के ३८ वें भाग, ५ यूका १ बालाग्र हीन करे। फिर २ अंगुल ७-५,५ यूका-लीक्षा -०- वा १ शेष रहा। इस प्रकार (कर्क) की सहायता से इस मान से पश्चिम वृत्त में १६ चिह्न करना और उसके समान विभाग वाले पांच वृत्त करे। मध्य बिन्दु पर से प्रकार (कर्कट) की सहायता से फेरने पर आठ (८) पत्र बनेंगे।

२४ अंगुल क्षेत्रफल ४५२-३-१
अंतिम वृत्त -२९-६-६-० पूर्व के क्षेत्रफल में मिलाने पर
क्षेत्रफल ६९९-४-४-५-० अंतिम क्षेत्रफल में बाद करने पर
उसका अन्तरार्ध १२३-४-६ एवं पूर्ण क्षेत्रफल ५७५-७-७ हुआ।

**पद्मकुण्ड फल**

पद्मकुण्ड सभी कुण्डों का राजा एवं प्रधान कुण्ड है जिस पर यज्ञ करने से यजमान को अनन्त ऐश्वर्य एवं लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। वैसे शत्रु के मारण व विच्छेदन कार्यों हेतु भी इस कुण्ड का प्रयोग किया जाता है।

# ९. अष्टास्त्रकुण्डम्
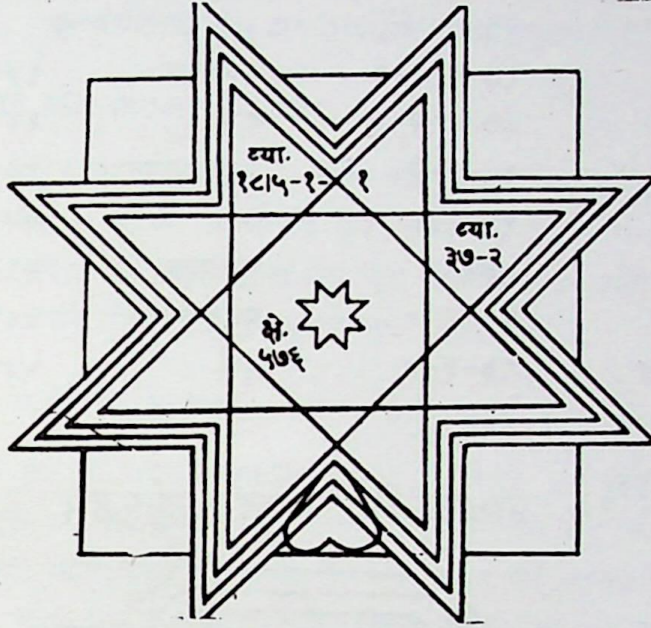
## अष्टारकुण्डकारिका

वसुनेत्रांगुले सूत्रं सपादत्रियवाधिकम्।
कृत्वा वेदास्त्रिसंसाध्यं दिग्विदिक्ष्वंतरावसु॥
अंकेषु मध्यमं हित्वा वसुसूत्राणि पातयेत्।
वसुकोणान्विशिष्यंते मार्जनाद्वसुकोणकम्।

अष्टकोण वाला अष्टार कुण्ड बनाने के लिए २८ अंगुल, ३ यव और २ यूका व्यास वाले वर्तुल करके आठों दिशाओं में अष्टकोण बनाने हेतु आठ चिह्न करके आठ सूत्र बनाने तथा एक सूत्र को चित्रानुसार दूसरे सूत्र के साथ रखकर आठ भुजाऐं बनानी। अब पहले बनाये गए वृत्त को निकाल बाहर करने से सुन्दर अष्टकोणात्मक कुण्ड शोभायमान होगा।

**अष्टकोण कुण्ड साधन**

क्षेत्र के २४ भाग कर, १८ भाग अलग कर २८ अंशों वाला एक बड़ा वृत प्रकार यन्त्र की सहायता से खींचे। अर्थात् व्यास को दूना करके दिशा-प्रतिदिशाओं के आठ चिह्न करे। आठ भुजाओं में तृण लगाकर दो चिह्न छोड़कर, तीन चिह्न बड़े आठ कोण रेखा करे तथा वृत्त को छोड़ देने से सुन्दर अष्टकोण बन जाता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| व्यासार्ध | १८-५-१-१ | मध्यान्तर | १४-२-२ |
| व्यास | ३७-२-२-२ | कर्ण | १४-२-२ |
| भुजा | १४-२-२ | भुजलघुमान | १०-१-० |
| लम्ब | १०-१-० | रेखा | ३४-३-५-४ |
| खात | १४४-३ | भुजफल | ४९२-३-० |
| कोणक्षेत्रफल | ५०-२-० | पूर्वक्षेत्रफल | ३८९-७-० |
| पूर्णकोण फल | ९३-१-४ | पूर्ण | ५७६-२-० |
| दुगुने | १८६-३-० | | |

## १०. प्रकारान्तरेण अष्टार कुण्डम्
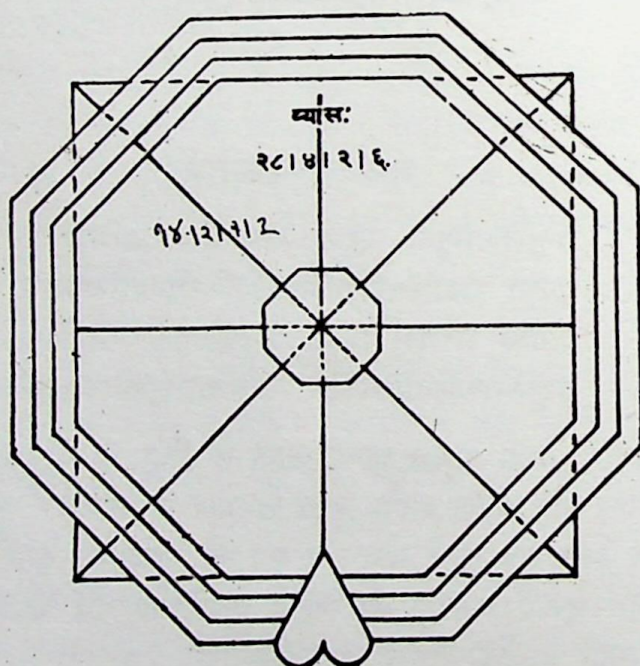
## अन्य प्रकार का अष्टार कुण्ड

जिनांशेऽतः सूत्रे वसुयुगमितैरंगुलवरैः
रसैश्चैकांशाशैः सहितमपि वृत्तं विरचयेत्॥
दिगशैरेकस्याप्य घृतिलवैः सप्तदशभि-
र्गुणैरष्टाभिस्तच्छमर हितमष्टास्रि कथितम्॥
कुण्ड कल्पद्रुमें तु अष्टप्रकारेण अष्टास्रिकुण्डम्॥

### अन्य प्रकार का अष्टकोण साधन

२४ अंगुल के क्षेत्र का २५ भाग करे अथवा १४ अंगुल इसके ४७ वे भाग–२ यव, ० लीक्षा ४ बालाग्र हुए। तथा १४ अंगुल जोड़ने से सुन्दर वृत्त बनाकर प्रकार की सहायता से एक वृत्त बनाकर दिशा–प्रतिदिशा में आठ भुज रेखाएं बनाने से अष्टकोण कुण्ड बन जाता है।

### खात और कण्ठ के लक्षण

कुण्ड क्षेत्र के बराबर खात कहा गया है अर्थात् २४ अंगुल के कुण्ड में २४ अंगुल की खात होती है। विद्वान् लोग मेखला को छोड़कर कुण्ड क्षेत्र के बराबर खात करने को कहते हैं अर्थात् खात की गहराई मेखला युक्त नहीं होती। कुछ विद्वान् मेखला सहित खात की गणना भी करते हैं।

### मेखला लक्षण

एक मेखला अधम, दो मेखला मध्यम, और तीन मेखलाएं उत्तम कही गई हैं।

नाभियोनि समायुक्तं, कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्॥
कुण्डं द्विमेखलं मध्यं, नीचं स्यादेकमेखलम्॥

*–क्रियासारे*

# श्रीयज्ञम्; श्रीविद्या का हवनात्मक प्रयोग

*—पं. रामेश्वर व्यास*

यज्ञ संसार का श्रेष्ठतम कर्म माना गया है, क्योंकि केवल मात्र यही एक पवित्र कर्म है जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करता है तथा जिसके माध्यम से साधारण-से-साधारण मनुष्य भी परम पद को, ब्रह्मतत्त्व को, इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेता है।

**प्राचीन शास्त्रों में लिखा है कि शूद्र सेवा-कार्य व कृषि से, वैश्य व्यापार से, क्षत्रिय शौर्य से एवं ब्राह्मण यज्ञादि कर्म से धन का उपार्जन करे।** समय तेज गति से बदलता चला गया, उसके साथ ही परम्पराओं की पवित्र शृंखलायें टूटती चली गईं। आचार्य श्री द्विवेदी ने यज्ञ की परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए एवं यज्ञ के द्वारा अधिक-से-अधिक लोक-कल्याण के साथ-साथ मनुष्य में पवित्र संस्कारों को प्रतिष्ठापित करने के लिए यज्ञ की शृंखलाओं को प्रारम्भ करने का निश्चय किया है और प्रस्तुत पुस्तक यज्ञ शृंखला की प्रथम कड़ी है।

यज्ञ भी अनेक प्रकार के होते हैं। पुत्र कामेष्टि यज्ञ, रुद्र-याग, विष्णु-याग, गायत्री महायज्ञ वगैरह-वगैरह। विष्णु महायज्ञ, अतिरुद्र यज्ञ, गायत्री महायज्ञों के आयोजन तो समय-समय पर होते रहते हैं। पर इन सबके बीच हम एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यज्ञ को भूलते चले गये। जिस यज्ञ के प्रभाव से भारत सोने की चिड़िया कहलाता था, जिस यज्ञ के प्रभाव से पूर्वाचार्यों ने सुवर्ण के आवलों की वर्षा की, ब्रह्मचारी कौत्स ने आकाश से अनगिनत स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की।

ज्योतिष गणना के अनुसार वर्तमान में कलियुग चल रहा है। कलियुग अर्थ प्रधान माना गया। आज हर मानव अर्थाभाव से पीड़ित है। बड़े-बड़े व्यापारी आकण्ठ कर्ज में डूबे हुए हैं। गरीब और गरीब होता चला जा रहा है, मध्यम वर्ग नई-नई वस्तुओं की खरीददारी एवं अपना स्तर बनाये रखने के चक्कर में धन की कमी को निरन्तर महसूस करता चला आ रहा है। ऐसे युग में लोगों को आवश्यकता है धन की। शास्त्रकारों ने कहा है—जिसके पास धन है वही कुलीन है, वही श्रेष्ठ और गुणी है, विद्वान् है।

समाज में उसी की प्रतिष्ठा होती है, जिसके पास विपुल सम्पति होती है। **धन प्राप्ति के लिए शास्त्रों में 'महालक्ष्मी यज्ञ' का वर्णन मिलता है। वैदिक परम्परा में सर्वजनहिताय, सर्व जन सुखाय श्रीयज्ञ के अनुष्ठान मिलते हैं।**

**महाभारत काल में युधिष्ठिर ने श्रीयज्ञ किया था। भगवान श्रीकृष्ण ने उस यज्ञ में अतिथियों के भोजन की झूठी पत्तलें उठाने का कार्य बड़ी निष्ठा व सेवा से किया। उसी यज्ञ प्रसाद की झूठन में एक नेवला लौटने लगा था। यज्ञ प्रसादों की झूठन के संसर्ग से उसका आधा शरीर स्वर्ण का हो गया। इस प्रसिद्ध कथा को सभी लोग जानते हैं। यज्ञ-स्थली की सेवा से, ब्राह्मणों की कृपा से, भगवान श्रीकृष्ण तीनों लोकों के स्वामी हो गये। वे स्वयं कहते हैं कि ब्राह्मणों की कृपा से ही मैं लक्ष्मीपति एवं तीनों लोकों का स्वामी हुआ।**

**विप्रप्रसादत् धरणीधरोऽहम्**
**विप्रप्रसादत् कमलावरोऽहम्**

श्री यज्ञम् के प्रभाव से रावण जैसे महाबलशाली योद्धा सुवर्णमय लंका के स्वामी हो गये। फलतः धन का अधिष्ठाता देव कुबेर स्वयं रावण का दास हो गया।

आचार्य कौत्स ने श्रीयज्ञम् के द्वारा लक्ष्मी का आह्वान किया फलतः १४ करोड़ स्वर्ण मुद्रा की आकाश से वर्षा हुई। आचार्य शंकर ने एक ब्राह्मणी की निरन्न अवस्था को देखकर करुणा विगलित स्वर से श्री का आह्वान किया। भगवती श्री त्रिभुवन मोहित स्वरूप में प्रकट हुईं और स्वर्णमय आंवलों की वर्षा की। श्री विद्या के चमत्कार अनिवर्चनीय हैं।

कलियुग अर्थप्रधान कहा गया है। इसमें सभी को लक्ष्मी की आवश्यकता है। अर्थ बिना सब व्यर्थ है। इन दिनों गायत्री यज्ञ, विष्णु यज्ञ, रुद्र यज्ञ, सोमयज्ञ, शतचण्डी जैसे यज्ञों की चर्चा तो सुनाई दी पर पिछले एक हजार वर्ष के अन्तराल में श्री यज्ञम् हुआ हो, ऐसे प्रमाण इतिहास के पृष्ठों में झांकने पर भी नहीं मिलते। श्री विद्या अति गोपनीय व दुर्लभ है। इसके आचार्य अब दिखलाई नहीं देते। आजकल जो यज्ञकर्ता आचार्यगण हैं, उनको भी इस सूक्ष्म विवेचना का ज्ञान नहीं है, परम्परागत यज्ञ करते हैं पर अति दुर्लभ व गोपनीय श्री विद्या की दीक्षा न होने से इनका ज्ञान सबको सुलभ नहीं क्योंकि यह अत्यन्त गूढ़ विद्या रही है।

गुरुजनों ने अपने शिष्य को एवं पिता ने अपने पुत्र को यह विद्या नहीं दी। फलतः श्री विद्या भारत से लुप्त प्राय होती चली गई। यह पहला अवसर है कि श्री विद्या के निष्णात् आचार्य, दैवज्ञ शिरोमणि, वेदमूर्ति सर्व श्री पं. भोजराज द्विवेदी ने श्रीयज्ञम् करने का संकल्प हाथ में लिया एवं पहली बार राजस्थान की भूमि पर ऐसा सार्वजनिक यज्ञ हुआ, जिसमें यजमानों को समुचित धन देने हेतु धन की अधिष्ठात्री देवी श्री का आह्वान किया गया। लोग चमत्कृत रह गये जब पूर्णहुति के समय स्वयं इन्द्र ने उपस्थित होकर यज्ञ-स्थली पर हलकी-हलकी वर्षा कि बौछारें की एवं शीतल सुगन्धित वायु का प्रसारण कर, देवमय वातावरण सृजित किया।

श्री यज्ञम् की व्यूह रचना आगे चित्र द्वारा समझायी गई है। इसमें एक से लेकर ८८ तक चतुष्कोणीय कुण्ड हैं। पूर्ण दिशा के सभी कुण्ड अश्व कहलाते हैं। उत्तर-दक्षिण के बलदायक कुण्ड हैं। ये श्रीयज्ञम् के चार रथ-चक्र हैं। इसके मध्य में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में क्रमशः अर्धचन्द्र, वृत्तकुण्ड, पद्मकुण्ड एवं योनिकुण्ड—ये चार महाकुण्ड कहलाते हैं।

## चतुष्कोणीय-कुण्ड

चतुष्कोणीय कुण्ड सर्वसिद्धि प्रदाता सार्वजनिक कुण्ड है। यह चमसाकार होता है तथा इसकी चारों भुजाएं बराबर होती हैं। यह कुण्ड तीन मेखलाओं से आबद्ध होता है।

**यह यजमान की मनोवांछित एक सिद्धि ( सफलता ) को अवश्य देता है। कुण्ड संख्या १ से ८८ तक के सभी चतुष्कोणीय हैं। चतुष्कोणीय कुण्ड चारों दिशाओं में विजयप्रद एवं भिन्न-भिन्न संकल्पित मनोकामनाओं को सिद्ध करने वाले, धन-ऐश्वर्य प्रदाता कुण्ड हैं।**

## अष्टदल-कुण्ड

चारों दिशाओं में चारों महाकुण्डों के पास पुष्प जैसी आकृति वाले कुल २४ कुण्ड हैं। पूर्व दिशा में कुण्ड संख्या ६,१८,२८,३० पश्चिम में ५०,६१,७२,८३, दक्षिण में ९२, से ९९, तक एवं उत्तर में १०० से १०७ तक के सभी कुण्ड अष्टदल या अष्टकोणीय कुण्ड कहलाते हैं। ये कुण्ड अष्टलक्ष्मी एवं अष्टसिद्धि को देने वाले कहे गये हैं।

श्रीयज्ञम् की व्यूह रचना
श्रीयज्ञम्
श्रीयज्ञम्
१०८ कुण्डीय
पूर्व East
आग्नेय
परिक्रमा
ग्रंथ संचालन
नवग्रह पीठ
V.I.P.
श्री पीठम्
परिक्रमा
दक्षिण South
उत्तर North
प्रवेश
पश्चिम West
दर्शक दीर्घा
वास्तु पीठ
वायव्य
नैऋत्य

## अर्द्धचन्द्र-कुण्ड

श्रीयज्ञम् के पूर्व दिशा में 'अर्द्धचन्द्र कुण्ड' है जिसकी कुण्ड संख्या ९१ है। अर्द्धचन्द्र कुण्ड शत्रुओं का नाश करता है। जिनको लक्ष्मी के साथ शत्रु-नाश की भावना है वे इस कुण्ड पर बैठेंगे। यह कुण्ड विघ्न-बाधाओं का भी नाश करता है। काल सर्प दोष की निवृत्ति, मुकद्दमे में विजय, कन्याओं के विवाह में बाधा दूर करने हेतु, इच्छित वर प्राप्ति हेतु इस कुण्ड पर बैठकर यजन करना चाहिए।

## वृत्त-कुण्ड

अर्द्धचन्द्र कुण्ड में ठीक सामने पश्चिम द्वार पर वृत्त कुण्ड संख्या ८९ है। यह कुण्ड यश प्रदाता है। इस पर बैठने वाले को समाज में, कुटुम्ब में, राजनीति एवं व्यापार में यश की प्राप्ति होती है। जिन्हें लक्ष्मी के साथ-साथ निर्मल यश की कामना है, वे कुण्ड पर बैठेंगे। यह कुण्ड राज्यलक्ष्मी, नेता पद के चुनाव में सफलता देने वाला प्रतिष्ठावर्धक है। विद्या में सफलता, नौकरी की प्राप्ति एवं वाहन-भूमि की प्राप्ति हेतु यह कुण्ड सफलतादायक है।

## योनि-कुण्ड

यज्ञशाला के दक्षिण भाग में कुण्ड संख्या ९० योनि कुण्ड के नाम से विख्यात है। जिनको सन्तान की कामना है वे इस कुण्ड पर यजन करेंगे। जन्म-पत्री में जिनके सन्तान-बाधा योग, सन्तानहीन योग पड़ा है अथवा अनेक डॉक्टरी इलाज के बाद भी जिन्हें सन्तान नहीं हुई अथवा जिनके केवल कन्या सन्तान ही है, पुत्र नहीं, वे लोग इस कुण्ड पर बैठेंगे। उन्हें विशिष्ट प्रकार की मन्त्र औषधि युक्त खीर का प्रसाद दिया जायेगा। यह कुण्ड लक्ष्मी के साथ-साथ सन्तति को देने वाला है।

## पद्म-कुण्ड

यज्ञशाला की उत्तर दिशा में प्रधान कुण्ड संख्या १०८ है। इसे ही पद्मकुण्ड कहा जाता है। क्योंकि उत्तर दिशा में कुबेर का वास है। पद्मकुण्ड कमल

के आकार का होता है। पद्म लक्ष्मी का निवास स्थान कहा गया है। जिनके तीव्र लक्ष्मी की कामना है और जो प्रधान यजमान की कीर्ति, यश व पुण्य को प्राप्त करना चाहते हैं, वे पद्मकुण्ड पर बैठेंगे। यह प्रधान कुण्ड चारों कुण्डों की सिद्धि को देने वाला सर्वश्रेष्ठ फलदाता है।

## श्रीपीठ—

यज्ञशाला के बीचोबीच १६ हाथ चमचौरस **श्रीपीठ** होती है जिसपर् अक्षत् एवं विभिन्न धान्यों से श्रीयन्त्र का निर्माण होता है। इस पवित्र पीठ के चारों ओर १०८ पवित्र कलश रखे जायेंगे। श्रीपीठे सुरपूजिते। श्रीपीठ देवताओं को भी वन्दनीय है, वे भी श्री वृद्धि हेतु इसकी परिक्रमा करते हैं। श्रीपीठ के इर्द-गिर्द तीन फुट का परिक्रमा स्थल रखा जाता है। साधारण मानव यदि श्रीपीठ को १०८ परिक्रमा कर दे, तो उसकी समस्त प्रकार की दरिद्रता नष्ट हो जाती है—ऐसा शास्त्र वचन है। सर्वतोभद्र पीठ, द्वादश लिंगतो भद्रपीठ तो लोगों ने बहुत देखी होगी पर धान्यों से निर्मित श्रीपीठ को लोग पहली बार देखेंगे। इस पीठ में दरिद्रता नष्ट करने की पूर्ण सामर्थ्य होती है। जैसे-जैसे व्यक्ति परिक्रमा करता है, वैसे-वैसे उसके पाप नष्ट होकर पुण्य का उदय होता है एवं ऐश्वर्य श्री की वृद्धि होती है।

ऋग्वेद में श्रीसूक्त के हवनात्मक प्रयोग का विधान है। जिसके यजन से मनुष्य मनोवांछित धन, ऐश्वर्य एवं वैभव का स्वामी हो जाता है। इन ऋचाओं के माध्यम से श्रीयन्त्र को यदि प्राण-प्रतिष्ठित करके गृहस्थ के घर में स्थापित किया जाये तथा गृह-स्वामी, धूप-दीप-नैवेद्य से इसका नित्य पूजन करे तो लक्ष्मी उस घर में स्थाई निवास कर जाती है। परन्तु दुःख की बात यह है कि गत एक शताब्दी से ऐसे वैदिक अनुष्ठानों का सार्वजनिक प्रयोग नहीं हुआ। इसके फलस्वरूप श्रीविद्या भारत में लुप्तप्राय होती चली गई। विज्ञ ब्राह्मणों ने भी इस दुलर्भ दिव्य-विद्या को अति गोपनीय बनाये रखा।

यह हमारे लिए बड़ी प्रसन्नता एवं सौभाग्य की बात है कि श्रीमाली कुल-कमल-दिवाकर, याज्ञिक-कर्म कोविद् सर्वश्री **पं. भोजराज द्विवेदी** ने हमें वेदोक्त इस श्रीयज्ञ को करने एवं समझाने की स्वीकृति प्रदान की है।

आचार्यश्री का कहना है कि सभी वर्णों को धन कमाने का समान अधिकार

है, अतः जात-पात के बन्धन से मुक्त होकर, सभी वर्णों के लोग इस यज्ञ में भाग ले सकते हैं। केवल यज्ञाधिकारी होने के संस्कार सभी को लेने होंगे।

श्रीयज्ञम् करने के एक वर्ष के भीतर-भीतर यजमान एवं यज्ञ में भाग लेनेवाले सभी सज्जनों का अगला वर्ष वैभव, सुख-सम्पन्नता, ऐश्वर्य एवं धन से परिपूर्ण हो जाता है। शास्त्रकारों के अनुसार तीन माह के भीतर-भीतर इस यज्ञ का अनुकूल प्रभाव यज्ञकर्ता की आर्थिक स्थिति का कायाकल्प करेगा फिर भी एक वर्ष के अन्त तक आप स्वयं अपना आत्म-निरीक्षण करेंगे तो पायेंगे कि निश्चित रूप से आपकी आय में, स्थाई सम्पत्ति में वृद्धि हुई है।

यह नक्शा 'श्रीयज्ञम्' का है यह महायज्ञ १ जनवरी, १९९२ को **दैवज्ञ शिरोमणि पं. भोजराज द्विवेदी** के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ था। जिससे राजस्थान सरकार के गृहमन्त्री श्री ललितकिशोर चतुर्वेदी के साथ अनेक राज्य-मन्त्रियों ने भाग लिया था। श्रीयज्ञ के पूर्वदिशा में 'अर्धचन्द्र' कुण्ड संख्या ९१ है। लक्ष्मी के साथ-साथ जिनको शत्रुनाश की भावना थी वे साधक इस कुण्ड पर बैठे थे। इसके ठीक सामने पश्चिम द्वार पर वृत्तकुण्ड संख्या ८१ है। जिन्हें लक्ष्मी के साथ निर्मल यश की कामना थी वे इस कुण्ड पर बैठे थे। उत्तर दिशा की तरफ कुबेर का वास था, वहां पद्मकुण्ड (प्रधान कुण्ड) संख्या १०८ है इस पर प्रधान यजमान बैठे। पद्मकुण्ड के दोनों और चार-चार अष्टकोणीय कुण्ड थे। इस प्रकार के कुल २४ अष्टकोणीय कुण्ड थे। ये कुण्ड अष्टलक्ष्मी एवं अष्ट सिद्धि को देने वाले हैं। इस प्रकार दक्षिण दिशा में योनि कुण्ड संख्या ९० है, जिनको सन्तान की कामना थी। वे इस कुण्ड पर बैठे थे। बाकी कुण्ड संख्या १ से लेकर ८८ तक साधारण चौकोर कुण्ड हैं।

इन सबके बीच बीच १६ हाथ चमचौरस 'श्रीपीठ' स्थापित है जिस पर अक्षत एवं विभिन्न धान्यों से श्रीयन्त्र बनता है। इस पीठ के चारों ओर १०८ कलश रखे जायेंगे। जिसके बाहर ३ फुट का परिक्रमा-स्थल रखा गया है। **'श्री पीठंसुरे पूजिते'** श्रीपीठ देवताओं को भी वन्दनीय है, वे भी इसकी परिक्रमा करते हैं। साधारण मानव यदि श्रीपीठ की १०८ परिक्रमा कर दे तो उसकी समस्त प्रकार की दरिद्रता नष्ट हो जाती है—ऐसा शास्त्र वचन है।

मंच संचालन पर प्रधान आचार्य गण बैठे थे। नवग्रह पीठ पर अनिष्ट निवारण हेतु नवग्रहों का पूजन, २८ नक्षत्रों का पूजन, ग्रह-देवता एवं उनके अधि देवताओं का पूजन होगा, जिससे साधक को नवग्रह शान्ति का लाभ भी मिलेगा। आग्नेय कोण में मातृका पीठ स्थापित होगी, जिससे षोडश मातृकाओं का आह्वान व पूजन किया जायेगा। यहीं पर कुल देवता, कुल देवी, पितृश्वरों का पूजन होगा। १०८ कुण्ड की परिधि के बाहर ४ फुट की बृहत् परिक्रमा भी रखी गई है। जो लोग १०८ कुण्ड में प्रज्वलित अग्नियों सहित श्रीपीठ एवं चार महाकुण्डों एवं समस्त पीठों सहित यज्ञ की प्रदक्षिणा करना चाहते हैं वे इस यज्ञ की बृहत् परिक्रमा करेंगे। श्री लक्ष्मीजी का जाप करते हुए यदि १०८ बार सम्पूर्ण यज्ञ की परिक्रमा की जाये तो उसे अनन्त गुणित फल मिलता है। उसके सभी पाप नष्ट होकर, उसे अक्षय धन की प्राप्ति होती है। कई साधक अपने भाग्य के अनुसार अनुकूल कुण्ड संख्या का चयन भी करते हैं। चमत्कार इस श्रीयज्ञ का ये हुआ की सभी साधकों को अपनी-अपनी इच्छानुसार फल मिला। परन्तु सबसे विचित्र बात यह हुई कि अठारह नि:सन्तान जोड़े बैठे थे। उन सभी को एक वर्ष के भीतर-भीतर **'पुत्र रत्न'** की प्राप्ति हुई।

## लक्ष्मी कहां रहती है? और कहां नहीं रहती?

**कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।**
**सूर्योदये अस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥**

अर्थात् जिसके वस्त्र तथा दांत गन्दे हैं, जो बहुत खाता तथा निष्ठुर भाषण करता है, जो सूर्योदय एवं सूर्यास्त काल में भी सोया रहता है, वह चाहे चक्रपाणि साक्षात विष्णु ही क्यों न हो, उसका लक्ष्मी परित्याग कर देती है।

**परान्नं परवस्त्रं च परयानं परस्त्रियः।**
**परवेश्मविवासश्च शक्रस्यऽपि श्रियं हरेत्॥**

पराया अन्न, दूसरे का वस्त्र, पराया यान (सवारी), परायी स्त्री और परगृहवास— ये इन्द्र की श्री- सम्पत्ति को भी हरण कर लेते हैं।

*—बृहद्देवज्ञरञ्जन, १६८॥*

एक बार असुरराज भक्त प्रह्लाद ने एक ब्राह्मण को अपना शील दान कर दिया। उसके कारण लक्ष्मी ने उन्हें तत्काल छोड़ दिया। तत्पश्चात् अनेक प्रकार से प्रार्थना करने पर करुणामयी लक्ष्मी ने साक्षात् दर्शन देकर उपदेश किया कि—"हे प्रह्लाद! तेज, धर्म, सत्य, व्रत, बल एवं शील आदि मानवी गुणों में मेरा निवास है। इन गुणों में शील तथा चारित्र्य मुझे सबसे अधिक प्रिय है। इस कारण मैं सच्छील व्यक्ति के यहां रहना सबसे अधिक पसन्द करती हूं।"

*—महाभारत, शान्तिपर्व/श्लोक १२४।*

दानवीर दैत्यराज बलि ने एक बार उच्छिष्ट भक्षण कर ब्राह्मणों का विरोध किया। श्री ने उसी समय बलि का घर छोड़ दिया। लक्ष्मीजी ने कहा—'चोरी', दुर्वासना, अपवित्रता एवं अशान्ति से मैं अत्यधिक घृणा करती हूं। इसी कारण आज मैं राजा बलि का त्याग कर रही हूं। भले ही वह मेरा अत्यन्त प्रिय भक्त रहा है।

*—महाभारत, शान्तिपर्व/श्लोक २२५।*

इसी प्रकार लक्ष्मीजी रुक्मिणी जी से कहती हैं कि—"हे सखी! निर्लज्ज, कलहप्रिय, निन्दाप्रिय, अशान्त एवं असावधान लोगों का मैं अतीव तिरस्कार करती हूं, तथा इनमें से एक भी दुर्गुण व्याप्त होने पर मैं उस व्यक्ति का सदैव त्याग कर देती हूं।"

## श्रीपीठ की स्थापना

विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों, रूप तप-तपस्या व साधनाओं को सम्पन्न करने हेतु हमने जोधपुर में एक 'श्रीपीठ' की स्थापना की है जहां सभी प्रकार के धर्म सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की मूर्तियों की स्थापना सर्वधर्म सद्भाव की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए की जायेगी।

इस पवित्र स्थान पर प्रत्येक वर्ष शुभ मुहूर्त में १०८ कुण्डीय 'श्रीयज्ञ' किया जाता है। सभी प्रकार के दुर्योगों, दरिद्रता व अभिचार कर्मों को नष्ट करने में श्रीयज्ञ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह एक विशेष प्रकार का यज्ञ है जो व्यक्ति के जीवन में संपन्नता, ऐश्वर्य, धन, यश एवं आयुष्य को बढ़ाता है। श्रीयज्ञ पापों का क्षय करके पुण्य में

वृद्धि करता है जिसका अनुकूल प्रभाव व्यक्ति के तीन माह के भीतर-भीतर अपने जीवन में स्पष्टतः दिखलाई दे जाता है। १ जनवरी, १८९२ को ऐसा ही महायज्ञ किया था, अनेक साधक यज्ञ के चमत्कारी प्रभाव से अभिभूत हो गये। उनके पुरजोर आग्रह से फिर एक बार २३ अक्टूबर, १८९२ को धनत्रयोदशी के शुभमुहूर्त में १०८ कुण्डीय श्रीयज्ञ पुनः सम्पन्न किया गया। गोपनीय मन्त्रदीक्षा के साथ दुर्लभ यन्त्र भी साधकों को उपलब्ध कराये जाते हैं।

धर्मप्राण जनता के विशेष आग्रह पर हम सभी प्रकार के यन्त्रों, ताबीजों, अंगूठियों व रक्षाकवचों का निर्माण शुभमुहूर्त में करते हैं। विभिन्न रत्न व राशि-रत्नों, भाग्यवर्द्धक अंगूठियों की प्राण-प्रतिष्ठा भी विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा करवाई जाती है। यन्त्रों, राशि रत्नों, एक मुखी रुद्राक्ष से लेकर सभी प्रकार के रुद्राक्ष, रुद्राक्ष मालाएं स्फटिक मालाएं, हत्थाजोड़ी एवं सभी प्रकार की असली तान्त्रिक वस्तुओं का सूचीपत्र हमारे कार्यालय से निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।

शादी-विवाह, यज्ञोपवीत, पूजा-पाठ, हवन, ग्रह-शान्ति, मन्त्र-जाप, मुहूर्त एवं विशेष प्रकार के अभिषेक हेतु पंडित वर्ग उपलब्ध रहते हैं। आपकी प्रार्थना व प्रोग्राम के अनुसार उन्हें एडवांस बुक किया जा सकता है।

भारतीय सनातन धर्म से 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मूलमन्त्र से विश्वशान्ति, विश्वकल्याण, एवं जन-जन को धर्मलाभ एवं आध्यात्मिक सन्तुष्टि प्रदान करने हेतु एक महान योजना हमने हाथ में ली है। इस योजना के प्रथम चरण में दशमहाविद्या मन्दिर, नवग्रह मन्दिर, हिन्दू, जैन, सिक्ख, सिन्धी, ईसाई व मुस्लिम सभी धर्म के चमत्कारी देवी-देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित की जाएंगी। यहां नक्षत्र-वृक्ष, हवनीय वृक्ष व दिव्य औषधियों को भी मन्त्रों द्वारा अभिसिंचित व पुष्टित करने की योजना है। इस पवित्र स्थान पर तप-तपस्या, पूजा-पाठ व साधना करने हेतु कोई भी सदस्य पूर्व सूचना व आज्ञा लेकर ठहर सकता है। इस संस्था के संस्थापक, संरक्षक व आजीवन सदस्य बनाये जा रहे हैं। प्रत्येक नवरात्रि को यहां विभिन्न कार्यक्रम व धार्मिक अनुष्ठान होते हैं। किसी भी प्रकार की सहायता व सुझाव हेतु आप सीधे आचार्यश्री से मिल सकते हैं।

## प्रस्तावित योजना

हमने सर्वधर्म सद्भाव सेवा ट्रस्ट की स्थापना की है जिसे आयकर विभाग की धारा ८० के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है। इस जगह को सभी धर्म-सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार पूर्ण चमत्कारी, सिद्ध एवं सुरम्य बनाने हेतु हमने पांच चरणों में पूरी होने वाली एक कल्याणकारी योजना हाथ में ली है जो इस प्रकार है।

### प्रस्थावित योजना का प्रथम चरण

१. चमत्कारी हनुमान मूर्ति
२. सिद्ध गणेश मूर्ति
३. कलियुगी अवतार बाबा की मूर्ति
४. नारकोड़ भैरोजी की मूर्ति स्थापना
५. अन्न क्षेत्र की स्थापना करना श्री
६. रामदेव जी की मूर्ति

### प्रस्तावित योजना का द्वितीय चरण

१. ग्रहराज सूर्य (सूर्य यन्त्र)
२. तारापति चन्द्र (चन्द्र यन्त्र)
३. भूमिपुत्र मंगल (मंगल यन्त्र)
४. चन्द्रसुत बुध (बुध यन्त्र)
५. देवगुरु बृहस्पति (गुरु यन्त्र)
६. दैत्याचार्य शुक्र (शुक्र यन्त्र)
७. कालजयी शनिश्चर (शनि यन्त्र)
८. कालसर्प राहु (राहु यन्त्र)
९. कीर्तिपुत्र केतु (केतु यन्त्र)

### प्रस्तावित योजना का तृतीय चरण
### नव दुर्गाजी की मूर्तियां

१. माता शैलपुत्री
२. माता ब्रह्मचारिणी
३. माता चन्द्रघण्टा
४. माता कूष्माण्डा
५. माता स्कन्द माता
६. माता कात्यायनी
७. माता कालरात्रि
८. माता महागौरी
९. माता सिद्धिदात्री
१०. चन्द्रमौलीश्वर ज्योतिर्मय शिवलिंग एवं परिवार

## प्रस्तावित योजना का चतुर्थ चरण
## दस महाविद्या की मूर्तियां एवं तन्त्रपीठ

१. काली (काली यन्त्र)
२. तारा (तारा यन्त्र)
३. षोड्शी त्रिपुर सुन्दरी (षोडशी यन्त्र)
४. भुवनेश्वरी (भुवनेश्वरी यन्त्र)
५. छिन्नमस्तका (छिन्नमस्तका यन्त्र)
६. त्रिपुरा भैरवी (भैरवी यन्त्र)
७. धूमावती (धूमावती यन्त्र)
८. मातंगी (मातंगी यन्त्र)
९. कमला (कमला यन्त्र)
१०. बगलामुखी (बगला यन्त्र)
११. कमलकुण्ड सरोवर (पंवित्र स्नान हेतु)

## प्रस्तावित योजना का पंचम चरण

१. श्री सत्यनारायण भगवान की मूर्ति (वैष्णव समाज)
२. श्री जाम्बाजी की मूर्ति (विश्नोई समाज)
३. श्री झूलेलाल जी की मूर्ति
४. श्री महावीर स्वामी की मूर्ति (जैन समाज)
५. श्री घण्टाकर्ण महावीर (जैन समाज)
६. श्री बुद्ध भगवान की मूर्ति (बौद्ध समाज)
७. श्री महाकवि माघ की मूर्ति (श्रीमाली समाज)
८. श्री वराहमिहिराचार्य की मूर्ति (ज्योतिष सभा)
९. श्री महर्षि श्री गर्गाचार्य की मूर्ति (गर्ग समाज)
१०. उत्कीर्ण मेरुपृष्ठीय श्रीयन्त्र (श्री समाज)
११. भगवान् श्री राम एवं परिवार (राम स्नेही समाज)

# श्रीयज्ञ और श्रीसूक्त

श्रीयज्ञम् में ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त के षडङ्ग न्यास व ध्यान पूर्वक श्रीसूक्त के षोडश मन्त्रों की आहुति लगती है। श्रीसूक्त का हवन शुद्ध गोघृत अथवा मावे की मिठाई, पंचमेवा की शाकल्य से होता है। प्रबुद्ध पाठकों की सुविधा हेतु श्रीसूक्त अर्थसहित यहां दिया जा रहा है। जो सज्जन संस्कृत का शुद्ध उच्चारण न कर सकें वे इसका पाठ हिन्दी में भी कर सकते हैं। इसका विनियोग इस प्रकार है।

**विनियोग—**

हिरण्यवर्णामिति पञ्चशर्चस्य श्रीसूक्तस्य आनन्द-कर्दमचिक्लीतेन्दिरासुता ऋषयः, आद्यानां तिसृणामनुष्टुपछन्दः चतुर्थ्याः प्रस्तारपंक्तिः छन्दः न्यासे पाठे (हवने) च विनियोगः।

सङ्कल्पः–देशकालौ सङ्कीर्त्य मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य नित्यकल्याणप्राप्त्यर्थम् अलक्ष्मीविनाशपूर्वक मनोऽभिलषित विपुललक्ष्मीप्राप्त्यर्थ सर्वदा मम गृहे लक्ष्मीनिवासार्थ च श्रीमहालक्ष्मीदिव्या प्रीत्यर्थ श्रीसूक्तस्य पाठं (हवनं) अहं करिष्ये।

## ऋग्वेदोक्तं श्रीसूक्तम्

**ॐ हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।**
**चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १॥**

हे (यज्ञ से प्रकट) जातवेदा अग्निदेव! आप बीते हुए सभी वृत्तान्तों को जाननेवाले तथा किञ्चित् हरितवर्णवाली तथा हरिणी रूपधारिणी सुवर्णमिश्रित रजत की माला धारण करनेवाली, चांदी के समान श्वेत पुष्पों की माला धारण करनेवाली, चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान तथा चन्द्रमा की तरह संसार को प्रसन्न करनेवाली या चञ्चल हिरण्य के समान रूपवाली या हिरण्यमय ही जिसका शरीर है, ऐसे गुणों से युक्त लक्ष्मी को मेरे लिए बुलाओ॥ १॥

**तां म आ व ह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।**
**यस्यां हिरण्यं विन्दयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ २॥**

हे यज्ञ से उत्पन्न अग्निदेव! आप उन जगत् प्रसिद्धि स्थाई सुख को देने वाली लक्ष्मी जी को मेरे लिए बुलाओ, जिनके आवाहन करने पर मैं सुवर्ण, गौ, अश्व (उत्तम वाहन) और पुत्र-पौत्रादि को प्राप्त करूं॥ २॥

**अश्वपूर्वा रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।**
**श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ ३॥**

जिस देवी के आगे घोड़े और मध्य में रथ है अथवा जिसके सम्मुख घोड़े रथ में जुते हुए हैं, ऐसे रथ में बैठी हुई, हाथियों के निनाद से संसार

को प्रफुल्लित करनेवाली देदीप्यमान एवं समस्त जगत के प्राणियों को आश्रय देनेवाली लक्ष्मी को मैं अपने सम्मुख बुलाता हूं। दीप्यमान तथा सबकी आश्रयदाता वह लक्ष्मी मेरे घर में सर्वदा निवास करे॥ ३॥

**कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामाद्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।**
**पद्म स्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ४॥**

जिसका चंचल स्वरूप वाणी और मन का विषय न होने के कारण अवर्णनीय है तथा जो मन्दहास्ययुक्ता है, जो चारों ओर सुवर्ण कान्ति से ओत-प्रोत है एवं दया से द्रवित हृदयवाली या समुद्र से प्रादुर्भूत होने के कारण आर्द्र शरीर होती हुई भी देदीप्यमान है। स्वयं पूर्णकाम होने के कारण भक्तों के नाना प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाली, कमल के ऊपर विराजमान, कमल के सदृश गृह में निवास करने वाली संसार प्रसिद्ध लक्ष्मी को मैं स्थाई निवास हेतु अपने पास बुलाता हूं॥ ४॥

**चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।**
**तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीमें नश्यतां त्वां वृणे॥ ५॥**

चन्द्रमा के समान प्रकाशवाली, उत्तम कान्तिवाली, अपनी कीर्ति से देदीप्यमान, स्वर्ग-लोक में इन्द्रादिक देवों से पूजित, अत्यन्त दानशीला, कमल के मध्य में रहनेवाली, सभी की रक्षा करनेवाली एवं आश्रयदात्री, जगद्विख्यात, उस लक्ष्मी को मैं प्राप्त करना चाहता हूं। हे लक्ष्मी! आपकी कृपा से मेरी दरिद्रता नष्ट हो। अतः मैं आपकी महत्ता को स्वीकार करता हूं अर्थात् आपका आश्रय लेता हूं॥ ५॥

**आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।**
**तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥ ६॥**

हे सूर्य के समान कान्तिवाली! आपके तेजोमय प्रकाश से बिना पुष्प के फल देनेवाला एक वृक्ष-विशेष उत्पन्न हुआ। तदन्तर आपके हाथ से बिल्व का वृक्ष उत्पन्न हुआ। उस बिल्व वृक्ष का फल मेरे बाह्य और आभ्यन्तर की दरिद्रता को नष्ट करे॥ ६॥

**उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।**
**प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥ ७॥**

हे लक्ष्मी! देवसुख अर्थात् श्री महादेव के सखा इन्द्र, कुबेरादि देवताओं का ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हो। मैं नित्य अग्निदेव (यज्ञ) की उपासना करूं। मणि के साथ अर्थात् चिन्तामणि के साथ या कुबेर के मित्र मणिभद्र के साथ या रत्नों के साथ, कीर्ति अर्थात् दक्षकन्या कुबेर जैसा धन व यश मुझे प्राप्त हो। मैं इस भारत राष्ट्र में उत्पन्न हुआ अतः हे कुबेर! आप यश और ऐश्वर्य मुझे प्रदान करें॥ ७॥

**क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।**
**अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ ८॥**

भूख तथा प्यास रूप मल को धारण करनेवाली एवं लक्ष्मी की ज्येष्ठ भगिनी (बहन) दरिद्रता का मैं नाश करता हूं अर्थात् दूर करता हूं। हे लक्ष्मी! आप मेरे घर से अनन्त ऐश्वर्य तथा धनवृद्धि के प्रतिबन्धक (बाधक तत्त्वों) विघ्नों को दूर करें॥ ८॥

**गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।**
**ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ९॥**

सुगन्धित पुष्पों के समर्पण करने से प्राप्त करने योग्य, किसी से भी न दबने योग्य अतुल पराक्रम वाली, धन-धान्य से सर्वदा पूर्ण करने वाली, गौ-अश्वादि पशुओं की समृद्धि देनेवाली, समस्त प्राणियों की स्वामिनी तथा संसार-प्रसिद्ध लक्ष्मी को, मैं अपने घर में आदर पूर्वक आमन्त्रित करता हूं॥ ९॥

**मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।**
**पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥ १०॥**

हे लक्ष्मी! मैं आपके प्रभाव से मानसिक इच्छा एवं संकल्प, वाणी की सत्यता, गौ आदि पशुओं के रूप (अर्थात् दुग्ध-दध्यादि एवं यव-ब्रीह्यादि), अन्नों के रूप (अर्थात् भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य-चतुर्विध भोज्य पदार्थ) को प्राप्त करूं। सम्पत्ति और यश मुझमें आश्रय लें अर्थात् मैं लक्ष्मीवान् एवं कीर्तिवान् बनूं॥ १०॥

**कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।**
**श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥ ११॥**

'कर्दम' नामक, ऋषि-पुत्र से लक्ष्मी प्रकृष्ट पुत्रवाली हुई हैं। हे कर्दम! तुम मुझ में अच्छी प्रकार से निवास करो अर्थात् कर्दम ऋषि की कृपा होने पर लक्ष्मी को मेरे यहां रहना ही होगा। हे कर्दम! मेरे घर में लक्ष्मी निवास करे, केवल इतनी ही प्रार्थना नहीं है, अपितु कमल की माला धारण करनेवाली सम्पूर्ण संसार की माता स्वरूप लक्ष्मी जी को मेरे वंश में निवास कराओ॥ ११॥

**आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।**
**नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥ १२॥**

समुद्रमन्थन द्वारा चौदह रत्नों के साथ लक्ष्मी का भी आविर्भाव हुआ है। इसी अभिप्राय से कहा गया है कि वरुण देवता स्निग्ध अर्थात् मनोहर पदार्थों को उत्पन्न करें। (पदार्थों में सुन्दरता ही लक्ष्मी है। लक्ष्मी के आनन्द, कर्दम, चिक्लीत और श्रीत—ये चार पुत्र हैं। इनमें 'चिक्लीत' से प्रार्थना की गई है कि) हे चिक्लीत नामक लक्ष्मीपुत्र! तुम मेरे गृह में निवास करो। केवल तुम ही नहीं, अपितु दिव्यगुणयुक्ता तथा सर्वाश्रयभूता अपनी माता लक्ष्मी जी को भी मेरे घर में निवास कराओ॥ १२॥

**आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।**
**चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥ १३॥**

हे अग्निदेव! तुम मेरे घर में पुष्करिणी अर्थात् दिग्गजों (हाथियों) के शुण्डाग्र से अभिषिंच्यमाना (आर्द्र शरीरवाली), पुष्टि को देनेवाली अथवा पुष्टिरूपा रक्त और पीतवर्णवाली, कमल की माला धारण करनेवाली, अपनी दिव्य कान्ति से संसार को प्रकाशित करनेवाली प्रकाशस्वरूपा लक्ष्मी को बुलाओ॥ १३॥

**आर्द्रं यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।**
**सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥ १४॥**

हे अग्निदेव! तुम मेरे घर में भक्तों पर सदा दयार्द्रचित्त अथवा समस्त भुवन जिसकी याचना करते हैं, दुष्टों को दण्ड देनेवाली अथवा यष्टिवत् अवलम्बनीया (सारांश यह है कि—जिस प्रकार लकड़ी के बिना असमर्थ पुरुष चल नहीं सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी के बिना संसार का कोई भी कार्य नहीं चल सकता), सुन्दर वर्णवाली एवं सुवर्ण की मालावाली, सूर्य के अभाव

तेजस्वी (अर्थात् जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश और वृष्टि द्वारा जगत का पालन-पोषण करता है उसी प्रकार लक्ष्मी, ज्ञान और धन के द्वारा संसार का पालन-पोषण करती है) प्रकाशस्वरूपा लक्ष्मी जी को बुलाओ॥ १४॥

**तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।**
**यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥ १५॥**

हे अग्निदेव! तुम मेरे यहां उस जगद्विख्यात लक्ष्मीजी को, जो मुझे छोड़कर अन्यत्र न जानेवाली हों, उन्हें बुलाओ। जिस लक्ष्मी जी के द्वारा मैं सुवर्ण, उत्तम ऐश्वर्य, गौ, दासी, घोड़े (उत्तम वाहन) और पुत्र-पौत्रादि को प्राप्त करूं अर्थात् स्थिर लक्ष्मीजी को प्राप्त करूं॥ १५॥

**यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।**
**सूक्तं पञ्चदशर्चञ्च श्रीकामः सततं जपेत्॥ १६॥**

जो मनुष्य उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना करता हो, वह पवित्र और सावधान होकर प्रतिदिन अग्नि में गोघृत का हवन और साथ ही श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओं का प्रतिदिन पाठ करें॥ १६॥

## लक्ष्मी-सूक्त

**पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे, पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।**
**विश्वप्रिये विश्वमनोऽनुकूले, त्वत्पादपद्मंमयि सन्निधत्स्व॥ १॥**

हे विश्व की प्यारी लक्ष्मीजी! आप पद्मानना हैं, पद्मिनि हैं, पद्मवाहिनी हैं, पद्मप्रिया हैं, पद्मदल सदृश आपके नयन हैं। आप विश्व की प्यारी और विश्वम्भर के मनोनुकूल हैं। आपके चरण कमल मेरे हृदय में सदा विराजित रहें।

**पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षी पद्मसम्भवे।**
**तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्॥ २॥**

हे पद्मानने! लक्ष्मी देवी! आपका श्रीमुख पद्म के समान सुन्दर, कान्तियुक्त है, ऊरु पद्म समान तथा नेत्र भी पद्म सदृश हैं, आप पद्म से पैदा हुई हैं। अतः हे पद्माक्षि! मेरे ऊपर दया दृष्टि कीजिए जिससे मैं सुख को प्राप्त होऊं।

**अश्वदायै गोदायै धनदायै महाधने।**
**धनं मे जुष तां देवि सर्वान्मामांश्च देहि मे॥ ३॥**

हे महाधने लक्ष्मी मां! आप घोड़ा (उत्तम वाहन) गौ और सब प्रकार के धन देने में समर्थ हो। देवि! मुझे धन दीजिए और मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण कीजिए।

**पुत्र-पौत्र-धनं-धान्यं हस्त्यश्वादिगवेरथम्।**
**प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे॥ ४॥**

हे भगवती! आप सब प्रजा की माता हो। मेरे यहां पुत्र, पौत्र, धन-धान्य, हाथी-घोड़ा, गौ-बैल, रथ (उत्तम वाहन) आदि सदा परिपूर्ण रहें और मुझे (स्वस्थ शरीर के साथ) दीर्घायु वाला बना दें।

**धनमग्नि धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसु।**
**धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तु मे॥ ५॥**

अग्नि धन है अर्थात् यज्ञ से धन मिलता है। वायु धन है, सूर्य धन है, जल धन है, इन्द्र धन है, बृहस्पति (उत्तम सलाह) धन है, वरुण धन है, ये सब मुझे प्राप्त होवें। अर्थात् इन दिव्य शक्तियों के द्वारा मुझे धन मिले।

**वैनतेय सोमं पिंब सोमं पिबतु वृत्रहा।**
**सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः॥ ६॥**

गरुड़जी सोम पान करें, वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र भी सोमपान करें। ये सोमपायी मुझे सोमयुक्त (दिव्य औषधियों के सिंचित) धन प्रदान करे।

**न क्रोधो न च मात्सर्य न लोभो नाशुभामतिः।**
**भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां सूक्त जापिनाम्॥ ७॥**

जो सज्जन इस श्रीसूक्त का पाठ करेंगे, वे निश्चय ही पुण्यात्मा होंगे। उनकी क्रोध, मत्सरता, लोभ तथा पाप कर्मों में मति नहीं होगी।

**सरसिजनिलये सरोजहस्ते, धवलतरांशुक गन्धमाल्यशोभे।**
**भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे, त्रिभुवनभूतिकरी प्रसीद मह्यम्॥ ८॥**

हे भगवती हरिवल्लभे लक्ष्मी माता! कमल आपका निवास-स्थान है,

आप कर में कमल लिए रहती हो। आप अति स्वच्छं धवल वस्त्र, चन्दन और माला धारण किये रहती हो। आप सबके मन की बातें जानती हो, त्रिभुवन की सम्पदा देने वाली हो। मेरे ऊपर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए।

**विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।**
**लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥ ९॥**

जो माता लक्ष्मी देवी विष्णु की पत्नी हैं, क्षमा स्वरूपा हैं, माधव भगवान् की प्यारी हैं, सबकी सुहृदा हैं, उन अच्युत वल्लभा को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूं।

**महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि।**
**तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥ १०॥**

मैं उन महादेवी लक्ष्मी जी की अनन्त महिमा को जानता हूं, उस विष्णु भगवान् की पत्नी का ध्यान करता हूं, वे लक्ष्मीजी हमें धर्म (शुभ) कार्यों में प्रेरित करें, हम पर दया दृष्टि रखें।

**चन्द्रप्रभां लक्ष्मीमैशानीं सूर्याभांलक्ष्मीमैश्वरीम्॥**
**चन्द् सूर्याग्निसंकाशां श्रियं देवीमुपास्महे॥ ११॥**

जो चन्द्र प्रभा के सदृश हैं, जो शंकर की लक्ष्मी हैं, जो सूर्य के सदृश प्रकाशवती हैं, हम ऐसी उन भगवती लक्ष्मी देवी की उपासना करते हैं, जो सूर्य, चन्द्र और अग्नि के सदृश अक्षय व दिव्य प्रकाशवाली हैं।

**श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्य, माभिधाच्छोभमानं महीयते।**
**धान्यं धनं पशुं वहु पुत्रलाभम्, शतसंवत्सरं दीर्घमायुः॥ १२॥**

इस लक्ष्मी सूक्त का नित्य पाठ करने वाला भक्त श्री, तेज, आयु, आरोग्य को धारण करता हुआ अनन्त ऐश्वर्य व शोभा को प्राप्त करता है। वह व्यक्ति धन, धान्य, पशु और बहु पुत्र प्राप्त करके सौ वर्ष की दीर्घायु को प्राप्त करता है।

## श्रीयज्ञम् का ब्रह्मास्त्र 'श्रीयन्त्र'

अनन्त ऐश्वर्य व लक्ष्मी प्राप्ति के लिए 'श्रीविद्या' व श्रीयन्त्र का महत्त्व सर्वाधिक है। श्री विद्या 'शताक्षरी परमा विद्या' के नाम से जानी जाती है।

श्री विद्या ही ललिता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बाला, पञ्चदशी और षोडशी इत्यादि नामों से विख्यात है। प्रसिद्ध दश महाविद्याओं में 'षोडशी' विद्या 'श्रीविद्या' का ही परिणित स्वरूप है। इसके मूलमन्त्र में केवल सौ अक्षर ही होते हैं। जिसके निरन्तर आवृति में **'श्री कामः शततं जपेत्'** तत्काल सिद्धि मिलती है। श्रीमाली ब्राह्मणों के पास यह विद्या कुलपरम्परा (परिपाटी) से प्राप्त होती रही है। सभी श्रीमाली ब्राह्मणों के घर में कुलदेवी के रूप में आद्या शक्ति श्री स्वरूप भगवती महालक्ष्मी की ही उपासना होती है, यही कारण है कि श्री विद्या के निष्णात उपासक व पण्डित कालान्तर में श्रीमाली ब्राह्मण के नाम से पहचाने जाने लगे।

प्रातःस्मरणीय पूज्य पिताश्री हमें श्री विद्या के अनेक रोचक संस्मरण सुनाया करते थे। उन्होंने बताया कि सौराष्ट्र के प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर के भूगर्भ में स्वर्ण शिलाओं पर श्रीयन्त्र उत्कीर्ण थे। जिनकी गुप्त रूप से श्रीमाली ब्राह्मणों द्वारा नित्य राजोपचार पूजा की जाती थी। यही कारण था कि वहां अतुल सम्पत्ति की नित्य वर्षा होती थी। अरबों-खरबों के रत्न तो केवल मन्दिर के स्तम्भों में ही जड़ित थे। इस मन्दिर की प्रशंसा व वैभव से आकृष्ट होकर मोहम्मद गजनवी इसे लूट कर ले गया तथा स्वर्ण के लालच में श्रीयन्त्रों को भी खण्ड-खण्ड करके अपने साथ ले गया। तब से यह मन्दिर 'श्रीयन्त्र' विहीन है। दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान जब मैं तिरुपति बालाजी पहुंचा तो मैंने पाया कि वहां के मुख्य विग्रह के पीठ में श्रीयन्त्र उत्कीर्ण है, जिसका अभी भी विधि-विधान से नित्य पूजन होता है। यह मन्दिर अब सरकार के अधीन है फिर भी वहां की मासिक आय लाखों-करोड़ों में आज भी प्राप्त है।

सामान्यतः 'श्री' शब्द श्रेष्ठता व पूज्यता का द्योतक है। श्रेष्ठ पुरुषों के नामों के पहले 'श्री' शब्द का प्रयोग किया जाता है। श्रेष्ठत्व के तारतम्य के अनुसार, ३, ४, ५, ६ बार तक 'श्री' शब्द प्रयोग के लिए शात्र में प्रमाण पाये जाते हैं। प्रधान पीठाधिपति या सम्प्रदाय विशेष के आचार्यों के नामों के आगे या पीछे १००८ बार तक श्री शब्द का प्रयोग होना पाया जाता है। व्यवहार में श्री शब्द का लक्ष्मी अर्थ ही प्रसिद्ध है परन्तु हरितायनसंहिता, ब्रह्माण्डपुराणोत्तरखण्ड आदि पुराण इतिहासों में वर्णित कथाओं के अनुसार 'श्री' शब्द का मुख्यार्थ महात्रिपुरसुन्दरी ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें ही 'श्री'

शब्द से ख्याति प्राप्त करने का भी एक वरदान उनको मिला है, तब से 'श्री' शब्द का अर्थ लक्ष्मी होने लगा। वैसे **'श्री इति ऐश्वर्यम्'** से श्री का स्पष्ट अर्थ ऐश्वर्य, वैभव व सम्पन्नता से किया जाने लगा।

## श्रीविद्या की विशेषता

श्रीविद्या सात्त्विक उपासनाओं में सर्वोपरि एवं श्रुतियों में अभिषिञ्चित श्रेष्ठ साधना है। विभिन्न देवताओं की आराधना करने से पशु, पुत्र, धन-धान्य आदि लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

श्री विद्या के उपासकों को लौकिक फल तो मिलते ही हैं साथ में आत्म ज्ञान व परम तत्त्व की प्राप्ति, भोग तथा अपवर्ग दोनों की प्राप्ति होती है। कहा है—

**''यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो, यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।**
**श्रीसुन्दरी सेवनतत्पराणां, भोगश्च मोक्षश्च कारस्थ एव''॥**

जहां पर भोग वहां मोक्ष नहीं, जहां पर मोक्ष है वहां भोग नहीं हो सकते परन्तु श्री महालक्ष्मी की सेवा से भोग व मोक्ष दोनों ही सहज में प्राप्त हो जाते हैं। श्री विद्या की उपासना का प्रबल माध्यम श्रीयन्त्र है। जिसकी उपासना पद्धति तन्त्रों की आधारभूत पद्धति है। त्रिपुरोपनिषद् में कादि-हादि विद्याओं के नाम से इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। परमकारुणिक शंकरावतार भगवत्पाद श्रीमच्छङ्कराचार्य की लेखनी से प्रादुर्भूत, 'सौन्दर्य-लहरी' व 'प्रपञ्चसार' इस विद्या की शुद्ध सात्त्विकी का सर्वोपरि प्रमाण है।

यह विद्या गुरुगम्य है। बिना गुरु-कृपा के श्रीयन्त्र फल नहीं देते। श्रीमच्छङ्कराचार्य को इस विद्या की दीक्षा योगीन्द्र श्री गोविन्दपादाचार्य से मिली थी। श्री गोविन्दपादाचार्य को इस विद्या की दीक्षा श्री गौडपादाचार्य के गुरु परमाचार्य भगवान् श्री दत्तात्रेय स्वयं ने दी। इस प्रकार से इस विद्या की अति प्राचीन गुरु परम्पराएं सर्व प्रसिद्ध हैं। 'सुन्दरीतापनीय' में कहा है—जैसे घट, कलश और कुम्भ, ये तीनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं, वैसे ही यन्त्र, देवता और गुरु, ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थ के वाचक हैं।

## श्रीयन्त्र की महिमा

श्रीयन्त्र का विषय अत्यन्त गहन है। तान्त्रिक साहित्य में अकेले श्रीयन्त्र पर जितना लिखा गया है उतना किसी पर नहीं। 'रुद्रयामलतन्त्र' नामक ग्रन्थ में इसका मन्त्रोद्धार इस प्रकार दिया गया है।

**बिन्दुत्रिकोण वसुकोणदशारयुग्मं, मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।**
**वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च, श्री चक्रराजमुदितं परदेवतायाः॥**

अर्थात् इस श्री यन्त्र के नौ चक्र (आवरण पूजा एवं बनावट दोनों ही दृष्टि से) इस प्रकार हैं। १. बिन्दु, २. त्रिकोण, ३. वसु (आठ) त्रिकोणों का समूह, ४. (दशार युग्मं) दस त्रिकोणों का समूह, ५. दस त्रिकोणों का (दूसरा) समूह, ६. (मन्वस्र) चौदह त्रिकोणों का समूह, ७. (नागदल) आठ दलों वाला कमल, ८. सोलह दलों वाला कमल एवं तीन वलय ९. भूपुर अर्थात् तीन परकोटे।

श्रीयन्त्र पूजन की दक्षिण-मार्ग तथा वाम-मार्ग विधियों का वर्णन 'त्रिपुरतापिनी' और त्रिपुरा उपनिषदों में मिलता है। जो बीजाक्षरों से युक्त होता है वह 'श्रीयन्त्र' एवं जो बीजाक्षरों से रहित होता है वह 'श्रीचक्र' कहलाता है। श्रीयन्त्र का आर्तभाव से श्रद्धापूर्वक नियमित पूजन करने व दर्शन करने में बहुतों को धन-सम्पति प्राप्त होती हुई, प्रत्यक्ष देखी व सुनी गई है।

जो लोग आवरण पूजाओं को स्वयं करने में समर्थ हों, वे लोग बीजमन्त्रों से युक्त 'श्रीयन्त्र' काम लें। शास्त्रकारों के अनुसार लक्ष्मी का निवास स्वर्ण व रजत में होता है अतः सुवर्ण व रजत पत्रों पर निर्मित 'श्रीयन्त्र' ज्यादा प्रभावशाली होते हैं। धातु निर्मित श्रीयन्त्रों में पुनः प्रतिष्ठा व अभिषेक की सुविधा रहती है। यदि तीन धातु (स्वर्ण, रजत व ताम्र) से मिश्रित अंगूठी बनाकर उस पर 'श्रीयन्त्र' निर्मित किया जाये तो ज्यादा प्रभावशाली रहता है। हमारे कार्यालय ने इस प्रकार की अंगूठियां बनाकर अनेक लोगों पर प्रयोग किये जो कि सर्वाधिक सफल रहे। पर अनुभव से यह देखने में आया कि अंगूठी के बनिस्बत गले की चैन या लॉकेट में पहने गये यन्त्र ज्यादा प्रभावशाली रहते हैं क्योंकि उनमें पवित्रता स्थाई रूप से बनी रहती है। भोजपत्र पर अष्टगन्ध से श्रीयन्त्र बनाकर यदि बटुए (पर्स) में रखा जाये तो बटुआ रुपयों से भरा

रहता है, धन की बरकत होती है। यह अनुभूत है। यामलतन्त्र में इस श्रीयन्त्र के दर्शन मात्र का बड़ा भारी फल लिखा है। यथा—

**महाषोडदानानि कृत्वा यल्लभते फलम्,**
**तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्री चक्रदर्शनम्॥**
**सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमश्नुते,**
**लभते तत्फलं भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्॥**

## श्रीयन्त्र का मूलमन्त्र

जिज्ञासु पाठकों के अनेक पत्रं प्रतिमाह प्राप्त होते हैं कि श्रीयन्त्र पर जपने के लिए सूक्ष्मतर व सटीक चमत्कारी मन्त्र कौन-सा है? हम प्रबुद्ध पाठकों के लाभार्थ यह दुर्लभ मन्त्र यहां दे रहे हैं—**''ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रीमहालम्क्ष्यै नमः।''**

### चौबीस अक्षरों का महालक्ष्मी मन्त्र—

**''ॐ श्री कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं ॐ महालक्ष्मै नमः''**

सुगन्धित धूप, सुगन्धित पुष्प, या चमेली के इत्र को चढ़ा कर उपर्युक्त मन्त्रों का श्रीयन्त्र के सामने, एकाग्रचित से १८, २७, ४५ या १०८ बार पढ़ने से अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। पर ध्यान रहे, यह मन्त्र श्रीविद्या के उपासक सिद्ध गुरुमुख से ही ग्रहण करना चाहिए, तभी फल देता है।

# कनकधारा यन्त्र सम्पूर्ण प्रयोग

कनकधारा स्तोत्र व यन्त्र दुर्लभ परन्तु लक्ष्मी प्राप्ति के लिए रामबाण प्रयोग है तथा अपने-आपमें अचूक, स्वयं सिद्ध, ऐश्वर्य प्रदान करने में सर्वथा समर्थ है। इस यन्त्र का उपयोग दरिद्रता का नाश करता है। यह स्वर्ण वर्षा करने वाला कहा गया है। रंक को राजा बनाने की सामर्थ्य इसमें है। निकम्मा व गरीब व्यक्ति एकाएक धनोपार्जन करने लगता है। यह अद्‌भुत यन्त्र तुरन्त फलदायी है परन्तु इसकी प्राण-प्रतिष्ठा उतनी ही दुर्लभ व दुःसाध्य है। जटिल प्रक्रिया के कारण बहुत कम लोग इसे सिद्ध कर पाते हैं। सिद्ध होने पर यह यन्त्र व्यापार-वृद्धि, दारिद्र्य नाश करने व ऐश्वर्य प्रदान करने में आश्चर्यजनक रूप से काम करता है।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'शंकर दिग्वजय' के चौथे सर्ग में इस घटना का उल्लेख है। एक बार भगवत्पाद आचार्य शंकर भिक्षाटन के लिए निकले तथा घूमते-घूमते एक सद्गृहस्थ के द्वार पर अचानक अलख जगाई 'भिक्षां देहि'। संयोग से वह एक विद्वान्, विनम्र किन्तु अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण का घर था। अपने द्वार पर एक अत्यन्त तेजस्वी अतिथि को देखकर, संकोच के मारे घर की स्वामिनी लाज में गड़ गई क्योंकि भिक्षा में देने के लिए घर में एक दाना तक नहीं था। संकल्प-विकल्प में उलझी अतिथि प्रिय, पतिव्रता स्त्री को अपने दुर्दिन को देखकर रोना आ गया तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से घर के कोने में पड़े कुछ सूखे आंवलों को लेकर, अत्यन्त संकोच के साथ दिव्य तपस्वी को भेंट करने लगी। साक्षात् शंकर के रूप में विचरण करने वाले, औढर वरदानी को अबला नारी की दीनावस्था पर तरस आ गया। करुणासागर आचार्यपाद का हृदय दया व करुणा से भर आया और तत्काल ऐश्वर्य व सुख की अधिष्ठात्री, करुणामयी वात्सल्यमयी, विष्णुपत्नी, मातेश्वरी महालक्ष्मी को सम्बोधित करते हुए, कोमलकान्त व करुणायुक्त पद्यावली से एक स्तोत्र की रचना की। कनकधारा नामक उस स्तोत्र की अनायास रचना से, भगवती लक्ष्मी अपने त्रिभुवन मोहन स्वरूप में आचार्यश्री के सम्मुख प्रकट हो गईं तथा अत्यन्त मधुर व कोमलवाणी में विस्मय से पूछा— आचार्यप्रवर! अकारण मेरा स्मरण किसलिए? आचार्य शंकर ने ब्राह्मण परिवार की दरिद्र अवस्था को लक्षित करते हुए, उसे सम्पन्न, सबल एवं धनवान बनाने की प्रार्थना की। भगवती लक्ष्मी ने प्रत्युत्तर दिया— 'इस गृहस्थ के पूर्व जन्म में अर्जित पाप के कारण, इस जन्म में इसका लक्ष्मी-सम्पन्न होना सम्भव नहीं है, इसके प्रारब्ध में धन ही नहीं है। आचार्य शंकर ने करुणाविगलित कण्ठ से कहा—'क्या मुझ जैसे याचक के द्वारा इस स्तोत्र-पाठ के बाद भी सम्भव नहीं'? भगवती लक्ष्मी तत्काल अर्न्तध्यान हो गईं। इतिहास साक्षी है कि उसी समय उस दरिद्र ब्राह्मण के आंगन में सोने के आंवलों की वर्षा हुई। ब्राह्मण का दुर्दैव नष्ट हुआ। कनक की वर्षा होने के कारण, इस स्तोत्र का नाम 'कनकधारा स्तोत्र' के नाम से कालान्तर में विश्व प्रसिद्ध हो गया।

## कनकधारा स्तोत्र

वन्दे वन्दारु-मन्दार-मिन्दिरानन्द कन्दलम्।
अमन्दानन्द-सन्दोह बन्धुरं सिन्धुराननम्॥

अंङ्गं हरेः पुलकभूषणामाश्रयन्ती
भृगांगनेव मुकूलाभरणां तमालम्।
अंङ्गीकृता-ऽखिल-विभूतिरपाङ्गलीला
मांगल्यदाऽस्तु मम मंगलदेवतायाः॥ १॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः
प्रेमत्रपा-प्रणिहितानि गताऽऽगतानि।
माला-दृशो र्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागर-सम्भवायाः॥ २॥

विश्वामरेन्द्र-पदविभ्रम दानदक्ष
मानन्द-हेतुरधिक मुर-विद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्ध-
मिन्दीवरोदर-सहोदरमिन्दिरायाः॥ ३॥

आमीलिताक्ष-मधिगम्य मुदा-मुकुन्द-
मानन्द कन्दमनिमेष मनङ्ग तन्त्रम्।
आकेकर स्थित कनीनिक वक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजंग शयाङ्गनायाः॥ ४॥

बाह्वन्तरे मुरचितः श्रितकौस्तुभे या
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः॥ ५॥

कालाम्बुदालि-ललितोरसि कैटभारे-
धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव।
मातुः समस्तगजतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गव-नन्दनायाः॥ ६॥

प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत् प्रभावात्
मांगल्यभाजि मधु-माथिनी मन्मथेन।
मय्यापतेत् तदिह मन्थर-मीक्षणार्ध
मन्दाऽलसं च मकरालय-कन्यकायाः॥ ७॥

दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा-
मस्मिन्न किंचन विहंगशिशौ विषण्णे।
दुष्कर्म-धर्ममपनीय चिराय दूरं
नारायणा-प्रणयिनी नयनाम्बुवाहः॥ ८॥

इष्टा-विशिष्ट मतयोऽपि यया दयार्द्र,
दृष्टयां त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्ट-कमलोदर-दीप्तिरिष्टां,
पुष्टिं कृपीष्ट मम पुष्कर-विष्टरायाः॥ ९॥

गीर्देवतेति गरुडध्वज-सुन्दरीति,
शकम्भरीति शशिशेखर-वल्लभेति।
सृष्टि स्थिति-प्रलय केलिषु संस्थितायै,
तस्यै नमस्त्रिभुवनैक गुरौस्तरूण्यै॥ १०॥

श्रुत्यै नमस्त्रिभुवनैक-फलप्रसूत्यै,
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणाश्रयायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्र निकेनतायै,
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तम वल्लभायै॥ ११॥

नमोऽस्तु नालीक-निभाननायै,
नमोऽस्तु दुग्धोदधि जन्मभूत्यै
नमोऽस्तु सोमामृत सोदरायै,
नमोऽस्तु नारायण वल्लभायै ॥ १२ ॥

नमोऽस्तु हेमाम्बुज-पीठिकायै,
नमोऽस्तु भूमण्डल नायिकायै

नमोऽस्तु देवादि-दयापरायै,
नमोऽस्तु शांङ् र्गायुध-वल्लभायै ॥ १३ ॥

नमोऽस्तु-देव्यै भृगुनन्दनायै,
नमोऽस्तु विष्णुरुरसि स्थितायै ।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै,
नमोऽस्तु दामोदरवल्लभायै ॥ १४ ॥

नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणाये,
नमोऽस्तु भूत्यै भूवनप्रसूत्यै
नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै,
नमोऽस्तु नन्दात्मज-वल्लभायै ॥ १५ ॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रिय-नन्दनानि,
साम्राज्य-दान-निरतानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद् वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि,
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥ १६ ॥

यंत्कटाक्ष-समुपासना विधिः,
सेवकस्य सकलार्थसम्पदः ।
सन्तनोति वचनांगमानसैः,
त्वां मुंरारि हृदयेश्वरी भजे ॥ १७ ॥

सरसिजनयने! सरोजहस्ते!,
भगवति हरिवल्लभे! मनोज्ञे!
त्रिभुवन भूतिकरि!,
प्रसीद मह्यम् ॥ १८ ॥

दिग्धस्तिभिः कनक-कुम्भ-मुखावसृष्ट,
स्वर्वाहिनी विमल-चारुजल प्लुताङ्गीम् ।
प्रातंर्नमामि जगतां जननीमशेष,
लोकाधिनाथ गृहणीममृताब्धि पुत्रीम् ॥ १९ ॥

कमले! कमलाक्षवल्लभे!
तं करुणापूर तरंङ्गितैरपाङ्गैः
अवलोकय माकिंञ्चनानां,
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥ २० ॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं,
त्रयींमयीं त्रिभुवन मातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुतर भाग्य भाजिनो,
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥ २१ ॥

सुवर्णधारा स्तोत्रं
यच्छङ्कराचार्य निर्मितम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं
स कुबेरसमो भवेत् ॥ २२ ॥

(इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित कनकधारास्तोत्रं समाप्तम्)

# कनकधारा स्तोत्र का हिन्दी सरलार्थ

जिस प्रकार भ्रमरी अर्धविकसित पुष्पों से अलंकृत तमालवृक्ष का आश्रय ग्रहण करती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि (विष्णु) के रोमांच से शोभायमान लक्ष्मी की कटाक्ष-लीला श्री-अंगों पर अनवरत पड़ती रहती है और जिसमें समस्त ऐश्वर्य-धन-सम्पत्ति का निवास है, वह समस्त मंगलों की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी की कटाक्षलीला मेरे भी लिए मंगलदायिनी हो॥ १॥

जिस प्रकार भ्रमरी कमलदल पर मंडराती (बार-बार आती-जाती) रहती है, उसी प्रकार भगवान् मुरारी के मुखकमल की ओर प्रेम सहित जाकर और लज्जा से वापस आकर समुद्र-कन्या लक्ष्मी की मनोहर मुग्ध दृष्टिमाला, मुझे अतुल श्री-ऐश्वर्य प्रदान करे॥ २॥

जो समस्त देवों के स्वामी इन्द्रपद का वैभव-विलास (सुखोपभोग) देने में समर्थ हैं तथा मुर नामक दैत्य के शत्रु भगवान् श्रीहरि को भी अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाली हैं, एवं नील कमल जिस लक्ष्मी का सहोदर भ्राता है, ऐसी लक्ष्मी के अधखुले नेत्रों की दृष्टि किंचित् क्षण के लिए मुझ पर थोड़ी अवश्य पड़े॥ ३॥

जिसकी पुतली एवं भौंहें (बरौनियां) काम के वशीभूत हो अर्धविकसित एकटक नयनों से देखने वाले आनन्दकन्द सच्चिदानन्द भगवान् मुकुन्द को अपने सन्निकट पाकर किञ्चित तिरछी हो जाती हैं—ऐसे शेषशायी भगवान् विष्णु की अर्द्धाङ्गिनी श्री लक्ष्मीजी के नेत्र हमें इच्छित धन-सम्पत्ति-प्रदायक हों॥ ४॥

जिन भगवान् मधुसूदन के कौस्तुभमणि से विभूषित वक्षस्थल में इन्द्रनीलमयी हारावली की तरह जो सुशोभित होती हैं तथा उन (भगवान) के चित्त में काम (स्नेह) संचारिणी, कमल-कुंजनिवासिनी लक्ष्मी की कृपा कटाक्षमाला मेरा भी मंगल करे॥ ५॥

जिस प्रकार मेघों की घनघोर घटा में बिजली चमकती है, उसी प्रकार कैटभ दैत्य के शत्रु श्री विष्णुभगवान् के काली मेघपंक्ति की तरह मनोहर वक्ष-स्थल पर आप विद्युत के समान दैदीप्यमान होती हैं तथा जो समस्त लोकों की माता, भार्गवपुत्री भगवती श्रीलक्ष्मी की पूजनीय मूर्ति है वह मुझे कल्याण प्रदान करे॥ ६॥

समुद्रकन्या लक्ष्मी की वह मन्दालस, मन्थर, अर्धोन्मीलित चंचल दृष्टि के प्रभाव से कामदेव ने मंगलमूर्ति भगवान् मधुसूदन के हृदय में प्राथमिक (प्रधान) स्थान प्राप्त किया था, वही दृष्टि यहां मेरे भी ऊपर भी कृपा करे॥ ७॥

भगवान् नारायण की प्रेमिका लक्ष्मी के नेत्र रूपी मेघ, दयारूपी अनुकूल वायु से प्रेरित होकर दुष्कर्म (कुकर्म) रूपी धाम को दीर्घकाल के लिए दूर हटाकर विषादग्रस्त मुझ दीन-दुःखी सदृश चातक पर धनरूपी जलधारा की वर्षा करे॥ ८॥

विलक्षण मतिमान् मनुष्य जिसके प्रीतिपात्र होकर उनकी कृपा के प्रभाव से स्वर्गपद को अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं कमलासना कमला लक्ष्मी की वह विसित कमल-गर्भ के सदृश कान्तिमयी दृष्टि मुझे मनोअभिलषित पुष्टि-सन्तत्यादि की वृद्धि प्रदान करे॥ ९॥

जो भगवती लक्ष्मी सृष्टि-क्रीड़ा के अवसर पर वाग्देवता (ब्रह्मशक्ति) के स्वरूप में विराजमान होती है और पालन-क्रीड़ा के समय पर भगवान् गरुड़ध्वज अथवा विष्णु भगवान् की सुन्दरी पत्नी लक्ष्मी (वैष्णवी शक्ति) के स्वरूप में स्थित होती है तथा प्रलय-लीला के समय शाकम्भरी (भगवती दुर्गा) अथवा भगवान् शंकर की प्रिय पत्नी पार्वती (रुद्र-शक्ति) के रूप में विद्यमान होती है, उन त्रिलोक के एकमात्र गुरु भगवान् विष्णु की नित्य यौवना प्रेमिका भगवती लक्ष्मी को मेरा नमस्कार है॥ १०॥

हे लक्ष्मी! शुभकर्मफलदायिनी! श्रुतिस्वरूप, मैं आपको प्रणाम करता हूं। रमणीय गुणों के समुद्रस्वरूपा रति के रूप में स्थित आपको नमस्कार है। शतपत्र वाले कमलकुंज में निवास करने वाली शक्तिरूपा रमा को नमस्कार है तथा पुरुषोत्तम श्रीहरि की अत्यन्त प्राणप्रिया पुष्टिरूपा लक्ष्मी को नमस्कार है॥ ११॥

कमल के समान मुख वाली लक्ष्मी को नमस्कार है। क्षीरसमुद्र में उत्पन्न होने वाली रमा को प्रणाम है। चन्द्रमा और अमृत की सहोदर बहन को नमस्कार है। भगवान् नारायण की प्रेयसी लक्ष्मी को नमस्कार है॥ १२॥

स्वर्ण कमल पर आसीन होने वाली, भूमण्डल कीं नायिका, देवताओं पर दया करने वाली, शर्ङ्गायुध विष्णु की वल्लभा, आपको नमस्कार है॥ १३॥

श्रीविष्णु भगवान् के वक्षःस्थल में निवास करने वाली देवी, कमल के आसन वाली दोमोदर प्रिया लक्ष्मी आपको मेरा नमस्कार है॥ १४॥

श्रीविष्णु भगवान् की कान्ता, कमल-नेत्र वाली, त्रैलोक्य को उत्पन्न करने वाली, देवताओं द्वारा पूजित नन्दात्मज की वल्लभा ऐसी लक्ष्मी देवी को मेरा नमस्कार है॥ १५॥

हे कमलाक्षी! आपके चरणों में की हुई स्तुति ऐश्वर्यदायिनी और समस्त इन्द्रियों को आनन्दकारिणी है तथा साम्राज्य (पूर्णाधिकार देने में सर्वथा समर्थ) एवं सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने में उद्यत है। हे माता! मुझे आपकी चरण-कमलों की वन्दना करने का सर्वदा शुभ अवसर मिलता रहे॥ १९॥

जिनके कृपा-कटाक्ष (तिरछी-चितवन) के लिए की गई उपासना (आराधना) सेवक (उपासक) के लिए समस्त मनोरथ और सम्पत्ति का विस्तार करती है, उस भगवान् मुरारी की हृदयेश्वरी लक्ष्मी को मैं मन, वचन और शरीर से भजन करता हूं॥ १७॥

हे भगवती! हरि की प्रिय पत्नी! आप कमल कुंज में रहने वाली हैं, आपके चरण-कमलों में नील कमल शोभायमान है। आप श्वेत वस्त्र तथा गन्ध, माला आदि से सुशोभित हैं। आपकी सुन्दरता अद्वितीय है। हे त्रिभुवन को वैभव प्रदायिनी! आप मेरे ऊपर भी प्रसन्न होइए॥ १८॥

दिग्गजनों के द्वारा कनककुम्भ (सुवर्णकलश) के मुख से पतित, आकाश-गंगा के स्वच्छ, मनोहर जल से जिस (भगवान्) के श्री अङ्ग का अभिषेक (स्नान) होता है, उस समस्त लोकों के अधीश्वर भगवान् विष्णु-पत्नी, क्षीरसागर की पुत्री, जगन्माता भगवती लक्ष्मी को मैं प्रातःकाल का नमस्कार करता हूं॥ १९॥

हे कमलनयने! भगवान् विष्णुप्रिया लक्ष्मी! मैं दीनहीन मनुष्यों का अग्रगण्य हूं, इसलिए आपकी कृपा का स्वभावसिद्ध पात्र हूं। आप उमड़ती हुई करुणा के बाढ़ की तरल-तरंगों के सदृश कटाक्षों द्वारा मेरी दिशा में भी अवलोकन कीजिए॥ २०॥

जो मनुष्य इन स्तोत्रों के द्वारा नित्य प्रति वेदत्रयी स्वरूपा, तीनों लोकों की माता, भगवती रमा (लक्ष्मी) का स्तोत्र-पाठ करते हैं, वे लोग इस पृथ्वी पर महागुणी और सौभाग्यशाली होते हैं एवं विद्वद्‌जन भी उनके मनोगत भाव को समझने के लिए विशेष इच्छुक रहते हैं॥ २१॥

श्रीमान् आदि शङ्कराचार्य विरचित इस सुवर्ण कनक धारा स्तोत्र पाठ जो मनुष्य तीनों काल (प्रातः-मध्याह्न-सायं) में करते हैं, वे लोग कुबेर के समान धनी हो जाते हैं॥ २२॥

## कनकधारा यन्त्र प्रयोग

यह मूल यन्त्र तीन त्रिकोणों से निर्मित होता है। यन्त्र के चारों ओर तीन परिधियां खींची जाती हैं जो कि तीन महा शक्तियों— महाकाली, महालक्ष्मी व महासरस्वती की प्रतीक होती हैं। इसके पश्चात् गोल घेरा (वृत) त्रिभुवन सुन्दरी का प्रतीक है।

इसके बाद आठ कमलदलों के भीतर अष्ट सिद्धियों व अष्ट लक्ष्मी का निवास माना गया है जो इस प्रकार है—

१. अणिमा (श्री वरदालक्ष्मी) २. लघिमा (धनदालक्ष्मी) ३. प्रकाम्य (पद्मालक्ष्मी) ४. वशिता (कमलालक्ष्मी) ५. महिमा (महालक्ष्मी) ६. प्राप्ति (श्रेष्ठालक्ष्मी) ७. ईशिता (वसुधालक्ष्मी) ८. ख्याति (काम्यालक्ष्मी)।

इसके पश्चात् सोलह कमलदल सोलह कुबेरों के प्रतीक माने गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. कुबेर २. त्र्यम्बकसुख ३. यक्षराज ४. गुह्यकेश्वर ५. धनद ६. राजराज ७. धनाधिप ८. किन्नरेश ९. वैश्रवण १०. पौलस्त्य ११. नरवाहन १२. यक्ष १३. एकपिंग १४. एलविल १५. श्रीद १६ पुण्यजनेश्वर।

इनके पूजन से जीवन में किसी भी प्रकार का अभाव नहीं रहता। इस यन्त्र के भीतर के त्रिकोण क्रमशः १. दारिद्र्य विनाशक २. श्रेष्ठा लक्ष्मी एवं ३. ऐश्वर्य के प्रतीक हैं।

त्रिकोण का मध्य बिन्दु मां भगवती (भुवनेश्वरी) का सूचक है जो अनिष्टनिवारक, प्रसन्नता एवं ऐश्वर्यदायक है। साधक को इस बिन्दु पर कमल सिंहासनारूढ़ भगवती श्री लक्ष्मी की परिकल्पना कर, अर्चना करनी चाहिए।

## यन्त्र पूजन काल

कनकधारा यन्त्र को चांदी या स्वर्ण (कनक) पर बनवाना चाहिए। यदि यह कूर्म पृष्ठीय निर्मित करवा ले तो सर्वोत्तम रहता है। इसका निर्माण दीपावली में, नवरात्रि में, सिद्धियोग में, अक्षय तृतीया व रविपुष्य या गुरुपुष्य को होना चाहिए। प्रत्येक त्रिकोण व कमल दल का एक निश्चित परिणाम है। उसके अनुसार यन्त्र निर्माण होना चाहिए। कार्यालय में इस प्रकार के सर्वथा शुद्ध यन्त्र, शुद्ध धातु पर निर्मित करवाये जाते हैं।

वैशाख, ज्येष्ठ, कार्तिक से फाल्गुन मास का समय इसके लिए शुभ रहता है। इस यन्त्र का उपयोग घर में, दूकान में, फैक्टरी में, वर्कशाप में, धन्धे व व्यवसाय-स्थल पर कर सकते हैं। दीपावली, होली या शुक्लपक्ष की द्वितीया, नवमी, सप्तमी, दशमी, पूर्णिमा, सोम, बुध, शुक्रवार, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र प्राणप्रतिष्ठा हेतु उत्तम रहते हैं।

## पूजन-सामग्री

यन्त्र-साधना, प्रतिष्ठा व पूजन के लिए निम्न सामग्री पहले से ही मंगवा कर रख लेनी चाहिए।

श्रीफल, कुंकुम, अबीर, गुलाल, मौली, वर्क, सुपारी, लौंग, इलायची, इत्र, यज्ञोपवीत, ताम्रपात्र, लाल व श्वेत वस्त्र, पीत वस्त्र, रूई, अगरबत्ती, माचिस, प्रसाद, फल, पुष्प-माला, चावल, सरसों, काली मिर्च, दूध, दही, घी, शहद, शक्कर, गुड़, कमल गट्टे व हल्दी की गांठिया आदि।

कनकधारा यन्त्र सामने पट्टा बिछाकर उस पर रेशमी वस्त्र व पुष्पों का आसन लगाकर रखना चाहिए। यन्त्र शुभ मुहूर्त पर, शुद्ध धातु एवं वैदज्ञ ब्राह्मण की उपस्थिति में बनाना चाहिए।

ध्यान रहे, प्राण-प्रतिष्ठा युक्त यन्त्र, मन्त्र-सिद्धि होने पर ही कार्य करता है। कनकधारा यन्त्र पूजन से पूर्व गणपति पूजन, वरुण कलश पूजन, नवग्रह पूजन, षोडश मातृका पूजन, सर्वतोमण्डल पूजन अवश्य कर लें। इसके लिए किसी योग्य कर्मकाण्डी पंडित या कुलगुरु की सहायता लेनी चाहिए। तदुपरान्त कनकधारा यन्त्र के सामने शुद्ध वस्त्र पहन, पत्नी सहित शुद्धासन पर बैठकर, हाथ में जल, पुष्प, दूर्वा, कुंकुम, चावल व दक्षिणा लेकर संकल्प करे।

**ॐ अस्य श्री कनकधारा महामंत्रस्य श्री भगवत्पाद शंकर ऋषिः श्री भुवनेश्री महामाया देवता, श्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, ऐं कीलकम् श्री विद्यापरा देवताः (मम) दुःख दारिद्र्यादि दोष निवारणार्थ, अप्राप्त-लक्ष्मी-प्राप्त्यर्थ प्राप्त लक्ष्म्याः चिरकाल संरक्षणार्थ तथा च धनदा लक्ष्मी प्रसाद सिद्धये कनक-कान्ति भूषितां, कनकधारावृतां, श्रीं प्रीत्यर्थ कनक धारा यंत्र संमुखे स्फटिक मणिमालोपरि अष्टसिद्धि, दात्र्याः भगवत्याः भुवनेश्वर्याः कनक धारा महामंत्र जपे विनियोगः॥**

इतना पढ़कर जल शुद्ध भूमि पर त्याग दे।

कनकधारा यन्त्र स्वत: अपने-आपमें आश्चर्यजनक व श्रेष्ठ का फल देने वाला है। अटूट श्रद्धा, विश्वास, भक्ति से मात्र इसे घर में स्थापित करने से ही आश्चर्यजनक लाभ, व्यापार-वृद्धि, कार्यसिद्धि व ऐश्वर्य तथा सम्पन्नता, बढ़ती है। यन्त्र के सम्मुख यदि इस स्तोत्र का पाठ करें तो फल कई गुना अधिक बढ़ जाता है।

## कनकधारा मन्त्र

**"ॐ वं श्री वं ऐं, ह्रीं श्रीं क्लीं कनकधारायै स्वाहा।"**

कोई भी साधक अपने घर में सिद्ध, प्राण-प्रतिष्ठा युक्त कनकधारा यंत्र को स्थापित कर नित्य कनकधारा मंत्र की एक माला फेरे, तब ही से उसके जीवन में आर्थिक उन्नति होती है। स्फटिक मणि की माला पर एक लाख जप करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र व स्तोत्र का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने घर में, फैक्टरी में, कार्यालय में, दूकान में सिद्ध प्राण-प्रतिष्ठा युक्त कनकधारा यन्त्र स्थापित करे व नित्य उनका सामान्य पूजन कर, स्तोत्र संपुट देकर स्तोत्र पाठ से विभिन्न कार्य सम्पन्न होते हैं। श्री यन्त्र व कनकधारा दोनों का विशेष सामञ्जस्य है। जिसके पास श्रीयन्त्र है, वे उसके ही पास कनकधारा यन्त्र भी अवश्य रखें तो फल १०० गुना बढ़ जाता है।

## इन्द्रकृत महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रम्

*यह देवराज इन्द्र द्वारा श्री महालक्ष्मी माता के चरणों में समर्पित आठ श्लोकों का अष्टक है। इन्द्र द्वारा इस अष्टक के उच्चारण से रूठी हुई महालक्ष्मी प्रसन्न हो गईं। इसलिए इसका बड़ा महत्त्व है। यह अष्टक त्रिगुणात्मक शक्ति वाला है। नित्य एक बार पाठ करने से पापों का नाश, दो बार (सायं-प्रात:) करने से व्यक्ति धन-धान्य-समृद्धि को प्राप्त करता है। त्रिकाल सन्ध्या के समय इस अष्टक का पाठ करने पर कैसा भी शत्रु हो, नाश हो जाता है। श्री महालक्ष्मी माता की अनुकम्पा से साधक सभी प्रकार की सिद्धियों एवं राज्य, वर्चस्व तथा प्रभुत्व को शीघ्र प्राप्त करता है।*

इन्द्र उवाच–

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ १॥
नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ २॥

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि मनोऽस्तु ते॥ ३॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्ति-मुक्तप्रदायिनि।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ४॥

आद्यन्तहिते देवि आद्यशक्तिमहेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ५॥

स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ६॥

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरुपिणि।
परमेशि ज़गन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥ ७॥

श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्करभूषिते।
जगस्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥ ८॥

फल स्तुति–

महालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यमाप्नोति सर्वदा॥ ९॥

एककालं पठेन्नित्यं महापापविनाशनम्।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धन-धान्यसमन्वितः॥ १०॥

त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम्।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा॥ ११॥

# अपनों से अपनी बात

हमारे कार्यालय की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण नित्य-प्रति डाक से अनेक पत्र आते हैं, जिसमें अनेक प्रकार की मांग व जिज्ञासा भरी कहानियां लिखी होती हैं। पर हम केवल उन्हीं पत्रों का जवाब दे पाते हैं, जिनके साथ स्पष्ट पता लिखा हुआ, टिकट लगा लिफाफा संलग्न हो। व्यक्तिगत सम्पर्क व शंका समाधान के लिए **श्रीविद्या साधक परिवार** के आजीवन सदस्य संख्या का उल्लेख अवश्य होना चाहिए।

बाहर से पधारने वाले सज्जनों से निवेदन है कि अ. भा. ज्योतिष पत्रकार महासंघ के अध्यक्ष, 'अज्ञातदर्शन' के विद्वान् सम्पादक एवं अनेक पुस्तकों के यशस्वी लेखक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त **पं. भोजराज द्विवेदी** से मिलने के लिए टेलीफोन नम्बर- 31883, फैक्स नम्बर- 0291-649093, मोबाइल नम्बर- 98280-31883 पर पूर्व समय निश्चित करके ही मिला करें। यह आपकी और हमारी दोनों की सुविधा के लिए बहुत ही जरूरी है।

कार्यालय संचालक<br>
**पं. रमेश द्विवेदी**

# यज्ञ-संसद

**( १ ) प्रधान आचार्य**—यज्ञ का प्रधान आचार्य श्रोत्रिय (कर्मकाण्डीय) ब्राह्मणों के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, विद्वानों का मुकुटमणि, वेद-विद्या विशारद, सब प्रकार की हस्त क्रियाओं (हतूठी) का जानकार होता है। प्रधान आचार्य कर्मकाण्ड के साथ-साथ ज्योतिषशास्त्र का भी प्रखर ज्ञाता होना चाहिए। तभी यज्ञ-क्रियाऐं सही समय व मुहूर्त में सम्पादित होकर उत्तम फल को देने वाली होती हैं। आचार्य की आज्ञा सर्वोपरि होती है जिसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। परन्तु लोभी, कपटी, क्रोधी, धूर्त, विधुर, स्त्री और वैरागी व्यक्ति प्रधान पीठ के योग्य नहीं होता। प्रधान पीठ पर आसीन व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जिसको देखते ही लोगों के हृदय में प्रेम, स्नेह और सद्भावना के अंकुर फूटें तथा जिसके चरण-वन्दना के लिए लोग लालायित रहें।

**( २ ) उपाचार्य**—आचार्य की उपस्थिति किंवा अनुपस्थिति में आचार्य द्वारा निर्दिष्ट कार्य को उपाचार्य पूरा करता है। उपाचार्य की नियुक्ति सुविधा के अनुसार एक से अधिक भी हो सकती है। उपाचार्य एक प्रकार से आचार्य का दायां-बायां हाथ कहलाता है।

**( ३ ) ब्रह्मा**—सृष्टि उत्पादन में जो ब्रह्मा का स्थान है, वही स्थान यज्ञ में ब्रह्मापद पर अधिष्ठित व्यक्ति का होता है। सारे यज्ञ का संचालन एवं उसकी त्रुटियों एवं सुधार का ध्यान ब्रह्मा को ही रखना पड़ता है। यज्ञ के सफल व असफल होने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी ब्रह्मा की होती है। इसलिए ब्रह्मा के चयन में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है।

## ब्रह्मा विचार एवं लक्षण

**दक्षिणे दानवाः प्रोक्ताः पिशाचाघोर राक्षसाः।**
**तेषां संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे॥**
**वेदैकानिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं श्रोत्रियं शुचिम्।**
**स्वशाखाढ्य मनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम्॥**

*-प्रयोगचिन्तामणि व्यासः*

विप्राभावे दर्भवटुमाह-कुशकंडिकाभाष्ये
दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु विष्टरः।

*-प्रणीय*

यज्ञीय कर्म में ब्रह्मा की आवश्यकता रहती है। उसके बिना यज्ञ कर्म प्रारम्भ नहीं होता। शास्त्र वचनों के अनुसार दक्षिण दिशा में दानव, प्रेत-पिशाच, चुगलखोर एवं चोर रहते हैं। यज्ञ कार्य में इनकी रक्षा हेतु ब्रह्मा को दक्षिण दिशा में आसन दिया जाता है। ब्रह्मा चारों वेदों का ज्ञाता, धर्मज्ञ, ऊंचे कुल में उत्पन्न श्रोत्रिय एवं पवित्र ब्राह्मण होता है। ऐसा ब्राह्मण जो किसी प्रकार के काम करने में जरा-सा भी आलस्य न करे। जो विधुर एवं बांझ न हो वही ब्रह्मा के योग्य होता है। ब्रह्मा के कुटुम्बी (स्वगोत्री) यज्ञ में हिस्सा लेते हैं। यज्ञ में जो ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाती है उससे दुगुनी ब्रह्मा को तथा ब्रह्मा से दुगनी दक्षिणा आचार्य को देने का नियम है। ब्राह्मणों की पूजा में योग्यतानुसार व्यतिक्रम या दक्षिणा में व्यतिक्रम से यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है। कुश-कण्डिका भाष्य के अनुसार यज्ञ के प्रारम्भ में ब्रह्मा को युग्मवस्त्र, यज्ञोपवीत, अंगुलीभूषण, कर्णभूषण, मणिबन्धभूषण एवं कण्ठहार दिया जाता है। प्रत्यक्ष ब्रह्मा के अभाव में दर्भ का विष्टर (बटुक) बनाया जाता है। दक्षिण में ब्रह्मा का आसन तथा वाम भाग में विष्टर होता है। ब्रह्मा के अभाव में पचास दर्भ का ब्रह्मा एवं पच्चीस दर्भ का विष्टर होता है। ब्रह्मा ऊर्ध्वकेशी एवं विष्टर लम्बकेशी होता है।

**( ४ ) ऋत्विज**—यज्ञ पुरोहित के अनुरूप कार्य सम्पादन करने वाले व्यक्ति को ऋत्विज कहते हैं। प्रत्येक यज्ञ में निम्नलिखित चार मुख्य ऋत्विज होते हैं। बड़े-बड़े संस्कारों एवं यज्ञों में ऋत्विजों की संज्ञा सोलह होती है। प्रायः जितने कुण्ड होते हैं, उतने ही ऋत्विज होते हैं।

**( ५ ) होता**—ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ करने वाला प्रधान व्यक्ति होता कहलाता है।

**( ६ ) उद्गाता**—यज्ञ में सामवेद के मन्त्रों का गायन करने वाला पुरोहित उद्गाता कहलाता है। शुद्ध एवं शीघ्र मन्त्रों का सस्वर गायन उद्गाता की विशेषता होती है।

**( ७ ) अध्वर्यु**—होता के सहायतार्थ हाथ से यज्ञ की क्रियाएं समझाने वाला व्यक्ति 'अध्वर्यु' कहलाता है। यह यजुर्वेद का विशेष ज्ञाता होता है।

**( ८ ) उपदेष्टा**—उपदेश देने वाला गुरुवत् पूज्य व्यक्ति उपदेष्टा कहलाता है। उपदेष्टा नित्य सायं को यज्ञ में करणीय कर्म का उपदेश देता है। उपदेष्टा की पूजा बिना यज्ञ क्रिया निष्फल हो जाती है।

**( ९ ) गणपति**—यह बुद्धि का प्रतीक, वाक्पटु पुरोहित होता है। यज्ञ की पहली वराहुति का संचालन इसके द्वारा होता है। यज्ञ की सफलता का श्रेय इसे जाता है। यज्ञ में विभिन्न प्रकार के मांडणे, मण्डल, आंगन-अलंकारों की रचना, श्रुति वाक्यों का उद्धरण इसके द्वारा होता है।

**( १० ) सदस्यपति**—यह यज्ञ में होने वाली सभाओं का संचालन कर अध्यक्षता करता है। यज्ञ में किसको क्या कार्य देना एवं किसको यज्ञ की सदस्यता से बहिष्कृत करना है, इसका कार्यक्षेत्र होता है।

**( ११ ) सर्वोपद्रष्टा**—सर्वोपद्रष्टा यज्ञ-सम्बन्धी सभी कार्यों-त्रुटियों का, यज्ञ-सामग्रियों का निरीक्षण ब्रह्मा की आज्ञा से करता है। कहां-किस वस्तु-व्यवस्था या सामग्री की कमी है। नित्य यजनीय पूजन सामग्री की जांच करना सर्वोपद्रष्टा का कार्य है। विद्वानों की गतिविधियां भी सर्वोपद्रष्टा से छिपी नहीं रहतीं। सर्वोपद्रष्टा की जिम्मेदारी सबसे अधिक होती है।

**( १२ ) संहिता पाठी**—प्रत्येक बड़े यज्ञ में मण्डप के ऊपर चारों दिशाओं में चारों वेद-पीठ की स्थापना की जाती है जिस पर चारों वेदों के विद्वान् अलग-अलग वेदों की संहिता का पाठ करते हैं।

**( १३ ) ऋग्वेद मूर्ति**—पूर्व दिशा में ऋग्वेद की स्थापना की जाती है तथा वहां पर वेदपाठ करने वाले को ऋग्वेद मूर्ति कहा जाता है।

**( १४ ) यजुर्वेद मूर्ति**—यज्ञमण्डप की पश्चिम दिशा में अथर्ववेद की व सामवेद की स्थापना की जाती है तथा वहां पर वेदपाठ करने वाले विद्वान् को यजुर्वेद मूर्ति कहा जाता है।

**( १५ ) सामवेद मूर्ति**—यज्ञमण्डप के पश्चिम में सामवेद की स्थापना की जाती है तथा वहां पर वेदपाठ करने वाले विद्वान् को सामवेद मूर्ति कहा जाता है।

**( १६ ) अथर्ववेदं मूर्ति**—यज्ञमण्डप की उत्तर दिशा में अथर्ववेद की स्थापना की जाती है तथा वहां पर वेदपाठ करने वाले विद्वान् को अथर्ववेदमूर्ति कहा जाता है।

**( १७ ) स्तोता**—यज्ञ-स्थल पर विभिन्न स्तोत्रों-स्तुतियों का पाठ करने

वाले विद्वान् को स्तोता कहा जाता है। नित्य आरती, मन्त्र-पुष्पांजली के समय स्तोता की आवश्यकता रहती है। होता व स्तोता में प्रधान अन्तर यह है कि होता वैदिक कर्म का ज्ञाता होता है तथा स्तोता स्मार्तकर्म का ज्ञाता होता है।

**(१८) कुण्डाचार्य**—प्रत्येक कुण्ड के अधिपति को कुण्डाचार्य कहा जाता है। जितने कुण्ड होते हैं, उतने ही कुण्डाचार्य होते हैं पर सम्पूर्ण यज्ञ का ब्रह्मा एक ही होता है। यज्ञ संसद में **उपब्रह्मा** का कोई पद नहीं होता है। ऐसे ही यज्ञ **प्रभारी** नाम का कोई पद नहीं होता।

**(१९) यज्ञ प्रवक्ता**—यज्ञ क्रियाओं का सम्पादन, यज्ञ-मंच का संचालन, यज्ञ-क्रियाओं एवं यज्ञीय क्रियाओं का प्रचार-प्रसार का सारा भार यज्ञ प्रवक्ता पर होता है। मुख्य अतिथि, विशिष्ट-अतिथियों, विद्वत्गोष्ठियों का आयोजन, विद्वानों का सत्कार-सम्मान-सम्बन्धी सभी क्रियाओं का संचालन यज्ञ प्रवक्ता करता है।

**(२०) जपिया**—यज्ञ विहित कर्म-अनुष्ठान के मन्त्रों, वास्तु मन्त्रों, नवग्रह-मन्त्रों के जप-जाप हेतु जो ब्राह्मण बैठते हैं वे जपिया कहलाते हैं। जपिया की संख्या यज्ञाचार्य की इच्छा पर निर्भर है।

यज्ञस्थली में अनाहूत अतिथि ब्राह्मणों का सत्कार करने का विशेष ध्यान रखा जाता है। न जाने किस रूप में परमपिता परमात्मा स्वयं यज्ञ के दर्शनों को आ जाएं। इसलिए यज्ञ में किसी भी प्राणी का अपमान, अनादर या उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, खासकर ब्राह्मणों के प्रति इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

## कुछ विशिष्ट निर्णय एवं विचारणीय बातें

**(१) सर्वतोभद्रमण्डल आदि के मध्य में कलश स्थापन विचार**—देव आदि प्रतिष्ठा में 'प्रतिष्ठामयूख' आदि महानिबन्धों में सर्वतोभद्रमण्डल पर कलश स्थापना करना अभीष्ट नहीं। यह मात्र लोकाचार है, न करने पर किसी प्रकार की क्षति नहीं होती है। देव को शय्या से जागृत करने पर सर्वतोभद्र पर स्थापित करने का विधान है, वहां देव-प्रतिमा की स्थापना न करके कलश पर सुवर्ण प्रतिमा के स्थापन की विधि है। इस उद्देश्य से होने वाले देवता की सुवर्ण प्रतिमाओं के पूजन के लिए कलश की स्थापना आवश्यक होगी।

(२) कलश पर नारियल खड़ा रहना चाहिए या आड़ा, इस पर जोधपुर

के विद्वानों में चार दिन तक शास्त्रार्थ चला। दोनों पक्षों द्वारा अनेक प्रमाण दिए गये। अन्त में निर्णय यह निकला कि यदि कलश पर पूर्णपात्र न हो तो पंचपल्लवों के ऊपर वस्त्रवेष्ठित नारियल खड़ा होगा। नारियल का कठोर वाला भाग नीचे, शिखा (चोटी) एवं नेत्र वाला भाग ऊपर होगा। यदि कलश पर पूर्णपात्र है तो नारियल आड़ा रखा जायेगा।

**( ३ ) योगिनी पूजन विचार**—ग्रन्थान्तर में कहा गया है—

**अकृत्वा योगिनी पूजा यज्ञम यः करोति तदाधमः।**
**जपं होमं तथा दानं तत्सर्व निष्फलं भवेत्।**
**भस्मी भवति तत् योगिनीपूजनं बिना।**
**तस्मात्सर्व प्रयत्नेन योगिनीं पूजयेत् मखे॥**

अतः जहां नवग्रह का हवन हो, देव-प्रतिष्ठा हो, वहां योगिनी की पीठ बनानी चाहिए।

**( ४ ) ग्रह होम में द्रव्यों का विचार**-ग्रह होम में अर्कादि समिधा, तिल-चरु और घृत ये चारों हवनीय द्रव्य हैं। सभी सम्प्रदायों वाले इन चारों द्रव्यों से ही हवन करते हैं।

(५) नवकुण्डी में अष्टाहुति पक्ष नहीं है। वहां पर नौ कुण्डों में तीन-तीन होता रहते हैं। सूर्यादि नवग्रहों के लिए प्रतिदेवता प्रथमावृत्ति में, द्वितीयावृत्ति में, तृतीयावृत्ति में मन्त्रों से हवन करें। चतुर्थावृत्ति में आचार्य कुण्ड में ही तीन 'होतागण' हवन करते हैं।

(६) मत्स्य पुराण के वचन से नवकुण्डी पक्ष में बत्तीस ऋत्विज होते हैं। पंचकुण्डी पक्ष में सोलह, एककुण्डी पक्ष में आठ ऋत्विज होते हैं। आचार्य आदि छः महाऋत्विज भिन्न होते हैं। नवकुण्डी पक्ष में आठ ब्रह्मा, आठ द्वारपाल (ऋत्विज), आठ जापक और आठ 'होता' होते हैं। आचार्य कुण्ड में आचार्य ही 'होता' हैं। पंचकुण्डी पक्ष में चार ब्रह्मा, चार द्वारपाल, तथा चार जापक होते हैं, होता स्वयं आचार्य रहते हैं। आहुति पक्ष में अत्यधिक कुण्डों के कारण अनेक प्रकार की जटिलताएं पैदा होती हैं। सही विधान एक कुण्डी पक्ष में ही उपयुक्त है।

(७) देवताओं के प्रीत्यर्थ प्रज्वलित दीप को कभी भी बुझाना नहीं चाहिए।

(८) शालिग्राम एवं बाणलिंग के पूजन करने के समय आह्वान तथा विसर्जन नहीं होता है।

(९) जो मूर्ति प्रतिष्ठित हो चुकी है उसका आवाहन तथा विसर्जन नहीं होता।

(१०) समस्त देवी-देवताओं का षोडशोपचार पूजन पुरुषसूक्त से हो सकता है।

(११) कमल का पुष्प पांच रात तक, बिल्वपत्र दस रात तक, तुलसीपत्र ग्यारह रात्रि तक पड़े रहने पर प्रक्षालन करके पूजन में पुनः प्रयोग किया जा सकता है। शिवलिंग पर बिल्वपत्र उल्टा-सीधा, छिन्न-भिन्न एवं सूखे पत्र का चूर्ण भी चढ़ाया जा सकता है।

(१२) पंचामृत स्नान में यदि सभी वस्तुएं उपलब्ध न हो सकें तो मात्र दुग्ध स्नान से ही अन्य मन्त्रों की सहायता से पंचामृत का फल मिल जाता है।

(१३) अक्षत् यव को भी कहते हैं, शालिग्राम प्रतिमा पर यव चढ़ाने चाहिए। अर्घ्य पात्र में यव का ही प्रयोग होना चाहिए।

(१४) सोमवती अमावस्या, रविवार युक्त सप्तमी, भौमवार युक्त चतुर्थी, गुरुवार युक्त अष्टमी के दिन किया गया पुण्य अक्षय हो जाता है।

(१५) होलिका के पर्व पर चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं प्रतिपदा के तीनों दिनों में, तथा दीपावली-चतुर्दशी, अमावस्या एवं प्रतिपदा के दिनों में, कृष्ण जन्माष्टमी के समय, सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी के दिनों में तीनों सन्ध्याओं के समय में निरन्तर जप-पाठ करने से मन्त्र-सिद्धि तत्काल हो जाती है।

(१६) विद्या प्रारम्भ करने के लिए गुरुवार सर्वश्रेष्ठ रहता है। शुक्र व रविवार को विद्या मध्यम फलकारी होती है। शनि व मंगलवार को मन्द बुद्धि, विलम्ब के साथ विद्या प्राप्त होती है परन्तु सोमवार व बुधवार को तो कभी भूलकर भी विद्या प्रारम्भ न करें।

(१७) मंगलवार को किसी से कर्जा न लें, क्योंकि वह उतरेगा नहीं। बुधवार को किसी भी सज्जन को उधार न दें, क्योंकि वह रकम वापस आना मुश्किल है। कोई मांगता हो तो उसको मंगलवार को किश्त देकर चुका दें; ताकि कर्जा शीघ्र उतर जायेगा। रुपया इकट्ठा करना हो तो केवल बुधवार को ही संचय करें तो रुपया शीघ्र एकत्रित होगा।

**(१८) स्नाने दाने मखे होमे पूजयां पितृ कर्मणि**
**पत्नि दक्षिणतः श्रेष्ठा आश्लेषा मूलवर्जिता॥**
**वामे पत्नि त्रिषुस्थाने, यात्रायां सहभोजने।**
**विप्रपाद क्षालने च, अभिषेके तु वामतः॥**

मुहूर्तस्नान, दान, यज्ञ, गृहशान्ति, देवपूजा, पितृकर्म में पत्नी दक्षिण में रखना श्रेष्ठ है। केवल आश्लेषा, मूल इत्यादि नक्षत्र की शांति में पत्नी को वाम भाग में बिठाना चाहिए।

यात्रा, सहभोजन, ब्राह्मणों के चरण-प्रक्षालन के समय एवं अभिषेक-आशीर्वाद कर्म में पत्नी वाम भाग में रहनी चाहिए। यह पाराशर, शक्ति और कात्यायन ऋषि के मत हैं। केवल व्याघ्र के मत से सर्वत्र पत्नी वामत: होती है।

(१९) एक वस्त्र को पहन कर भोजन नहीं करें। देवताओं की पूजा नहीं करें। पितृ-कार्य, दान, होम तथा जप इत्यादि भी न करें। क्योंकि उपर्युक्त सभी कार्यों में उपवस्त्र (अंगोछा) कन्धे पर रखना अनिवार्य है।

(२०) गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुंवारी कन्या, अबोध शिशु, देवताओं व अग्नि को भूलकर भी पैर से स्पर्श न करें।

(२१) राजा, देवता, गुरु, ज्योतिषी एवं वैद्य के पास कभी भूलकर भी खाली हाथ नहीं जावें। क्योंकि इन स्थानों पर खाली हाथ गया हुआ व्यक्ति वापस खाली (निष्फल) ही आता है।

(२२) स्वयं के हाथ से ग्रंथित माला स्वयं न पहनें। स्वयं के हाथ से घिसे चन्दन का स्वयं लेप न करें। स्वयं के हाथ से लिखित एवं प्रशंसा के स्तोत्र को स्वयं न पढ़ें। साक्षात् इन्द्र भी यदि इसके विपरीत आचरण करें तो उसका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। इस प्रकार से शास्त्रकारों ने आत्म-प्रशंसा को दोष माना है।

(२३) जिस प्रकार से अन्धे पति के प्राप्त होने पर विलासिनी के नयनों के कटाक्ष निष्फल हो जाते हैं, उसी प्रकार से मंगल, सूर्य व शनि इत्यादि के वारदोष रात्रि को निष्फल हो जाते हैं।

(२४) पिता-पुत्र, दो भाई, नव औरतें, तीन ब्राह्मणों, चार शूद्र व पांच वैश्य कभी भी प्रस्थानकाल में घर से एक साथ न जावें।

(२५) पिता की पत्नी, राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, श्वसुर की पत्नी, वृद्ध मित्र की पत्नी—ये पांचों माता कहलाती हैं। अत: इन्हें माता तुल्य आदर देना भारतीय परम्परा है।

(२६) पैदा करने वाला, उपनयन संस्कार देने वाला, विद्या प्रदान करने वाला, अन्नदाता, भय से बचाने वाला—ये पांचों पिता कहलाते हैं। अत: इन्हें पिता तुल्य आदर देना ही भारतीय परम्परा है।

(२७) यज्ञ में यजमान को सपत्नीक पवित्र वस्त्रों को पहन कर बैठना चाहिए। आत्मा है, वह यजमान है, बुद्धि यजमान की पत्नी है। रजस्वला व गर्भवती स्त्री यज्ञ में नहीं बैठ सकती। पत्नी के अभाव में दर्भ की पत्नी या स्रोपारी रख सकते हैं। भगवान् श्रीराम ने पत्नी के अभाव में अपनी भार्या सीताजी की सुवर्णमय प्रतिमा रखी थी।

(२८) रात्रि काल में कभी भी जन्म होने पर, मृत्यु होने पर, स्त्री के रजस्वला होने पर, सूतक के प्राप्त होने पर, सूर्योदय के पहले का समय, एक दिन गिना जाता है, अर्थात् सूर्योदय के बाद दूसरा दिन गिना जायेगा।

(२९) पुत्र के जन्म होते ही पिता को स्नान लगता है। माता की शुद्धि दस दिन पश्चात् स्नान करके ही पिता को स्पर्श कर सकती है। वरना स्पर्शदोष से ग्रसित होने पर पापाधिकारी बन जाती है।

(३०) कपास निर्मित सूती वस्त्र कटि स्थान पर वेष्ठित करने के बाद अशुद्ध हो जाता है। रेशमी वस्त्र (पीताम्बर) भोजन करने के पश्चात् अशुद्ध हो जाता है। पवित्र कार्यों में केवल ऊनी वस्त्र ही सदा शुद्ध माना जाता है।

(३१) स्वजातीय शव को कन्धा देने पर एक दिवस का शौच होता है। प्रात:काल दाह पर, रात्रि को नक्षत्र देखकर, एवं रात्रि को दाह होने पर प्रात: सूर्यदर्शन करके ही भोजन करना चाहिए।

(३२) एक ही क्रिया के लिए दो भिन्न-भिन्न पद्धति के कर्मकाण्ड प्रयोग निषेध हैं।

(३३) जप के समय माला-वस्त्र से आच्छादित होवे, दक्षिण हाथ में ग्रहण करें तथा तर्जनी को स्पर्श से मुक्त रखें।

(३४) **ध्यायेत् मनसा मन्त्र** जिह्वा व ओष्ठ से बड़बड़ाना, कमर व सिर तथा गर्दन हिलाना, शरीर के अंगों को कम्पायमान करना, कभी उच्च कभी निम्न घोष से बोलना, ये सब मन्त्र-जाप में निषिद्ध हैं। मन्त्र केवल मन व आत्म-शक्ति के बल पर ही जपा जाता है।

(३५) सूतक पर, मृत्यु पर, ग्रहण लगने पर, चार मास बीत जाने पर, टूट जाने पर, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर तथा अपवित्र हो जाने पर शीघ्र यज्ञोपवीत को बदलें।

(३६) यज्ञोपवीत के बिना बातचीत करने पर दोष लगता है। बिना यज्ञोपवीत मूत्र, विष्ठा त्याग करने पर दो उपवास करने से शुद्धि होती है।

(३७) हमेशा यज्ञोपवीत दो पहनने चाहिए। एक यज्ञोपवीत कभी भी नहीं पहनना चाहिए। उत्तरीय वस्त्र के अभाव में तीसरा यज्ञोपवीत भी पहन सकते हैं।

(३८) यज्ञ-यागादि में ब्राह्मण युग्म रखने चाहिए।

(३९) अंग विकल, धन-धान्योपहारी, सर्वांग विकल, हीनांग आदि ऋत्विज यज्ञ में लगे होने से यजमान का नाश होता है।

(४०) अनुष्ठान क्रिया-कुशल, यज्ञों की प्रक्रिया को जानने वाले, मन्त्रों के वेत्ता, एक पत्नीव्रती ब्राह्मणों को यज्ञ कार्य में ग्रहण करना चाहिए।

(४१) यज्ञ में योनि के एक दम ऊपर आ जाने पर मध्य में कुछ ऊंची रखे। प्रयोग तारमत से मध्य में निम्न हो। क्योंकि मध्य में उच्चतम रखने पर योनि के एक दम आगे जो छिद्र रहेगा उससे आज्य का जाना असम्भव होगा। यह उच्चकोटि होमकार का मत है।

(४२) योनि के ऊपर चारों तरफ परिधि मेखला एक अंगुल या दो अंगुल की रखे।

(४३) कुण्ड की मेखला के पश्चिम दिशा से या दक्षिण के ठीक मध्य से योनि बनाना चाहिए।

(४४) कुण्ड कार्य में मनुष्य-अंगुल और देहांगुल का ग्रहण करे। पंचरामित से वैकल्पिक है।

(४५) घर के ईशान भाग में मण्डप बनवावे। यह वसिष्ठ संहिता का मत है।

(४६) शिवालय, तीर्थ के किनारे पर, गोशाला, अपने घर में या किसी संशोधित भूमि में मण्डप बना सकते हैं। यह कुण्डकल्पद्रुम का मत है।

(४७) इसमें आचार्य कुण्ड दक्षिण दिशा वाला होगा।

(४८) एक मुख में आचार्य-कुण्ड मध्य का होगा। पांच कुण्डी में ईशान का, सात कुण्डी में ईशान और पूर्व के कुण्ड पर आचार्य बैठेगा।

(४९) नवग्रह में सूर्य प्रधान होने से आचार्य-कुण्ड सूर्य का ही होगा।

(५०) न्यून खात में असिद्धि होती है एवं मान (नाप) की कमी से दरिद्रता आती है।

(५१) अधिक खात में असुरों का राज्य होता है।

(५२) यज्ञ व मेखला के टूट-फूट से उच्चाटन होता है। यजमान के घर में उपद्रव होता है।

(५३) छिद्रता में यजमान मूक होता है। अतः शुद्धि हेतु पूर्णपात्र ब्राह्मणों को दे।

(५४) योनि के ऊपर चारों तरफ एक अंगुल मेखला बनावे। योनि पीछे से कुछ ही ऊंची होनी चाहिए। योनि रक्त वस्त्रों से ढक कर रखे।

(५५) जमीन से एक हाथ या आधा हाथ मिट्टी आदि से ऊंची करने पर वही मण्डप का स्थल (भूमि) माना जायेगा। **"स्थलादर्काहंगुलोच्छ्रयं मण्डप स्थलमीरितम्"** सिद्धान्तशेखर महाकपिल पंचरामित से मण्डप भूमि एक ही हाथ ऊंची करे।

(५६) मण्डप के प्रधान मध्य भाग में जो कुण्ड बनेगा वही प्रधान कुण्ड होगा, वह सब निबन्धों का निर्णीत पक्ष है।

(५७) यदि तुलादान, दीक्षा आदि का कार्य होगा तो मण्डप के मध्य प्रधान नवमांश में वेदी बनेगी।

(५८) उत्तम मण्डप बत्तीस, चौबीस, बीस, अट्ठारह तथा सोलह हाथ लंबा और चौड़ा कहा गया है। मध्यम मण्डप चौदह तथा बारह हाथ लंबा और चौड़ा कहा गया है। अधम मण्डप दस हाथ लंबा और चौड़ा कहा गया है।

(५९) मण्डप की ऊंचाई हमेशा यजमान के एक हाथ या सवा हाथ की होती है।

(६०) विष्णुयाग में प्रधानवेदी पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य में ही होती है।

(६१) रुद्रयाग में प्रधानवेदी के दक्षिण में ग्रहवेदी होती है।

(६२) रुद्रयाग में प्रधानवेदी ईशानकोण में ही होती है।

(६३) प्रधानवेदी प्रायः एक हाथ ऊंची और दो हाथ चौड़ी होती है। अन्य क्षेत्रफल आदि की चारों वेदियां एक-एक हाथ ऊंची तथा एक-एक हाथ चौड़ी होती हैं। प्रधान वेदी, प्रधान कुण्ड से छोटी नहीं होती।

(६४) ग्रहवेदी में तीन सीढ़ी (वप्र) होती है। ग्रहवेदी की तरह वास्तु, क्षेत्रपाल और योगिनी वेदी में भी तीन-तीन सीढ़ी (वप्र) ही होनी चाहिए।

(६५) प्रधानवेदी में दो सीढ़ी (वप्र) होती है।

(६६) ग्रहवेदी आदि सभी वेदियों की तीनों सीढ़ियों में ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंग की, मध्य वाली लाल रंग की और नीचे वाली काले रंग की होती है।

(६७) यज्ञमण्डप में सोलह स्तम्भ होते हैं। बड़े मण्डप में अर्थात् सौ

हाथ के मण्डप में पच्चास हाथ के मण्डप में और बत्तीस हाथ के मण्डप में यज्ञमण्डप की मजबूती के लिए सोलह स्तम्भ से अधिक स्तम्भ भी लगाये जा सकते हैं।

(६८) सोलह हाथ के यज्ञमण्डप में भीतर वाले चार स्तम्भ, नौ हाथ के और बाहर वाले बारह स्तम्भ पांच हाथ के होते हैं।

(६९) मण्डप स्तम्भों के पांचवें हिस्से को भूमि में गाड़ देना चाहिए।

(७०) यज्ञ-मण्डप में स्तम्भों के लगाने का क्रम यह है कि—यज्ञमण्डप जितना बड़ा हो, उससे आधे प्रमाण के भीतरी चार स्तम्भ और बाहरी बारह स्तम्भ सात हाथ के लगाने चाहिए।

(७१) यज्ञ मण्डप के स्तम्भ, यज्ञीय वृक्ष अथवा बांस के अथवा अन्य पवित्र वृक्ष के लगाने चाहिए।

(७२) यज्ञमण्डप के सोलह स्तम्भों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यम, नागराज, स्कन्द (कार्तिकेय) वायु, सोम, वरुण, अष्टवसु, धनद (कुबेर), बृहस्पति और विश्वकर्मा इन सोलह देवताओं का स्थापन होता है।

(७३) यज्ञ-मण्डप के सोलह स्तम्भों में इस प्रकार रंगीन वस्त्र लगाना चाहिए। मण्डप के भीतर वाले चार स्तम्भों में क्रमशः ईशान कोण के स्तम्भ में लाल वस्त्र।

(७४) अग्निकोण के स्तम्भ में सफेद वस्त्र, नैर्ऋत्यकोण के स्तम्भ में काला वस्त्र होना चाहिए।

(७५) वायव्य कोण के स्तम्भ में पीला वस्त्र ही होना चाहिए।

(७६) दश दिक्पाल की दस ध्वजाएं होती हैं। ये ध्वजाएं त्रिकोण ही होती हैं।

(७७) महाध्वज एक होता है और यह त्रिकोण होता है। और सबसे बड़ा होता है।

(७८) महाध्वज पंचरंगा अथवा चित्र-विचित्र रंग का होता है।

(७९) महाध्वज को दस हाथ, सोलह हाथ, इकतीस हाथ अथवा बत्तीस हाथ के लंबे बांस में लगाना चाहिए।

(८०) महाध्वज को यज्ञमण्डप के मध्य में अथवा यज्ञमण्डप के ईशान कोण में ही लगाना चाहिए।

(८१) यज्ञमण्डप चारों दिशाओं के चारों द्वारों में चार तोरणद्वार होते हैं।

ये चारों तोरणद्वार मण्डपद्वार से एक-एक हाथ अथवा दो-दो हाथ की दूरी पर ही बनाने चाहिए।

(८२) तोरण द्वारों में मण्डप के द्वारों की तरह नीचे की ओर लकड़ी (देहली) नहीं होती।

(८३) पूर्वद्वार के तोरण में पीला वस्त्र, दक्षिण द्वार के तोरण में काला वस्त्र, पश्चिम द्वार के तोरण में सफेद वस्त्र और उत्तर द्वार के तोरण में पीला वस्त्र लगाना चाहिए।

(८४) विष्णुयाग में चारों तोरणद्वारों के ऊपर क्रमशः पूर्व में शंख, दक्षिण में चक्र, पश्चिम में गदा और उतर में पद्म लगाना चाहिए।

(८५) विष्णुयाग में उत्तम मण्डप में १४ अंगुल लंबा और ३ अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिए। अधम मण्डप में १० अंगुल लंबा और २ अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिए।

उपर्युक्त विष्णुयाग के उत्तमादि मण्डप के शंखादि के कीलों का पंचमांश तोरण पर गाड़ देना चाहिए व द्वार का पांचवां हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिए।

(८६) रुद्रयाग में चारों दिशाओं में लगे हुए चारों तोरणद्वारों के ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिए।

(८७) रुद्रयाग में उत्तम १३ अंगुल लंबा और ३ अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिए। मध्यम मण्डप में ११ अंगुल लंबा और २ अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिए। अधम मण्डप में ९ अंगुल लंबा और २ अंगुल चौड़ा त्रिशूल को तोरण में गाड़ना चाहिए।

उपर्युक्त रुद्रयज्ञ के उत्तमादि मण्डप के त्रिशूलादि के कीलों का पंचमांश तोरण पर गाड़ना चाहिए और द्वार का पांचवां हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिए।

(८८) यज्ञमण्डप के बाहर अट्ठारह कलश होते हैं। इनमें चार कलश मण्डप के बाहर चारों दिशाओं, चारों कोनों में रखे जाते हैं और एक कलश पूर्व और ईशानकोण के मध्य में ब्रह्मा का होता है तथा एक कलश पश्चिम और नैऋत्यकोण के मध्य में अनन्त का होता है। ये दस कलश दशदिक्पाल के होते हैं।

यज्ञ मण्डप के चारों द्वारों पर दो-दो कलश होते हैं, जिन्हें 'द्वारकलश' भी कहते हैं। इस प्रकार यज्ञमण्डप के अट्ठारह कलश होते हैं।

(८९) यज्ञमण्डप के भीतर ऊपर छत की ओर चारों तरफ सफेद वस्त्र का चंदोवा लगाना चाहिए।

(९०). यज्ञ में जलयात्रा अग्नि-स्थापना के दिन होती है। इसमें कुंवारी एवं सुहागन स्त्रियां जो संख्या में कम-से-कम नौ होनी चाहिए, वर्धिनी कलश लेकर शोभायात्रा में आगे चलती हैं। कलश में पवित्रजल, गोमय, दुग्ध, शक्कर, दक्षिणा, नारियल, पंचपल्लव, कुंकुम-केसर एवं पुष्प वगैरह चाहिए। इनके द्वारा जलमातृका का पूजन होता है।

(९१) हमेशा अग्निकोण में मातृका वेदी, नैऋत्य में वास्तुपीठ, वायव्य में क्षेत्रपाल तथा ईशान्य में नवग्रह पीठ स्थापित करनी चाहिए।

(९२) मातृका पीठ हमेशा जमीन से एक हाथ ऊपर २४ अंगुल दीर्घ एवं १६ अंगुल चौड़ी होनी चाहिए तथा क्षेत्रपाल पीठ १२ अंगुल ऊंची तथा एक हाथ विस्तृत होती है।

**( ९३ ) विनासनेन या पूजा स पूजा निष्फलंभवेत्—** बिना आसन के देवताओं की पूजा निष्फल होती है। अत: प्रत्येक अनुष्ठान में ब्राह्मणों को अलग-अलग आसन देने चाहिए।

**( ९४ ) अरणी मन्थन**

**शमी ( खेजड़ी ) वृक्ष पर उत्पन्न पीपल की पूर्वोन्मुखी शाखा ( बन्दे ) की अरणि बनाई जाती है। यह २४ अंगुल लम्बी और ६ अंगुल चौड़ी अथवा चार अंगुल मोटी होनी चाहिए। मूल आठ अंगुल भाग और आगे के १२ अंगुल को छोड़कर बीच में ४ अंगुल के भाग में ही अग्नि का निवास होता है क्योंकि वही देवयोनि है। अतएव उसे ही मथना चाहिए। प्रथम मन्थन के बाद यह नियम शिथिल भी किया जा सकता है। पहले यजमान की पत्नी मथे फिर कोई बलवान ब्राह्मण अरणि-मंथन से अग्नि प्रकट करे, यही नियम है।**

(९५) पाक यज्ञ चार हैं—१. हुत (केवल होम, यथा—सायं, प्रात:कालीन होम) २. आहुत (यथा स्रस्तरा रोहण होम विहीन) ३. प्रहुत (होम और बलिहरण दोनों, यथा—पक्षादि कर्म) ४. प्राशित (केवल प्राशन यथा ब्राह्मण भोजन इत्यादि)।

(९६) उपलेपनादि पंचभू संस्कार करके ही यज्ञ में अग्नि का आधान किया जाता है। इसे 'अग्न्याधान' कहते हैं।

(९७) अग्न्याधेय देवताओं (१. पवभानाग्नि २. पावकाग्नि. ३. अग्नि: शुचि ४. अदिति) के निमित्त स्थाली पाक पकाकर (अग्नि और सोम से सम्बन्ध आज्य भाग का हवन कर) 'एवन्नो ऽग्ने' प्रभूति आठ मन्त्र पढ़कर आठ घृताहुतियां दी जाती हैं। इसी प्रकार बाद में भी पूर्वोक्त अग्नयाधेय देवताओं को चक्र (चावल, शक्कर, दूध, घी) की आठ आहुतियां डाले।

(९८) गृह्याग्नि की स्थापना विवाह के समय (चतुर्थी संस्कार के अनन्तर) करनी चाहिए क्योंकि इसके पूर्व पत्नी भार्या नहीं बनती और सभार्या व्यक्ति ही अग्न्याधान करने का अधिकारी होता है।

**(९९) अग्निहोत्र**

**सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते।**
**स्वयं होमे फलं यस्यान्न तदन्येन लभ्यते॥**
**होमे यत्फल मुद्दिष्टं जुह्वत स्वयमेवतु।**
**हूयमाने तदन्येन फलमर्द्ध प्रपद्यते॥**

*-स्मृत्यर्थसार*

अग्निहोत्र स्वयं ही करना चाहिए। असमर्थ और अशक्त होने पर ही किसी अन्य से अग्निहोत्र कर्म कराया जा सकता है।

**(१००) मधुपर्क-**

**दधिमधुघृतमेकस्मिन्कास्य़ पाझे कृतमपरेण।**
**कांस्य पात्रेणऽपिहितं मधुपर्कशब्दे नोच्यते॥**
**मधुपर्के च सोचे च अप्सु प्राणाहुतिषु च।**
**नोच्छिष्टस्तु भवेद्विप्रो, यज्ञा ऽत्रे वर्चनं यथा॥**

*-अत्रि*

एक पल दही, एक पल शहद, एक पल घृत कांसे के बर्तन में डाल करके मधुपर्क बनाया जाता है। मधुपर्क यज्ञ करने के पूर्व वरराजा, आचार्य, ब्रह्मा, ऋत्वज को दिया जाता है। मधुपर्क कभी उच्छिष्ट नहीं होता, ऐसा अत्रि ऋषि का वचन है। गदाधर का मत है कि दही न मिलने पर उसके स्थान पर दूध अथवा जल मिलाकर भी मधुपर्क तैयार किया जा सकता है। आश्वलायन के अनुसार मधु न मिलने पर गुड़ मिलाया जा सकता है।

**(१०१) उदित व अनुदित हवन**

जो लोग सूर्योदय में होम करते हैं वह उदित हवन तथा सूर्यास्त के बाद किया जाने वाला हवन अनुदित हवन कहलाता है। यजुर्वेदी नित्य अनुदित हवन करते हैं। ऋग्वेदी उदित होम ही करते हैं। सामवेदियों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था है चाहे उदित करे, चाहे अनुदित।

(१०२) अनुष्ठानों में अनेक जगह उपवास रखने का आदेश दे रखा है। शास्त्रकार कहते हैं कि—'*उपवस्या अत्यशक्तौ सहस्रगायत्री जपः*' उपवास व्रत न रखने की स्थिति में साधक को एक हजार गायत्री-मन्त्रों का जप करना चाहिए।

**(१०३) कर्पासं कटियुक्तं च कौशेयं भोजनोत्तरम्।**
**क्षालनाच्छुद्धि माप्नोति ऊर्णावातेन शुद्धयति॥**
**विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गेरुद्राक्षधारणाम्।**
**नहि शिवमयीवाणीं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥**

कपास का वस्त्र (धोती वगैरा) कमर से एक बार उतरते ही अपवित्र हो जाती है। कौशेय (रेशमी वस्त्र) एक बार भोजन करने के बाद अशुद्ध हो जाता है। उपर्युक्त दोनों वस्त्र जल में प्रक्षालन करने पर शुद्ध हो जाते हैं परन्तु ऊनी वस्त्र प्रत्येक परिस्थिति में पवित्र ही रहता है। इसे बार-बार धोने की आवश्यकता नहीं। जिस व्यक्ति के ललाट पर विभूति (या तिलक) न हो, शरीर पर रुद्राक्ष न हो, जिसकी वाणी मीठी (कल्याणकारी) न हो, ऐसे ब्राह्मण व साधु को अस्पर्श चाण्डाल के समान दूर से त्याग देना चाहिए।

**(१०४) विवाह वेदी का प्रमाण-**

**विस्तार वा हस्त चतुष्टयेषु, हस्तोच्छ्रिता मंदिर वामभागे।**
**थम्भैचतुर्भिः सकलै प्रशस्ता, वेदी विवाहे कथिता मुनीन्द्रैः॥**
**कर्तव्य वेदी शुभ मण्डपश्च ईशानपूर्वोतरयो सदैवं।**
**सौभाग्य कन्या धन पुत्र युक्ता, शषैर्विभागेः विधवा भवन्ति॥**

विवाह की वेदी कन्या के हाथ के माप से चार हाथ चमचौरस होनी चाहिए तथा एक हाथ ऊंची या भूमि से चार अंगुल ऊंची, घर के वाम भाग में होनी चाहिए। विवाह वेदी के चारों कोनों से चार खम्भे होने चाहिए। उस वेदी पर सुन्दर मण्डप, सुन्दर रंगोली होनी चाहिए। इस प्रकार की वेदी कन्या को चिर सौभाग्य, धन-धान्य एवं सुन्दर पुत्रों से युक्त कर देती है। वेदी बनने में त्रुटि रखने से कन्या का सौभाग्य नष्ट होता है।

# तालाब, बगीचा, कुआं, बावली, पुष्करिणी, स्वीमिंगपूल तथा देवमन्दिर की प्रतिष्ठा आदि का विधान
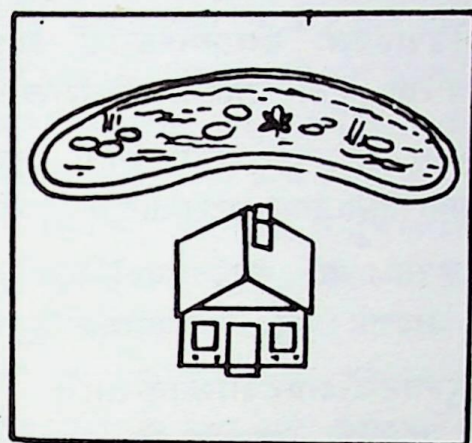
चित्र

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो! सूर्यपुत्र मनु ने जलाशय के भीतर अवस्थित मत्स्य रूपधारी भगवान् विष्णु से पूछा—'देवेश! अब मैं आपसे तालाब, बगीचा, कुआं, बावली, पुष्करिणी तथा देव मन्दिर की प्रतिष्ठा आदि की विधि * पूछ रहा हूं। नाथ! इन कार्यों में ऋत्विज कैसे होने चाहिए, वेदी किस प्रकार की बनती है, दक्षिणा का प्रमाण कितना होता है, समय कौन-सा उत्तम होता है, स्थान कैसा होना चाहिए, आचार्य किन-किन गुणों से युक्त हों तथा कौन से पदार्थ प्रशस्त माने गये हैं—यह सब हमें यथार्थ रूप से बतलाइये ॥१-३॥'

---

* इसकी पूरी विस्तृत विधि भविष्यपुराण, मध्यमपर्व भाग ३, अध्याय २०, (अग्निपुराण ६४) एवं प्रतिष्ठामहोदधि, प्रतिष्ठाकल्पलता, प्रतिष्ठातत्त्वादर्श आदि में है। पद्म० सृष्टिख० २७ की विधि तो ठीक इसी प्रकार है। भविष्यपुराण में प्रायः १ हजार श्लोक हैं। इस अध्याय में कुण्ड-मण्डप-वेदी-निर्माणसहित यज्ञ की भी संक्षिप्त विधि आ गयी है। इसकी विस्तृत जानकारी के लिए कुण्ड-मण्डप-सिद्धि तथा आह्निकसूत्रावली आदि द्रष्टव्य हैं।

मत्स्य उवाच

शृणु राजन् महाबाहो तडागादिषु यो विधिः।
पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते वेदवादिभिः॥ ४॥

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं सम्प्राप्ते चोत्तरायणे।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥ ५॥

प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः।
चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखाम्॥ ६॥

तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।
वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः॥ ७॥

नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलिविस्तृता॥ ८॥

गर्ताश्च हस्तमात्राः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः।
सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः॥ ९॥

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्॥ १०॥

शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै।
अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ ११॥

सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद् विजितेन्द्रियः।
कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद् द्विजोत्तमः॥ १२॥

प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च।
व्यजनं चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते॥ १३॥

**मत्स्यभगवान् ने कहा**—महाबाहु राजन्! सुनो; तालाब आदि की प्रतिष्ठा का जो विधान है, उसका वेदवक्ताओं, पुराणों में इस रूप में वर्णन किया है। उत्तरायण आने पर शुभ शुक्लपक्ष में ब्राह्मण द्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा ले। उस दिन ब्राह्मणों का वरण करे और तालाब के समीप, जहां की भूमि पूर्वोत्तर दिशा की ओर ढालू हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर सुन्दर वेदी बनाये। वेदी सब ओर समतल हो और उसका मुख चारों

दिशाओं में हो। फिर सोलह हाथ का मण्डप तैयार कराये जिसके चारों ओर एक-एक दरवाजा हो। वेदी के सब ओर कुण्डों का निर्माण कराये। नृप-नन्दन! कुण्डों की संख्या नौ, सात या पांच होनी चाहिए, इससे कम-बेशी नहीं। कुण्डों की लम्बाई-चौड़ाई एक-एक[१] अरत्नि की हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओं से सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिए। योनि की लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अंगुल की हो तथा कुण्ड की गहराई एक हाथ, मेखलाएं तीन पर्व[२] ऊंची होनी चाहिए। ये चारों ओर से एक समान—एक रंग की बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएं लगायी जायें। मण्डप के चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगद की शाखाओं के दरवाजे बनाये जायें। वहां आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणों का वरण किया जाये। वे सभी ब्राह्मण वेदों के पारगामी विद्वान् होने चाहिए। सब प्रकार के शुभ लक्षणों से सम्पन्न, मन्त्रों के ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को ही इस कार्य में पुरोहित-पद पर नियुक्त करना चाहिए। प्रत्येक कुण्ड के पास कलश, यज्ञ-सामग्री, पंखा, दो चंवर और दो दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें॥ ४-१३॥

तदनन्तर प्रत्येक देवता के लिए नाना प्रकार की चरू (पुरोडास, खीर, दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियों को पृथ्वी पर सब देवताओं को समर्पित करे। तीन अरत्नि के बराबर एक यूप (यज्ञ स्तम्भ) स्थापित किया जाये, जो किसी दूध वाले वृक्ष (वट, पाकड़ आदि) की शाखा का बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुष को यजमान के शरीर के बराबर ऊंचा यूप स्थापित करना चाहिए। उसके बाद पचीस ऋत्विजों का वरण करके उन्हें सोने के आभूषणों से विभूषित करे। सोने के बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अंगूठी, पवित्री तथा नाना प्रकार के वस्त्र—ये सभी आभूषणादि प्रत्येक ऋत्विज को बराबर-बराबर दे और आचार्य को दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपने को प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएं भी प्रदान करे। सोने का बना हुआ कछुआ और मगर, चांदी के मत्स्य और दुण्डूभ (गिरगिट), तांबे के केंकड़ा और मेंढक तथा लोहे के दो सूंस बनवाये (और सबको सोने के पात्र में रखे)। राजन्!

---

१. कोहनी से लेकर मुट्ठी बंधे हुए हाथ तक की लम्बाई को 'रत्नि' या 'अरत्नि' कहते हैं।

२. अङ्गुलियों के पोर को भी 'पर्व' कहते हैं।

इन सभी वस्तुओं को पहले से ही बनवाकर ठीक रखना चाहिए। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानों की बतायी हुई विधि के अनुसार सर्वौषधि-मिश्रित जल से स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रों के साथ पश्चिम द्वार से यज्ञमण्डप में प्रवेश करे। उस समय मांगलिक शब्द होने चाहिए और भेरी आदि बाजे बजने चाहिए॥ १४-२०.१/२॥

**चूर्णेन मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित्॥ २१॥**
**षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्।**
**तच्चुरग्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्॥ २२॥**

तदनन्तर विद्वान् पुरुष पांच रंग के चूर्णों से मण्डल बनाये और उसमें सोलह अरों से युक्त चक्र चिह्नित करे। उसके गर्भ में कमल का आकार बनाये। चक्र देखने में सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओर से गोल होने के साथ ही मध्य भाग में अधिक शोभायमान दीख पड़ता हो। बुद्धिमान् पुरुष उस चक्र को वेदी के ऊपर स्थापित कर उसके चारों ओर प्रत्येक दिशा में मन्त्र-पाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालों की स्थापना करे। फिर मध्य भाग में वरुण-सम्बन्धी-मन्त्र का उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करे और उसी के ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वती की भी स्थापना करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकों की शान्ति के लिए भूतसमुदाय को स्थापित करे। इस प्रकार पुष्प, नैवेद्य और फलों के द्वारा सबकी स्थापना करके उन सभी जलपूर्ण कलशों को वस्त्रों से आवेष्टित कर दे। फिर पुष्प और चन्दन के द्वारा उन्हें अलंकृत कर द्वार-रक्षा के लिए नियुक्त ब्राह्मणों से स्वयं आचार्य वेदपाठ करने के लिए प्रेम से कहे। पूर्व दिशा की ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिण द्वार पर दो यजुर्वेदी, पश्चिम द्वार पर दो सामवेदी तथा उत्तर द्वार पर दो अथर्ववेदी विद्वानों को रखना चाहिए। यजमान मण्डल के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख होकर बैठे और ऋत्विजों से पुनः आचार्य कहें—'आप यज्ञ प्रारम्भ करें।' तत्पश्चात् वे जप करने वाले ब्राह्मणों से कहें—'आपलोग उत्तम मन्त्र का जप करते रहें।' इस प्रकार सबको प्रेरित करके मन्त्रज्ञ पुरुष अग्नि का पर्युक्षण (चारों ओर जल छिड़क) कर वरुण-सम्बन्धी मन्त्रों का उच्चारण कर घी और समिधाओं की आहुति दे। ऋत्विजों को भी वरुण-सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा सब

ओर से हवन करना चाहिए। ग्रहों के निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञ-कर्म में इन्द्र, शिव, मरुद्गण, लोकपाल और विश्वकर्मा के निमित्त भी विधिपूर्वक होम करे॥ २१-३२॥

शान्तिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं च मङ्गलम्।
जपेयुः पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वृचः पृथक्॥ ३३॥

शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कुष्माण्डं जातवेदसम्।
सौरं सूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः॥ ३४॥

वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम्।
शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च॥ ३५॥

वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं च रथन्तरम्।
गवां व्रतं च काण्वं च रक्षोघ्नं च यमं तथा।
गायेयुः सामगा राजन् पश्चिमं द्वारमाश्रिताः॥ ३६॥

आथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा।
जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम्॥ ३७॥

पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनम्।
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमाद्ध्रदगोकुलात्।
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात् तथा॥ ३८॥

रोचनां च ससिद्धार्थां गन्धं गुग्गुलमेव च।
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चगव्यसमन्वितम्॥ ३९॥

प्रत्येकं तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः।

पूर्व द्वार पर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्तिसूक्त,* रुद्र सूक्त, पवमानसूक्त (ऋग्वेद ३।४।५ आदि), सुमंगलसूक्त (ऋ० २।४।२१) तथा पुरुषसूक्त

---

* यहां वेद-निर्देश महत्त्वपूर्ण है, किन्तु अन्यत्र पद्म, भविष्यादि पुराणों में ऋग्वेदीय ७।३४ के मत्स्य-पाठ रात्रिसूक्त की जगह 'शान्तिसूक्त' के सर्वप्रथम पाठ का ही निर्देश है, जिसका सर्वारम्भ में होना विशेष उचित जंचता है। तीनों वेद के शान्तिसूक्त तो प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेद के शान्तिसूक्त का नाम शंतातीयसूक्त है। पवमानसूक्त के बहिष्, माध्यंदिन, तृतीय और अथर्व—ये चार भेद हैं। यजुर्वेद में कूष्माण्डसूक्त भी उपरिनिर्दिष्ट के अतिरिक्त ४ हैं जो तै० ब्रा० २।४।४।६।६।१। ३।७।२। और तै० आरण्यक २।३।६ में प्राप्त होते हैं।

(१०।९०) का पृथक्-पृथक् जप करें। दक्षिण द्वार पर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र (अ० १६), रुद्र, सोम, कूष्माण्ड (२०।१४-१६), अग्नि (अ० २) तथा सूर्य-सम्बन्धी (अ० ३५) सूक्तों का जप करें। राजन्! पश्चिम द्वार पर रहने वाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम (२।२९।८०), पुरुषसूक्त (६१३-३१), सुपर्णसूक्त (साम० ३।२।१-३), रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम (१।२।२९), वामदेव्यसाम (५।६।२५), बृहत्साम (१।२२।३४), रौरक्साम, रथन्तरसाम (१।२२३), गोव्रत, काण्व, सूक्तसाम, रक्षोघ्न (३।१२।३९) और यमसम्बन्धी सूक्तों का गान करें। उत्तर द्वार के अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेव की शरण लें। शान्ति और पुष्टि सम्बन्धी मन्त्रों का जप करें। इस प्रकार पहले दिन मन्त्रों द्वारा देवताओं की स्थापना करके हाथी और घोड़े के पैरों के नीचे की, जिस पर रथ चलता हो—ऐसी सड़क की, बॉबी की, दो नदियों के संगम की, गोशाला की, साक्षात् गौओं के पैर के नीचे की तथा चौराहे की मिट्टी (सप्तमृत्तिका) लेकर कलशों में छोड़ दे। उसके बाद सर्वौषधि, गोरोचन, सरसों के दाने, चन्दन और गुग्गुल भी छोड़े। फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशों के जल से यजमान का विधिपूर्वक अभिषेक करे। इस प्रकार प्रत्येक कार्य महामन्त्रों के उच्चारण पूर्वक विधिसहित करना चाहिए॥३३-३९.१/२॥

पात्रीमादाय सौवर्णी पञ्चरत्नसमन्विताम्।
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः।
घृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ ४४॥

महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम्।
उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत्॥ ४५॥

आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामेत्यथेति च।
आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम्॥ ४६॥

पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात् समंततः।
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः॥ ४७॥

चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः।
दक्षिणा राजशार्दूल वरुणक्ष्मापणं ततः॥ ४८॥

कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च।
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत् पुनः।
हेमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत्॥ ४९॥

ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा।
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चशद् वाथ विंशतिः।
एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते॥ ५०॥

कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च।
एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च॥ ५१॥

मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रासादोद्यानभूमिषु।
अन्यं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा।
अल्पे त्वेकाग्निवत् कृत्वा वित्तशाठ्याद्दते नृणाम्॥ ५२॥

श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार शास्त्रविहित कर्म द्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभात का उदय होने पर व्रती हवन के अन्त में ब्राह्मणों को सौ, अड़सठ, पचास, छत्तीस अथवा पचीस गौ दान करे। राजन्! तदनन्तर ज्योतिषी द्वारा बतलाये गए शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आने पर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकार के बाजों की मनोहर ध्वनि के साथ एक गौ को सुवर्ण से अलंकृत करके तालाब के जल में उतारे और उसे सामगान करनेवाले ब्राह्मण को दान कर दे। तत्पश्चात् पञ्चरत्नों से युक्त सोने का पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदि को रखे और उसे किसी बड़ी नदी से मंगाये हुए जल से भर दे। फिर उस पात्र को दही-अक्षत से विभूषित कर वेद और वेदाङ्गों के विद्वान् चार ब्राह्मण हाथ से पकड़ें और अथर्ववेद के मन्त्रों से उसे स्नान कराये, फिर यजमान की प्रेरणा से उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाब के जल में डाल दे। इस प्रकार **'पुनर्मामेति०'** तथा **'आपो हिष्ठा मयो०'** इत्यादि मन्त्रों के द्वारा उसे जल में डालकर पुनः सब लोग यज्ञमण्डप में आ जायें और यजमान सदस्यों की पूजा कर सब ओर देवताओं के उद्देश्य से बलि अर्पण करे। इसके बाद लगातार चार दिनों तक हवन होना चाहिए। राजसिंह! चौथे दिन चतुर्थी-कर्म करना उचित है। उसमें भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। तदनन्तर वरुण से क्षमा-प्रार्थना करके यज्ञ-सम्बन्धी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें ऋत्विजों में बराबर बांट देना चाहिए। फिर मण्डप को भी विभाजित

करे। सुवर्णपात्र और शय्या व्रतारम्भ कराने वाले ब्राह्मण को दान कर दे। इसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार एक हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणों को भोजन कराये। पुराणों (एवं कल्पसूत्रों) में तालाब की प्रतिष्ठा के लिए यही विधि बतलाई गयी है। सभी कुआं, बावली और पुष्करिणी के लिए भी यही विधि है। देवताओं की प्रतिष्ठा में भी ऐसा ही विधान समझना चाहिए। प्रासाद (महल अथवा मन्दिर) और बगीचे आदि के प्रतिष्ठा-कार्य में केवल (कुछ) मन्त्रों का ही भेद है। विधि-विधान प्रायः एक-से ही है। उपर्युक्त विधि का यदि पूर्णतया पालन करने की शक्ति न हो तो आधे व्यय से भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्माजी ने कही है। किन्तु इस अल्प विधान में भी मनुष्य को कृपणता का त्याग कर एकाग्नि ब्राह्मण की भांति दान आदि करना चाहिए॥ ४०-५२॥

**प्रावृट्काले स्थिते तोये ह्यग्निष्टोमफलं स्मृतम्।**
**शरत्काले स्थितं यत् स्यात्तदुक्तफलदायकम्।**
**वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरे स्थितम्॥ ५३॥**

**अश्वमेधसमं प्राह वसन्तसमये स्थितम्।**
**ग्रीष्मेऽपि तत्स्थितं तोयं राजसूयाद् विशिष्यते॥ ५४॥**

जिस पोखरे में केवल वर्षाकाल में ही जल रहता है, वह अग्निष्टोम-यज्ञ के बराबर फल देनेवाला होता है। जिसमें शरत्काल तक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकाल तक रहनेवाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञ का फल देता है। वसन्तकाल तक टिकने वाले जल को अश्वमेध-यज्ञ के समान फलदायक बतलाया गया है तथा जो जल ग्रीष्मकाल तक वर्तमान रहता है, यह राजसूय-यज्ञ से भी अधिक फल देनेवाला होता है॥ ५३-५४॥

# प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदि की प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऋषियों ने देवता आदि की प्रतिष्ठा में माघ, फाल्गुन आदि छः मास नियत किये हैं। जब तक भगवान् विष्णु शयन नहीं करते, तब तक प्रतिष्ठा आदि कार्य करने चाहिए। शुक्र, गुरु, बुध, सोम— ये चार वार शुभ हैं।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ *जिस लग्न में शुभ ग्रह स्थित हों एवं शुभ ग्रहों की दृष्टि* ॐ
ॐ *पड़ती हो, उस लग्न में प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तिथियों में* ॐ
ॐ *द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी तथा* ॐ
ॐ *पूर्णिमा तिथियां उत्तम हैं। प्राण-प्रतिष्ठा एवं जलाशय आदि* ॐ
ॐ *कार्य प्रशस्त शुभ मुहूर्त में ही करने चाहिए।* ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

देव-प्रतिष्ठा और बड़े यागों में सोलह हाथ का एवं चार द्वारों से युक्त मण्डप का निर्माण करके उसके दिशा-विदिशाओं में शुभ्र ध्वजाएं फहरानी चाहिए। पाकड़, गूलर, पीपल तथा बरगद के तोरण चारों द्वारों पर पूर्वादि क्रम से बनाये। मण्डप को मालाओं आदि से अलंकृत करे। दिक्पालों की पताकाएं उनके वर्णों के अनुसार बनवानी चाहिए। मध्य में नीलवर्ण की पताका लगानी चाहिए। ध्वज-दण्ड यदि दस हाथ का हो तो पताका पांच हाथ की बनवानी चाहिए। मण्डप के द्वारों पर कदली-स्तम्भ रखना चाहिए तथा मण्डप को सुसज्जित करना चाहिए। मण्डप के मध्य में एवं कोणों में वेदियों की रचना करनी चाहिए। योनि और मेखला-मण्डित कुण्ड का तथा वेदी पर सर्वतोभद्र-चक्र का निर्माण करना चाहिए। कुण्ड के ईशान-भाग में कलश की स्थापना कर उसे माला आदि से अलंकृत करना चाहिए।

यजमान पञ्चदेव एवं यज्ञेश्वर नारायण को नमस्कार कर प्रतिष्ठा आदि क्रिया का संकल्प करके ब्राह्मणों से इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करे—'मैं इस पुण्य देश में शास्त्रोक्त-विधि से जलाशय आदि की प्रतिष्ठा करूंगा। आप सभी मुझे इसके लिए आज्ञा प्रदान करें।' ऐसा कहकर मातृ-श्राद्ध एवं वृद्धि-श्राद्ध सम्पन्न करे। भेरी आदि के मंगलमय वाद्यों के साथ मण्डप में षोडशाक्षर

***'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।'*** आदि मन्त्र लिखे एवं इन्द्रादि दिक्पाल देवताओं तथा उनके आयुधों आदि का भी यथास्थान चित्रण करे। फिर आचार्य और ब्रह्मा का वरण करे। वरण के अनन्तर आचार्य तथा ब्रह्मा यजमान से प्रसन्न हो उसके सर्वविध कल्याण की कामना करके **'स्वस्ति'** ऐसा कहे। अनन्तर सपत्नीक यजमान को सर्वौषधियों से **'आपो हि ष्ठा०'** (यजु० ११।५०) इस मन्त्र द्वारा ब्रह्मा, ऋत्विक् आदि का स्नान करायें। यव, गोधूम, नीवार, तिल, सांवा, शालि, प्रियंगु और व्रीहि—ये आठ सर्वौषधि कहे गये हैं। आचार्यादि द्वारा अनुज्ञात सपत्नीक यजमान शुक्ल वस्त्र तथा चन्दन आदि धारण कर पुरोहित को आगे कर मंगल-घोष के साथ पुत्र-पौत्रादि सहित पश्चिम द्वार से यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करे। वहां वेदी की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे। ब्राह्मण की आज्ञा के अनुसार यजमान निश्चित आसन पर बैठे। ब्राह्मण लोग स्वस्तिवाचन करें। अनन्तर यजमान पांच देवों का पूजन करे। फिर सरसों आदि से विघ्नकर्ता भूतों का अपसर्पण कराये। यजमान अपने बैठने के आसन का पुष्प-चन्दन से अर्चन करे। अनन्तर भूमि का हाथ से स्पर्श कर इस प्रकार कहे—'पृथ्वी माता! तुमने लोकों को धारण किया है और तुम्हें विष्णु ने धारण किया है। तुम मुझे धारण करो और मेरे आसन को पवित्र करो[१]।' फिर सूर्य को अर्घ्य देकर गुरु को हाथ जोड़कर प्रणाम करे। हृदय कमल में इष्ट देवता का ध्यान कर तीन प्राणायाम करे। ईशान दिशा में कलश के ऊपर विघ्नराज गणेश जी की गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्य आदि से **'गणानां त्वा०'** (यजु० २३।१९) मन्त्र से पूजन करे। अनन्तर **'आ ब्रह्मन्०'** (यजु० २२।२२) इस मन्त्र से ब्रह्मा जी की, **'तद्विष्णोः०'** (यजु० ६।५) इस मन्त्र से भगवान् विष्णु की पूजा करे। फिर वेदी के चारों ओर सभी देवताओं को स्व-स्व स्थान पर स्थापित कर उनका पूजन करे। इसके बाद **'राजाधिराजाय प्रसह्य०'** इस मन्त्र से भूशुद्धि कर श्वेत पद्मासन पर विराजमान, शुद्ध स्फटिक तथा शंख, कुन्द एवं इन्दु के समान उज्ज्वल वर्ण, किरीट-कुण्डलधारी, श्वेत कमल, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र से अलंकृत, श्वेत गन्ध से अनुलिप्त, हाथ में पाश लिए हुए, सिद्ध, गन्धर्वों तथा देवताओं से स्तूयमान, नागलोक की शोभारूप,

---

१.पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता॥
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु।

*(मध्यमपर्व २/२०/२३-२४)*

मकर, ग्राह, कूर्म आदि नाना जलचरों से आवृत्त, जलशायी भगवान् वरुण देव का ध्यान करे। ध्यान के अनन्तर पञ्चाङ्गन्यास करे। अर्धस्थापन कर मूल मन्त्र का जप करे तथा उस जल से आसन, यज्ञ-सामग्री आदि का प्रोक्षण करे। फिर भगवान् सूर्य को अर्घ्य दे। अनन्तर ईशानकोण में भगवान् गणेश, अग्निकोण में गुरुपादुका तथा अन्य देवताओं का यथाक्रम पूजन करे। मण्डल के मध्य में शक्ति, सागर, अनन्त, पृथ्वी, आधार शक्ति, कूर्म, सुमेरु तथा मन्दर और पञ्चतत्त्वों का साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। पूर्व दिशा में कलश के ऊपर श्वेत अक्षत और पुष्प लेकर भगवान् वरुण देव का आवाहन करे। वरुण को आठ मुद्रा दिखाये। गायत्री से स्नान कराये तथा पाद्य, अर्घ्य, पुष्पाञ्जलि आदि उपचारों से वरुण का पूजन करे। ग्रहों, लोकपालों, दस दिक्पालों तथा पीठ पर ब्रह्मा, शिव, गणेश और पृथ्वी का गन्ध, चन्दन आदि से पूजन करे। पीठ के ईशानादि कोणों में कमला, अम्बिका, विश्वकर्मा, सरस्वती तथा पूर्वादि द्वारों में उनचास मरुद्गणों का पूजन करे। पीठ के बाहर पिशाच, राक्षस, भूत, बैताल आदि की पूजा करे। कलश पर सूर्यादि नवग्रहों का आह्वान एवं ध्यान कर पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य एवं बलि आदि द्वारा मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करे और उनकी पताकाएं उन्हें निवेदित करे। विधिपूर्वक सभी देवताओं का पूजन कर शतरुद्रीय का पाठ करना चाहिए। हवन करने के समय वरुणसूक्त, रात्रिसूक्त, रौद्रसूक्त, पवमानसूक्त, पुरुषसूक्त, शाक्तसूक्त, अग्निसूक्त, सौरसूक्त, ज्येष्ठसाम, वामदेवसाम, रथन्तरसाम तथा रक्षोघ्र आदि सूक्तों का पाठ करना चाहिए। अपने गृह्योक्त-विधि से कुण्डों में अग्नि प्रदीप्त कर हवन करना चाहिए। जिस देव का यज्ञ होता है अथवा जिस देवता की प्रतिष्ठा हो उसे प्रथम आहुतियां देनी चाहिए। अनन्तर तिल, आज्य, पायस, पत्र, पुष्प, अक्षत तथा समिधा आदि से अन्य देवताओं के मन्त्रों से उन्हें आहुतियां देनी चाहिए।

पंचदिवसात्मक प्रतिष्ठा याग में प्रथम दिन देवताओं का आवाहन एवं स्थापन करना चाहिए। दूसरे दिन पूजन और हवन, तीसरे दिन बलि-प्रदान, चौथे दिन चतुर्थीकर्म और पांचवें दिन नीराजन करनां चाहिए। नित्यकर्म करने के अनन्तर ही नैमित्तिक कर्म करने चाहिए। इसी से कर्मफल की प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सर्वप्रथम **प्रतिष्ठाय देवता** का सर्वौषधिमिश्रित जल से ब्राह्मणों द्वारा वेदमन्त्रों के पाठपूर्वक महास्नान तथा मन्त्राभिषेक कराये, तदनन्तर

चन्दन आदि से उसे अनुलिप्त करे। तत्पश्चात् आचार्य आदि की पूजा कर उन्हें अलंकृत कर गोदान करे। फिर मंगल-घोषपूर्वक तालाब में जल छोड़ने के लिए संकल्प करे। इसके बाद उस तालाब के जल में नागयुक्त वरुण, मकर, कच्छप आदि की अलंकृत प्रतिमाएं छोड़े। वरुण देव की विशेष रूप से पूजा कर उन्हें अर्घ्य निवेदित करे। पुनः उसी तालाब के जल, सप्तमृत्तिका-मिश्रित जल, तीर्थ-जल, पंचामृत, कुशोदक तथा पुष्पजल आदि से वरुण देव को स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करे। सभी देवताओं को बलि प्रदान करे। मंगलघोष के साथ नीराजन कर प्रदक्षिणा करे। एक वेदी पर भगवान् वरुण तथा पुष्करिणी देवी की यथाशक्ति स्वर्ण आदि की प्रतिमा बनाकर भगवान् वरुणदेव के साथ देवी पुष्करिणी का विवाह कराकर उन्हें वरुण देव के लिए निवेदित कर दे। एक काष्ठ का यूप जो यजमान की ऊंचाई के बराबर हो, उसे अलंकृत कर तड़ाग के ईशान दिशा में मन्त्रपूर्वक गाड़कर स्थिर कर दे। प्रासाद के ईशान कोण में, प्रपा के दक्षिण भाग में तथा आवास के मध्य में यूप गाड़ना चाहिए। इसके अनन्तर दिक्पालों को बलि प्रदान करे। ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा प्रदान करे।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ उस तड़ाग के जल के मध्य में **'जलमातृभ्यो नमः'** ऐसा ॐ
ॐ कहकर जलमातृकाओं का पूजन करे और मातृकाओं से ॐ
ॐ प्रार्थना करे कि मातृका देवियो! तीनों लोकों के चराचर प्राणियों ॐ
ॐ की संतृप्ति के लिए यह जल मेरे द्वारा छोड़ा गया है, यह ॐ
ॐ जल संसार के लिए आनन्ददायक हो। ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इस जलाशय की आप लोग रक्षा करें। ऐसी ही मंगल-प्रार्थना भगवान् वरुणदेव से भी करें। अनन्तर वरुणदेव को बिम्ब, पद्म तथा नागमुद्राएं दिखाये। ब्राह्मणों को उस जलाशय का जल भी दक्षिणा के रूप में प्रदान करे। अनन्तर तर्पण कर अग्नि की प्रार्थना करे। स्वयं भी उस जल का पान करे। पितरों को अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर पुनः वरुणदेव की प्रार्थना कर, जलाशय की प्रदक्षिणा करे। फिर ब्राह्मणों द्वारा वेद-ध्वनियों के उच्चारणपूर्वक यजमान अपने घर में प्रवेश करे और ब्राह्मणों, दीनों, अन्धों, कृपणों तथा कुमारिकाओं को भोजन कराकर संतुष्ट करे तथा भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे।

# यज्ञादि कर्मों के मण्डल-निर्माण का विधान तथा क्रौञ्चादि पक्षियों के दर्शन का फल

**सूतजी ने कहा**—ब्राह्मणगण! अब मैं आपलोगों से पुराणों में वर्णित मण्डल-निर्माण के विषय में कहूंगा। बुद्धिमान् व्यक्ति हाथ से नाप कर मण्डल का माप निश्चित करे। फिर उसे तत्तत् स्थानों में विधि-विहित लाल आदि रंग भरे। उनमें देवताओं के अस्त्र-विशेष बाहर, मध्य और कोण में लिखकर प्रदर्शित करे। शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम और कृष्ण आदि का अनुक्रम से निर्देश करे। फिर सीमा-रेखा को एक अंगुल ऊंचा उन-उन अर्ध-भागों से युक्त करे। शिव और विष्णु के महायाग में शम्भु से प्रारम्भ कर देवताओं की परिकल्पना—ध्यान करे। प्रतिष्ठा में रामपर्यन्त, जलाशय में कृष्णपर्यन्त और दुर्गा याग में ब्रह्मादि की परिकल्पना करे। मण्डल का निर्माण अधम ब्राह्मण एवं शूद्र न करे। सूतजी ने पुन: कहा—अब मैं क्रौञ्च का स्वरूप बतलाता हूं। सभी शास्त्रों में उसका उल्लेख मिलता है जो गोपनीय है। यह क्रौञ्च (पक्षी-विशेष)—महाक्रौञ्च, मध्य-क्रौञ्च और कनिष्ठ-क्रौञ्च-भेद से तीन प्रकार का वर्णित है। इसका दर्शन सैकड़ों जन्मों में किये गए पापों को नष्ट करता है। मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौञ्च और कपि को घर में, खेत में और वृक्ष पर भूल से भी देख ले तो उसको नमस्कार करे। ऐसा करने से दर्शक के सैकड़ों ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके पोषण से कीर्ति मिलती है और दर्शन से धन तथा आयु बढ़ती है। मयूर ब्रह्मा का, वृषभ सदाशिव का, सिंह दुर्गा का, क्रौञ्च नारायण का, बाघ त्रिपुरसुन्दरी-लक्ष्मी का रूप है। स्नान कर यदि प्रतिदिन इनका दर्शन किया जाये तो ग्रहदोष मिट जाता है। इसलिए प्रयत्नपूर्वक इनका पोषण करना चाहिए। सभी यज्ञों में सर्वतोभद्रमण्डल सभी प्रकार की पुष्टि प्रदान करता है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने साधकों के हित के लिए उसका प्रकाश किया है। सम्पूर्ण स्मार्त-यागों में सर्वतोभद्रमण्डल का विशेष रूप से निर्माण किया जाता है और तत्-तत् स्थानों में तत्-तत् रंगों से पूरित किया जाता है।

# मंगल कलश

चित्र

अब मैं कलशों के विषय में निश्चित मत प्रकट करता हूं, जिसका उपयोग करने से मंगल होता है और यात्रा में सिद्धि प्राप्त होती है। कलश में सात अंग अथवा पांच अंग होते हैं। कलश में केवल जल भरने से ही सिद्धि नहीं होती, इसमें अक्षत और पुष्पों से देवताओं का आवाहन कर उनका पूजन भी करना चाहिए—ऐसा न करने से पूजन निष्फल हो जाता है। वट, अश्वत्थ, धव-वृक्ष और बिल्व-वृक्ष के पल्लवों को कलश के ऊपर रखे[१]। कलश सोना, चांदी, तांबा या मृत्तिका के बनाये जाते हैं। कलश का निर्माण अपनी सामर्थ्य के अनुसार करे। कलश अभेद्य, निश्छिद्र, नवीन, सुन्दर एवं जल से पूरित होना चाहिए। कलश के निर्माण के विषय में भी निश्चित प्रमाण बतलाया गया है। बिना मान के बना हुआ कलश उपयुक्त नहीं माना गया है। जहां देवताओं का आवाहन-पूजन किया जाये, उन्हीं की सन्निधि में कलश की स्थापना करनी चाहिए। व्यतिक्रम करने पर फल का अपहरण राक्षस कर लेते हैं। स्वस्तिक बनाकर उसके ऊपर निर्दिष्ट विधि से कलश स्थापित कर वरुणादि देवताओं का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए।

---

१. प्रचलित परम्परा में आम, पीपल, बरगद, प्लक्ष (पाकड़) तथा उदुम्बर (गूलर)—ये पंच-पल्लव कहे गये हैं।

# देव-प्रतिमानिर्माण-विधि

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! अब मैं प्रतिमा का शास्त्रसम्मत लक्षण कहता हूं। उत्तम लक्ष्णों से रहित प्रतिमा का पूजन नहीं करना चाहिए। पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका, रत्न, ताम्र एवं अन्य धातु—इनमें से किसी की भी प्रतिमा बनायी जा सकती है[1]। उनके पूजन से सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। मन्दिर के माप के अनुसार शुभ लक्षणों से सम्पन्न प्रतिमा बनवानी चाहिए। घर में आठ अंगुल से अधिक ऊंची मूर्ति का पूजन नहीं करना चाहिए। देवालय के द्वार की जो ऊंचाई हो उसे आठ भागों में विभक्त कर तीन भाग के माप में पिण्डिका तथा दो भाग के माप में देव-प्रतिमा बनाये। चौरासी अंगुल (साढ़े तीन हाथ) की प्रतिमा वृद्धि करने वाली होती है। प्रतिमा के मुख की लंबाई बारह अंगुल होनी चाहिए। मुख के तीन भाग के प्रमाण में चिबुक, ललाट तथा नासिका होनी चाहिए। नासिका के बराबर ही कान और ग्रीवा बनानी चाहिए। नेत्र दो अंगुल-प्रमाण के बनाने चाहिए। नेत्र के मान के तीसरे भाग में आंख की तारिका बनानी चाहिए। तारिका के तृतीय भाग में सुन्दर दृष्टि बनानी चाहिए। ललाट, मस्तक तथा ग्रीवा—ये तीनों बराबर माप की हों। सिर का विस्तार बत्तीस अंगुल होना चाहिए। नासिका, मुख और ग्रीवा से हृदय एक सीध में होना चाहिए। मूर्ति की जितनी ऊंचाई हो उसके आधे में कटि-प्रदेश बनाना चाहिए। दोनों बाहु, जंघा तथा ऊरु परस्पर समान हों। टखने चार अंगुल ऊंचे बनाने चाहिए। पैर के अंगूठे तीन अंगुल के हों और उसका विस्तार छः अंगुल का हो। अंगूठे के बराबर ही तर्जनी होनी चाहिए। शेष अंगुलियां क्रमशः छोटी हों तथा सभी अंगुलियां नखयुक्त बनाये। पैर की लंबाई चौदह अंगुल में बनानी चाहिए। अधर, ओष्ठ, वक्षःस्थल, भ्रू, ललाट, गण्डस्थल तथा कपोल भरे-पूरे सुडौल सुन्दर तथा मांसल बनाने चाहिए, जिससे

---

१. मत्स्यपुराण में प्रतिमा-निर्माण के लिए निम्न वस्तुओं को ग्राह्य बतलाया है—

**सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा। शैली दारुमयी चापि लौहसीसमयी तथा॥**
**रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा। शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते॥**

सुवर्ण, चांदी, तांबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल और कांसा-मिश्रित अथवा शुभ काष्ठों की बनी हुई देवप्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है। (२५८।२०-२१)

प्रतिमा देखने में सुन्दर मालूम हो। नेत्र विशाल, फैले हुए तथा लालिमा लिए हुए बनाने चाहिए।

इस प्रकार के शुभ लक्षणों से सम्पन्न प्रतिमा शुभ और पूज्य मानी गयी है। प्रतिमा के मस्तक में मुकुट, कण्ठ में हार, बाहुओं में कटक और अंगद पहनाने चाहिए। मूर्ति सर्वाङ्ग-सुन्दर, आकर्षक तथा तत्तत् अंगों के आभूषणों से अलंकृत होनी चाहिए। भगवान् की प्रतिमा में देवकलाओं का आधान होने पर भगवत्प्रतिमा प्रत्येक को अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेती है और अभीष्ट वस्तु का लाभ कराती है।

जिसका मुखमण्डल दिव्य प्रभा से जगमगा रहा हो, कानों में चित्र-विचित्र मणियों के सुन्दर कुण्डल तथा हाथों में कनक-मालाएं और मस्तक पर सुन्दर केश सुशोभित हों, ऐसी भक्तों को वर देने वाली, स्नेह से परिपूर्ण, भगवती की सौम्य कैशोरी प्रतिमा का निर्माण कराये। भगवती विधि पूर्वक अर्चना करने पर प्रसन्न होती हैं और उपासकों के मनोरथों को पूर्ण करती हैं।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

ॐ *नव ताल (साढ़े चार हाथ) की विष्णु की प्रतिमा बनवानी* ॐ
ॐ *चाहिए। तीन ताल की वासुदेव की, पांच ताल की नृसिंह तथा* ॐ
ॐ *हयग्रीव की, आठ ताल की नारायण की, पांच ताल की महेश* ॐ
ॐ *की, नव ताल की भगवती दुर्गा की, तीन-तीन ताल की लक्ष्मी* ॐ
ॐ *और सरस्वती की तथा सात ताल की भगवान् सूर्य की प्रतिमा* ॐ
ॐ *बनवाने का विधान है।* ॐ

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

भगवान् की मूर्ति की स्थापना तीर्थ, पर्वत, तालाब आदि के समीप करनी चाहिए अथवा नगर के मध्यभाग में या जहां ब्राह्मणों का समूह हो, वहां करनी चाहिए। इनमें भी अविमुक्त आदि सिद्ध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा करने वाले के पूर्वा पर अनन्त कुलों का उद्धार हो जाता है। कलियुग में चन्दन, अगरु, बिल्व, श्रीपर्णिक तथा पद्मकाष्ठ आदि काष्ठों के अभाव में मृण्मयी मूर्ति बनवानी चाहिए। (अध्याय १२)।

# मण्डप, महायूप और पौंसले आदि की प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—द्विजगणो! अब मैं यागादि के निमित्त निर्मित होने वाले मण्डपों की प्रतिष्ठा-विधि बतलाता हूं। वह मण्डप शिलामय हो या काष्ठमय अथवा तृण-पत्रादि से निर्मित हो—ऐसी स्थिति में अधिवासन के प्रारम्भ में शुभ-लग्न-मुहूर्त में घट-स्थापन करे। उस कलश पर सूर्य, सोम और विष्णु की अर्चना करे। **'आपो हि ष्ठा०'** (यजु० ११।५०) इस मन्त्र द्वारा कुशोदक से तथा **'आप्यायस्व०'** (यजु० १२।११४) इस मन्त्र द्वारा सुगन्ध-जल से प्रोक्षण करे। **'गन्धद्वारा०'** (श्रीसूक्त ९) इस ऋचा से चन्दन, सिन्दूर, आलता और अञ्जन समर्पण करे। फिर दूसरे दिन प्रातः वृद्धि-श्राद्ध करे। शुभ लक्षण वाले मण्डप में दिक्पालों की स्थापना करे। मध्य में वेदी के ऊपर मण्डल चित्रित करे। उसमें सूर्य, सोम, विष्णु की तथा कलश पर गणेश, नवग्रह आदि की पूजा करे। सूर्य के लिए १०८ बार पायस-होम करे। विष्णु और सोम का उद्देश्य कर बारह आहुतियां एवं पायस-बलि दे। वास्तु-देवता का पूजन करे और उनको अर्घ्य देकर विधिवत् आहुति प्रदान करे, फिर उस मण्डल को संकल्प पूर्वक योग्य ब्राह्मण के लिए समर्पित कर दे। उसे विधिवत् दक्षिणा दे और सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करे। तृण-मण्डप में विशेष रूप से वासुदेव के साथ भगवान् सूर्य की पूजा करे। एक घट के ऊपर वरदायक भगवान् गणेश जी की पूजा कर विसर्जन करे। ईशानकोण में यूप स्थापित कर सभी दिशाओं में ध्वजा फहराये।

ब्राह्मणो! अब मैं चार हाथ से लेकर सोलह हाथ के प्रमाण में निर्मित महायूप की एवं पौंसला तथा कुएं आदि की प्रतिष्ठा-विधि बतला रहा हूं। इनकी प्रतिष्ठा में गर्ग-त्रिरात्र यज्ञ करना चाहिए। पौंसले के पश्चिम भाग में श्वेत कुम्भ पर भगवान् वरुण को स्थापित कर 'गायत्री' मन्त्र तथा **'आपो हि ष्ठा०'** ( यजु० ११।५०) इन मन्त्रों से उन्हें स्नान कराना चाहिए। उसके बाद गन्ध, तेल, पुष्प और धूप आदि से मन्त्रपूर्वक उनकी अर्चना कर उन्हे वस्त्र, नैवेद्य, दीप तथा चन्दन आदि निवेदित करना चाहिए। प्रतिष्ठा के अन्त

में श्राद्ध कर एक ब्राह्मण-दम्पति को भोजन कराना चाहिए। आठ हाथ का एक मण्डप बनाकर उसमें कलश की स्थापना करे। उस पर नारायण के साथ वरुण, शिव, पृथ्वी आदि का तत्-तत् मन्त्रों से पूजन करे, उसके बाद स्थालीपाक-विधान से हवन के लिए कुशकण्डिका करे। भगवान् वरुण का पूजन कर स्रुवा द्वारा उन्हें 'वरुणस्य०' (यजु० ४। ३६) इत्यादि मन्त्रों से दस आहुतियां प्रदान करे। अन्य देवताओं के लिए क्रमशः एक-एक आहुति दे। उसके बाद स्विष्टकृत् हवन करे और अग्नि की सप्तजिह्वाओं के नाम से चरु का हवन करे। तदनन्तर सभी को नैवेद्य और बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् संकल्प-वाक्य पढ़कर कूप का उत्सर्जन कर दे। ब्राह्मणों को पयस्विनी गाय एवं दक्षिणा प्रदान करे। यदि छोटे कूप की प्रतिष्ठा करनी हो तो गणेश तथा वरुण देवता की कलश के ऊपर विधिवत् पूजा करनी चाहिए। लाल सूत्र से कलश को वेष्टित करना चाहिए। यूप स्थापित करने के पश्चात् संकल्प पूर्वक कूप का उत्सर्जन करना चाहिए। ब्राह्मणों को विधिवत् सम्मानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए।

# अधिवासन कर्म

'**अधिवास**' में 'अधि' उपसर्ग+वस् धातु+णिव प्रत्यय का अर्थ होता है। यज्ञारम्भ के पूर्व देवता का आह्वान पूजन इत्यादि। मूर्ति में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करने के पहले यह प्रक्रिया होती है। अधिवास का तात्पर्य होता है मूर्ति स्थापना के मुख्य स्थान से अलग हटकर अन्यत्र रखना और वहां धूप-गन्ध दानादि संस्कारों द्वारा देवता को भावित करना ही '**अधिवास**' कहलाता है। अधिवासन कर्म मूर्ति के प्राण-प्रतिष्ठा की मुख्य आधार प्रक्रिया है जिसका ज्ञान प्रबुद्ध पाठकों को होना आवश्यक है।

**सूतजी कहते हैं**—ब्राह्मणो! देव-प्रतिष्ठा के पहले दिन देवताओं का अधिवासन करना चाहिए और विधि के अनुसार अधिवासन के पदार्थ—धान्य आदि की प्रतिष्ठा कर यूप आदि को भी स्थापित कर लेना चाहिए। कलश के ऊपर गणेश जी की स्थापना कर दिक्पाल और ग्रहों का पूजन करना चाहिए। तड़ाग तथा उद्यान की प्रतिष्ठा में प्रधानरूप से ब्रह्मा की, शान्ति-याग में तथा प्रपायाग में वरुण की, शैव-प्रतिष्ठा में शिव की और सोम, सूर्य तथा विष्णु एवं अन्य देवताओं का भी पाद्य-अर्घ्य आदि से अर्चन करना चाहिए। '**द्रुपदादिव०**' (यजु० २०।२०) इस मन्त्र से पहले प्रतिमा को स्नान कराये। स्नान के अनन्तर मन्त्रों द्वारा गन्ध, फूल, फल, दूर्वा, सिंदूर, चन्दन, सुगन्धित तैल, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र आदि उपचारों से पूजन करे। मण्डप के अंदर प्रधान देवता का आवाहन करे और उसी में अधिवासन करे। सुरक्षा-कर्मियों द्वारा उस स्थान की सुरक्षा करवाये। तदनन्तर आचार्य, यजमान और ऋत्विक् मधुर पदार्थों का भोजन करें। बिना अधिवासन-कर्म सम्पन्न किये देवप्रतिष्ठा का कोई फल नहीं होता। नित्य, नैमित्तिक अथवा काम्य कर्मों में विधि के अनुसार कुण्ड-मण्डप की रचना कर हवन-कार्य करना चाहिए।

# अधिवासन कर्मयोग्य ब्राह्मणों का चयन

ब्राह्मणो! यज्ञ कार्य में अनुष्ठान के प्रमाण से आठ होता, आठ द्वारपाल और आठ याजक ब्राह्मण होने चाहिए। ये सभी ब्राह्मण शुद्ध, पवित्र तथा उत्तम लक्षणों से सम्पन्न वेदमन्त्रों में पारङ्गत होने चाहिए। एक जप करने वाले जापक का भी वरण करना चाहिए। ब्राह्मणों की गन्ध, माल्य, वस्त्र तथा दक्षिणा आदि के द्वारा विधि के अनुसार पूजा करनी चाहिए। उत्तम सर्वलक्षण सम्पन्न तथा विद्वान् ब्राह्मण न मिलने पर किये गए यज्ञ का उत्तम फल प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण वरण के समय गोत्र और नाम का निर्देश करे। तुलापुरुष के दान में, स्वर्ण-पर्वत के दान में, वृषोत्सर्ग में एवं कन्यादान में गोत्र के साथ प्रवरका भी उच्चारण करना चाहिए। मृत भार्यावाला, कृपण, शूद्र के घर में निवास करने वाला, बौना, वृषलीपति, वन्धुद्वेषी, गुरुद्वेषी, स्त्रीद्वेषी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, भग्रदन्त, दाम्भिक, प्रतिग्राही, कुनखी, व्यभिचारी, कुष्ठी, निद्रालु, व्यसनी, अदीक्षित, महाव्रणी, अपुत्र तथा केवल अपना ही भरण-पोषण करनेवाला— ये सब यज्ञ के पात्र नहीं हैं। ब्राह्मणों के वरण एवं पूजन के मन्त्रों के भाव इस प्रकार हैं—आचार्यदेव! आप ब्रह्म की मूर्ति हैं। इस संसार से मेरी रक्षा करें। गुरो! आपके प्रसाद से ही यह यज्ञ करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। चिरकाल तकं मेरी कीर्ति बनी रहे। आप मुझपर प्रसन्न होवें, जिससे मैं यह कार्य सिद्ध कर सकूं। आप सब भूतों के आदि हैं, संसार रूपी समुद्र से पार करानेवाले हैं। ज्ञानरूपी अमृत के आप आचार्य हैं। आप यजुर्वेद स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। ऋत्विज्गणो! आप षडङ्ग वेदों के ज्ञाता हैं, आप हमारे लिए मोक्षप्रद हों। मण्डल में प्रवेश करके उन ब्राह्मणों को अपने-अपने स्थानों पर क्रमशः आदर से बैठाये। वेदी के पश्चिम भाग में आचार्य को बैठाये, कुण्ड के अग्र-भाग में ब्रह्मा को बैठाये। होता, द्वारपाल आदि को भी यथास्थान आसन दे। यजमान उन आचार्य आदि को सम्बोधित कर प्रार्थना करे कि आप सब नारायण स्वरूप हैं। मेरे यज्ञ को सफल बनावें। यजुर्वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले ब्रह्मरूप आचार्य! आपको प्रणाम है। आप सम्पूर्ण यज्ञ कर्म के साक्षीभूत

हैं। ऋग्वेदार्थ को जाननेवाले इन्द्ररूप ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। इस यज्ञकर्म की सिद्धि के लिए ज्ञानरूपी मङ्गलमूर्ति भगवान् शिव को नमस्कार है। आप सभी दिशाओं-विदिशाओं से इस यज्ञ की रक्षा करें। दिक्पालरूपी ब्राह्मणों को नमस्कार है।

व्रत, देवार्चन तथा यागादि कर्म संकल्प पूर्वक करने चाहिए। काम संकल्पमूलक और यज्ञ संकल्पसम्भूत है। संकल्प के बिना जो धर्माचरण करता है, वह कोई फल नहीं प्राप्त कर सकता। गंगा, सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, रात्रि, दिन, सूर्य, सोम, यम, काल, पंच महाभूत—ये सब शुभाशुभ कर्म के साक्षी है[१]। अतएव विचारवान् मनुष्य को अशुभ कर्मों से विरत हो धर्म का आचरण करना चाहिए।

## धर्मदेवता का स्वरूप

धर्मदेव शुभ शरीरवाले एवं श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। वृषस्वरूप ये धर्मदेव अपने दोनों हाथों में वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं। ये सभी प्राणियों को सुख देते हैं और सज्जनों के लिए एकमात्र मोक्ष के कारण हैं। इस प्रकार के स्वरूप वाले भगवान् धर्मदेव सत्पुरुषों के लिए कल्याणकारी हों तथा सदा सबकी रक्षा करें[२]।

यदि भगवान् का मन्दिर यज्ञस्थल से दूर हो तो सारे अधिवास कर्मकुटी में करके फिर वहां भी भगवान् को श्रृंगार कराकर आरती करे।

मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा में मूर्ति में चमत्कार और देवत्व सिद्ध करने हेतु देव स्नपन के साथ दस अधिवास विहित है। वे करने चाहिए। इस कर्म के लिए यज्ञ मण्डप के भीतर वा पास में कर्मकुटी बनानी चाहिए।

---

१. गङ्गा चादित्यचन्द्रौ च द्यौर्भूमी रात्रिवासरौ॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥

*(मध्यमपर्व २।१८।४३-४४)*

२. धर्मः शुभ्रवपुः सिताम्बरधरः कार्योर्ध्वदिशे वृषो हस्ताभ्यामभयं वरं च सततं रूपं परं यो दधत्। सर्वप्राणिसुखावहः कृतधियां मोक्षैकहेतुः सदासोऽयं पातु जगन्ति चैव सततं भूयात् सतां भूतये॥

*(मध्यमपर्व २।१८।४६)*

# कर्मकुटी
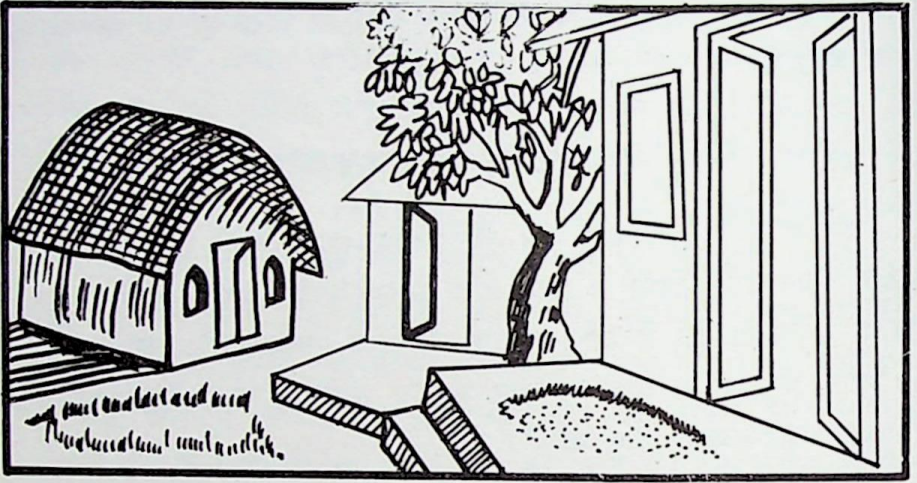
(१) सर्वप्रथम जलाधिवास है। मूर्तियों को पूर्वमुख या उत्तर मुख बिठाकर जल में सप्तमृत्तिका, पंच पल्लव, पंचामृत, भस्म, गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, डालकर पश्चात् मधु और घृत के अभ्यंग (स्नान से व्रणभंग करके मोम से नेत्रावरण कर देवे) सब जलों से स्नान कराकर जल दूध की सतत् धारा से अभिषेक

# जलाधिवास
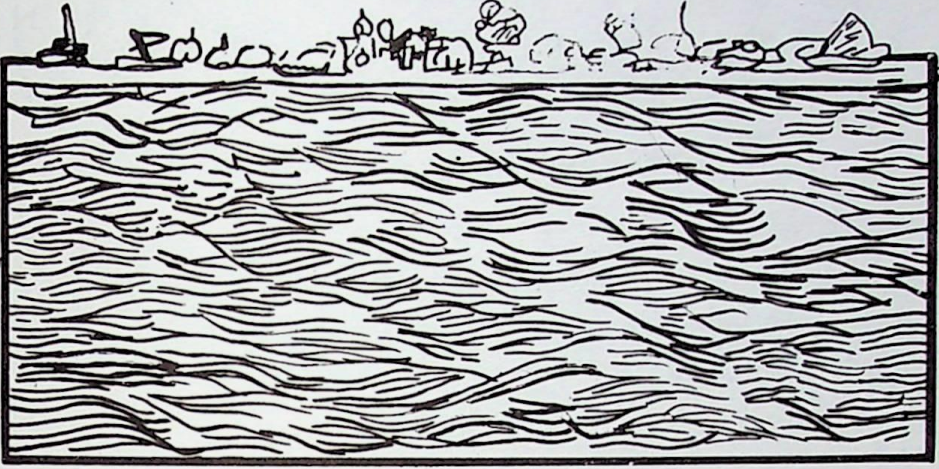
करके कुशा और वस्त्र से वेष्ठित प्रतिमा को जलद्रोणी में सुला देवे (अर्थात् जलाधिवास करावे) शान्तिपाठ करे।

*(–मार्कण्डेय पुराण)*

इसका प्रमाण रात्रिभर या एक पहर तक या केवल गोदोहन संमित काल भी कहा है जैसी सुविधा हो करे।[१] फिर प्रतिमाओं के दक्षिण हाथ पर रक्षा वस्त्र बांधकर देव स्नपन के बाद[२] गंध, पुष्प, अन्न, शर्करा, मिष्ठान्न, फल, वस्त्र, शय्या, औषधि ये अधिवास करने चाहिए। तब प्राण-प्रतिष्ठा आदि कर्म करे।

---

१. जलाधिवासनं रात्रौ यामं गोदोहनमात्रं वा कुर्यात्।

*(–प्रतिष्ठा रत्नावली)*

२. मूर्तियां जलाधिवास हेतु बड़ी परात या टब, में भी सुलाई जा सकती हैं।

३. घृत-स्नान हेतु पात्र अलग लेवें।

## फलाधिवास
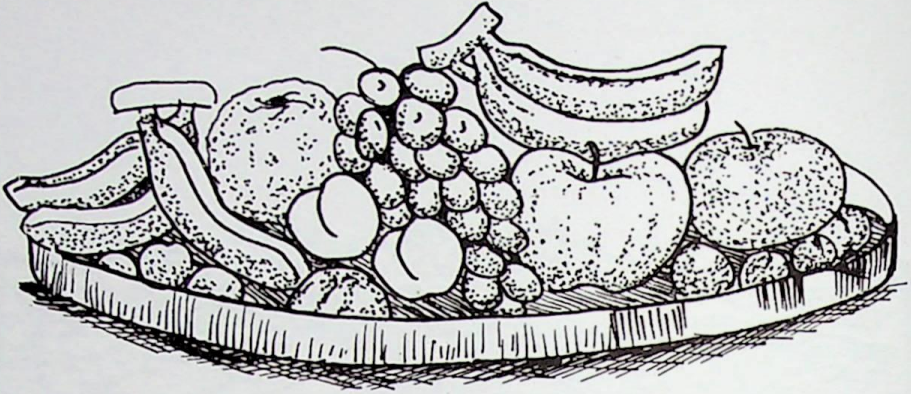
उस समय के ऋतुफलों का विशेष प्रयोग करे। केला, आम, अमरूद, खरबूजा, मतीरा, और जितनी तरह के फल उपलब्ध हो सकें मूर्तियों के आगे निवेदित करे। मूर्तियों के चारों तरफ फल रखे।

## वस्त्राधिवास
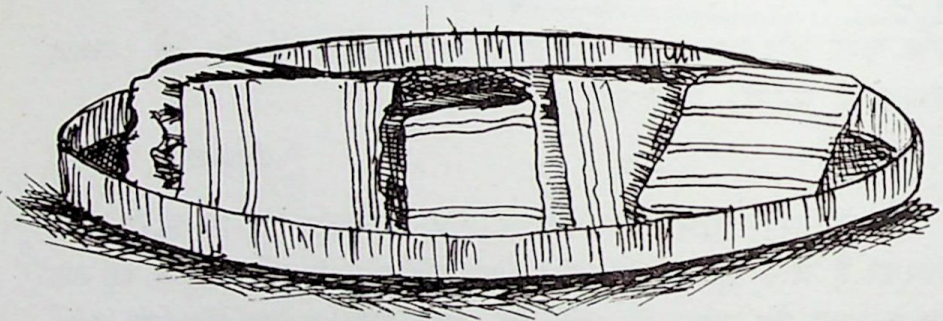
वस्त्राधिवास में तरह-तरह के रेशमी, सूती व नाना प्रकार के पहनने, ओढ़ने, के सुन्दर वस्त्र रखकर, उसके मध्य मूर्तियों को बिठाये। बड़ी मूर्तियां हों तो उसके चारों तरफ वस्त्रों को सजा लें। एक पहर तक वस्त्र रहे। तब तक ब्राह्मण पुरुष सूक्त, का पाठ करते रहें।

अष्ट प्रकार के गंध, व अन्य सभी प्रकार के धूप देव मूर्तियों के आगे रखे। प्रत्येक गंध से अर्चना कर एक पहर तक पुरुष सूक्तादि का पाठ ब्राह्मण करे। इस तरह गंधाधिवास करे।

## गन्धाधिवास
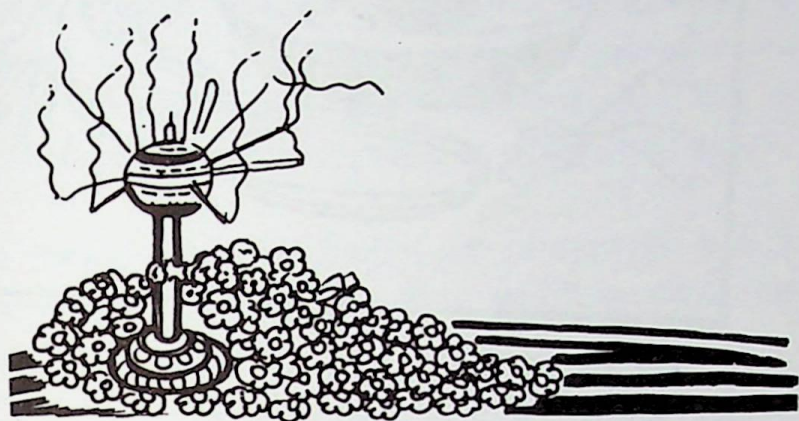
सभी तरह के देवताओं को चढ़ाने योग्य सुगन्धित पुष्प व पुष्पहार देवताओं के चारों तरफ सज्जित करे। चढ़ावे भी। या फूलों से मूर्तियों को ढक दे। एक गोदोहन मात्र समय तक।

## पुष्पाधिवास
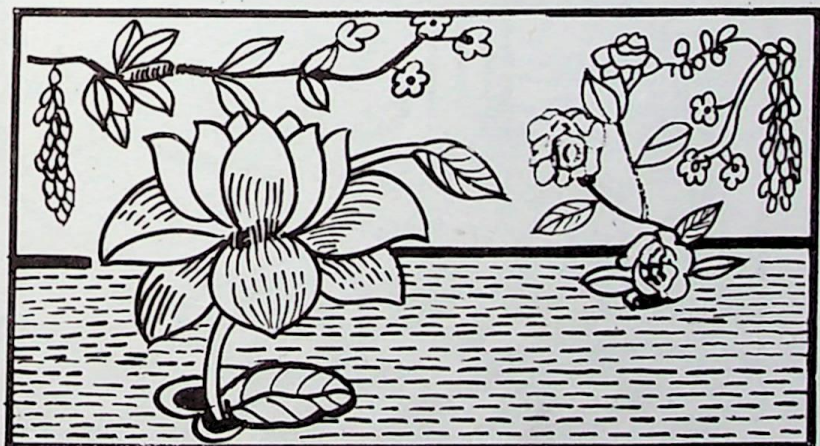
तदनन्तर स्तोत्र पाठादि ब्राह्मण मूर्तियों के समीप करें। यह पुष्पाधिवास है।

## औषधाधिवास

सभी तरह की औषधियां, यथा—दधि, दूर्वा, हरिद्रा, दूध, घी, कुंकुम, अक्षत, शुद्धोदक, गंध, गोमय, गोमूत्र, भस्म, कुशा, गंगाजल, सर्वौषधि, पुष्प, तीर्थोदक, इक्षुरस, कदम्ब, शाल्मलि, जम्बू, अशोक, पीपल, आम, वट, बिल्वपत्र, नारिकेल, पलाश, रुद्राक्ष पत्र ये सब मूर्तियों के पास रखे। महा स्नान में इन्हें काम में लेवे।

## शय्याधिवास
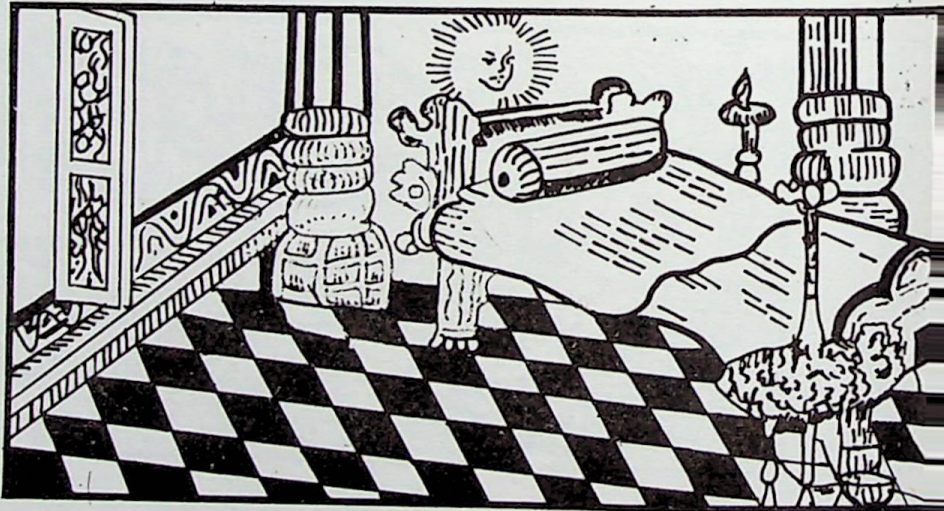
सुन्दर शय्या पर भगवान् को एक पहर तक सुलावे। पूर्वमुखी मन्दिर हो तो अग्निकोण में शय्या। पश्चिम मुखी मन्दिर हो तो वायव्य कोण में शय्या। उत्तरमुखी मन्दिर हो तो ईशान कोण में शय्या। दक्षिण मुखी मन्दिर हो तो नैर्ऋत्य कोण में शय्या।

मण्डप में भगवान् को पालकी में लावे। फिर मधुपर्कादि देकर मध्यवेदी पर या सर्वतोभद्र पर या धान्य पुंज पर सुन्दर शय्या बिछाकर स्वच्छ गद्दी तकिये लगाकर अक्षतों से स्वस्तिक मांडकर प्राग्, अग्र, कुशा रखकर ऊपर पुष्प बिछाकर सुगन्धित जल से छांटकर पुष्पमालाओं से शोभित शय्या पर सुलावे। सफेद वस्त्र-परिधान भेट करे। मस्तक की तरफ सहिरण्य निद्रा कलश रखे।

चार दीपक चारों कोनों में प्रज्वलित करे तब उत्थान हो। देवता के सम्मुख पादुकाएं पार्श्व में शान्ति कुम्भ, दक्षिण पार्श्व में छत्र-व्यंजन, चंवर तथा आसन, दर्पण, घण्टा रखे।

## अन्नाधिवास और शर्कराधिवास

जल-पात्रादि भी रखे। फिर मिष्टान्नाधिवास में भक्ष्य, भोज्य, जल-पात्रादि भी रखे।

शय्याधिवास के पहले अन्नाधिवास और शर्कराधिवास करने चाहिए। तब मिष्ठान्नाधिवास करे। प्रत्येक में क्रम १ पहर या गोदोहन मात्र है।

## मिष्ठान्नाधिवास
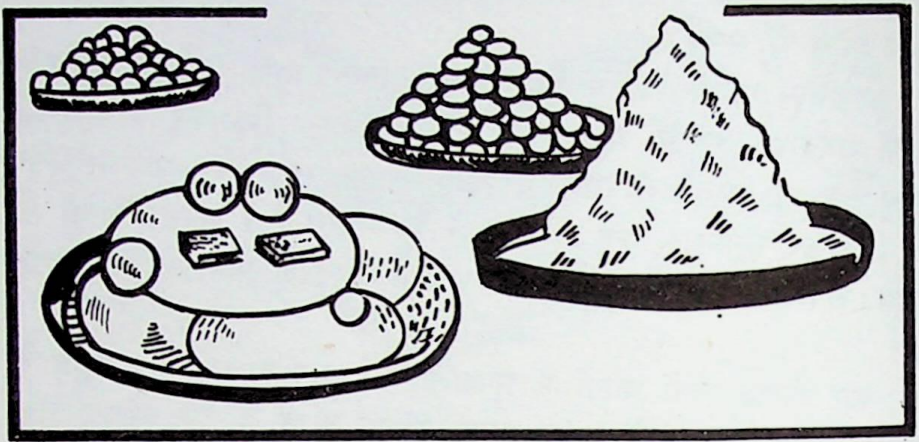
अन्नाधिवास में धान्य राशि के ऊपर मूर्तियां सुलाकर उस पर धान्य राशि डालकर उसे ढक देते हैं। जब तक धान्यराशि में मूर्तियां रखे, पुरुष सूक्त पाठ ब्राह्मण करे। फिर धान्य राशि में १ पहर रहने के बाद मूर्तियों को निकाले। चारों कोनों में दीप जलावे। दुग्ध पिलावे, पायसान्न और फलों का भोग लगावे।

मूर्ति धान्य से खराब न हो इसके लिए धान्य राशि पर वस्त्र डाले और फिर मूर्ति पर वस्त्र रखकर धान्य राशि ऊपर डाले। **( १ ) अन्नहिनोदद्देत् राष्ट्रं।** अंत: धान्य वास जरूरी है।

## देवस्नपन अभ्यंग ( स्नान )

### घृतस्नान का प्रमाण

स्नान में सर्वप्रथम घी (घृत) से स्नान कहा है। इसका परिमाण हेमाद्रि शिव धर्मानुसार सौपल अभ्यंग, पचीसपल, तथा महास्नान दो हजार पल घी का होता है [1]। ब्रह्मपुराण में कहा है कि देवताओं की प्रतिमा पर, यदि वे घी से स्नान कराने योग्य हों तो कम-से-कम पच्चीस पल घी से अभ्यंग

---

(१) स्नानं पलशतं श्रेयं, अभ्यङ्गं पञ्चविंशति।
पलानां द्वे सहस्रेतु महास्नानं प्रकीर्तितम्॥

करावे [१]। यदि मूर्ति मकराने पत्थर की हो तो उसके दाहिने पग के अंगुष्ठ पर विधि करे।

## पञ्चामृत स्नान का प्रमाण

पञ्चामृत स्नान में अलग-अलग अमृतों से स्नान कराना चाहिए। मिलित पञ्चामृत से स्नान सबसे बाद में होता है। इसमें प्रमाण है—दूध से स्नान के बाद उससे दशगुणा दही, दही से सौगुना घी, घी से दश गुना शहद, और शहद से दस गुना ईख का रस काम में लेवें। यह स्कन्दपुराण का कथन है [२]। ऐसा सर्वत्र जाने। चरण पूजा करने से भी पूजा हो जाती है। अतः रंग शोभा उतरने के भय से सारी विधि चरणों पर करे।

## मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा में क्रम

(१) संकल्प के बाद दशविध स्नान, (२) प्रायश्चित्त कर्म, (३) गणेशादि स्मरण, (४) दिग्रक्षण-वरुणावाहन, दीप स्थापनादि। (५) गणपति पूजन, कलश स्थापन, पुण्याहवाचन, (६) मातृका स्थापन, नंदिश्राद्ध, ब्राह्मण वरण (७) जल यात्रा, क्षेत्रपाल जलाशय पूजन। (८) मंडप प्रवेश, (९) प्रथम धान्याधिवास (१०) पीठ स्थापन कर्म, गणेश, मातृना, सर्वतोभद्र, ग्रह, योगिनी, क्षेत्रपाल आदि की हर प्रतिष्ठा कर्म में स्थापना करे। (११) कुण्डस्थापन, कुण्ड पूजन, (१२) अधिवास, देवस्नपन शय्याधिवास तक। (१३) महास्नान, (१४) हवन, (१५) न्यास, (१६) प्राण-प्रतिष्ठा (१७) नेत्रोन्मीलन, (१८) पूर्णाहुति, (१९) आरती, (२०) मंत्र पुष्पांजलि।

## अग्निपुराणोक्त देव स्नपन प्रयोग

जलाधिवास के बाद स्नान मंडप में बालू (रेत) की तीन चौकियां बनावे। उस पर चावलों से स्वस्तिक करे। उस पर तीन सुन्दर पीठे स्थापित कर विश्वकर्मा

---

(१) देवानां प्रतिमापन्न घृताभ्यङ्गक्षमा भवेत्।
पलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशति॥
(२) क्षीराद्दशगुणं दघ्ना घृतेनैव दशोत्तरम्।
घृताद्दशगुणं क्षौद्रा घैक्षवजं तथा।

*(-विष्णुवादौ तु स्कंदपुराण)*

का ध्यान करे। फिर सप्त धान्यों पर जलपूर्ण कलश रखकर उन्हें तीन सूत्रों से वेष्ठित करे। उसमें पंच पल्लवादि डाले। फिर दक्षिण वेदी के पीछे द्वादश कलश रखे। कलश पूर्व या उत्तर की तरफ रखे। १२ कलशों में पांच कलशों में (१) पंचपल्लव, (२) गोमूत्र, (३) गोमय, (४) भस्म, (५) सप्तमृत्तिका शेष सात कलशों में सुगन्धित जल भरे। स्थापित कलश १२ वां होगा।

इसी तरह मध्यवेदी के पीछे ११ कलश स्थापित करे। उत्तरवेदी के पीछे प्रथम पंक्ति में ५ शुद्ध जल के कलश हों। द्वितीय पंक्ति में २० कलश। विसम कलशों में (१) में अष्टपल मृत्तिका, (२) दूसरे में सप्तपल गोमय, (३) तीसरे में द्वादशपत्र गोमूत्र, (४) में एक मुट्ठी भस्म, (५) वें में त्रिपल पंचगव्य, (६) में सोलह पल दूध (७) वें में वीसपल दही, (८) वें में सात पल गोघृत, (९) नवम में त्रिपल मधु, (१०) दसवें में त्रिपल शक्कर डाले। सम कलशों में शुद्धोदक भरे। तृतीय पंक्ति में दो कलश शुद्ध जल के हों। चौथी पंक्ति में ६ कलश होंगे। उसमें १ में पंचामृत, बाकी में शुद्ध जल।

पंचम पंक्ति में १४ कलश रखे। इसमें क्रमशः—(१) में गंध, (२) पंचपल्लव का कपाय, (३) सर्वोषधि, (४) श्वेत पुष्प, (५) शान्त्युदक, (६) ९ फल, (७) सोना, (८) गोश्रृंगोदक, (९) सप्तधान्य, (१०) सहस्रछिद्र कलश, (११) में सर्वोषधियां, (१२) पंचपल्लव, (१३)नवरत्न, (१४) में तीर्थोदक भरे।

फिर पूर्वादि ८ दिशाओं में ८ कलश स्थापित करे। (१) क्षीरोदक, (२) क्षीर, (३) दधि, (४) घीरत, (५) इक्षुरस, (६) फलासव, (७) स्वादूदक, (८) नारिकेलोदक डाले।

षष्ठ पंक्ति में १० कलश होवे। (१) कदम्ब, (२) शाल्मली, (३) जम्बू, (४) अशोक, (५) पीपल (प्लक्ष), (६) आम, (७) वट, (८) बिल्व, (९) नारिकेल, (१०) पलाश के पत्ते रखे।

सातवीं पंक्ति में चार बड़े कलश रखे—इनमें सुगन्धित तेल, जौ, चावल, गोधूम, मसूरिका, बिल्व तथा आंवलों के चूर्ण (उद्धर्तन हेतु) रखे। इस तरह सात-सात पंक्तियों में कलश स्थापन करे।

प्रथम अग्न्युत्तारण करके प्रतिमा को कुशाओं से सम्मार्जित करके घृत और मधु से अभ्यंग स्नान करावे। इस तरह देव का व्रणभंग करके फिर

पूजा करे। फिर पंचगव्य से फिर जल से स्नान फिर पूजा करके महा-मण्डप को दक्षिण में रखते हुए मूर्तियों को स्नान मण्डप में ले आवें।

फिर कलशार्चन करके दिक्पाल बलि करे। फिर स्वस्ति वाचन करे और समय हो तो पुण्याहवाचन करे। फिर प्रथम वेदी के कलशों से स्नान कराकर पीत वस्त्र से मूर्ति को ढककर द्वितीय वेदी पर आवे। फिर (मध्यम वेदी) पर कुशाएं बिछाकर स्नान, न्यास व पूजन कराकर नेत्रोन्मीलन करे।

## नेत्रोन्मीलन ( अंजनशलाका ). संस्कार

यह मूर्ति प्राण-प्रतिष्ठा का मुख्य संस्कार है। मूर्तियों को पीताम्बर से ढककर अच्छे आसन पर बिठावे (रखे)। इसमें सोने की शलाका का मुख्य प्रयोग है। इसके बिना नेत्रों में ज्योति की कल्पना नहीं बनती।

सोने की शलाका को मधु घृत में डुबोकर प्रतिमा के नेत्र खोले जाते हैं।

नेत्रोन्मीलन के समय नेत्रों के सामने कुमारी कन्या देवों को दर्पण दिखाती रहे।

**ॐ वृत्रस्यासिकनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मेदेहि।**
**ॐ चित्रं .देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण स्याग्ने।**

(इस आधी ऋचा से और)

**अग्निज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।**
**अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।**
**ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥**

इन मंत्रों से नेत्रों की कल्पना करे। सुर्वण शलाका फेरे। इसके बाद भगवान् के सामने मावे की मिठाई, फल आदि को चढ़ावे। कन्या को दक्षिणा देवे।

यह नेत्रोन्मीलन संस्कार, बाण रत्नादि लिंगों में आवश्यक नहीं परन्तु अन्य शिवलिंग हों तो उसमें भी होता ही है।

फिर शुद्ध जल से स्थापित एकादश कलशों से पूर्ववत् स्नान करावे। पूजन कर देव का आच्छादन वस्त्र से करे। सुवर्ण शलाका आचार्य को देवे।

इसके बाद कुण्ड के पास आकर हवन कर संक्षिप्त दिक्पाल बलि देवे। फिर मण्डप में चार ब्राह्मणों को दक्षिणादि से संतुष्ट करके 'नेत्रांजन' करे।

फिर तृतीय वेदी पर प्रतिष्ठा योग्यता प्राप्ति हेतु महास्नान शुद्धि करे। उत्तर वेदी पर मूर्तियों को विराजमान करे। प्रथम चार कलशों से स्नान करावे। फिर दधि, दूर्वा, हरिद्रा, कुंकम से अक्षतों को रंग कर चढ़ावे। पुष्पहार चढ़ावे व धूप आदि करे।

इसके बाद देव के दक्षिण और देवी के वाम हाथ में श्वेत ऊन का डोरा आचार्य के वितस्ति जितना अथवा मूर्ति के वितस्ति जितना बांधे। फिर बचे हुए चार कलशों से स्नान करावे। फिर दूसरी पंक्ति के इक्कीस २ कलशों से यथाक्रम स्नान करावे। फिर वस्त्र से पोंछकर सुगन्धित तैल से अभ्यंजन करे। फिर जौ, चावल, गोधूम; मसूरादि आमलक चूर्ण से उबटन करे। यक्ष कर्दम जटामांसी का अनुलेपन करे। फिर तीसरी पंक्ति के दो कलशों से स्नान। फिर चौथी पंक्ति के छः कलशों से स्नान। फिर पांचवीं पंक्ति के १४ कलशों से स्नान। फिर सहस्रछिद्र कलश से स्नान। वेदी के चारों तरफ स्थापित आठ कलश जो समुद्री जल से युक्त हैं स्नान करावे। फिर छठी पंक्ति के दश कलशों से स्नान। फिर सातवीं पंक्ति के चार कलशों से स्नान। फिर पोंछकर पुरुषसूक्त वा अन्य सूक्तों से अभिषेक करे। फिर पूजन कर अन्य अधिवास करे। तब दूसरे दिन प्रतिष्ठा करे।

# श्री महालक्ष्मी की आरती

**ॐ जयलक्ष्मी मंगल निधिमहालक्ष्मी श्री सुन्दर लक्ष्मी॥ टेर॥**

विष्णुवामांगी, मां! हेमांगी, जिगमिगभूषण अंगीः कोमलमधुभक्षी।
मां पद्माक्षी आनन्दामृत भक्षी अन्तरवैशाक्षी।
मां जड़ चेतन जनरक्षी क्षीराब्धे स्तनया।
मां जगमाया तेजोमय महालक्ष्मी॥ ॥ श्रीसुन्दर.॥ १॥

करुणाकर अम्बे, मां आनन्द दे, इन्द्रादिक तव वन्दे
समस्त शुभकारी। मां भयहारी! करुणाकर कौमारी,
वैकुण्ठनिवासी। मां गुणराशीं, भक्त्या हृदय विलासी,
शुभमति फलदायी। मां मंमाई, सदा आनन्दी लक्ष्मी

॥ श्रीसुन्दर.॥ २॥

विश्वंभरी माता, मांजी धन दाता, संतन मन दुःख हरिता,
तापस्त्रय मोचन जय लक्ष्मी मंगलनिधि महालक्ष्मी श्री सुन्दर लक्ष्मी
मां तव लोचन। जोगी जन मन रंजन, सुर वर मुनि ध्यायी
मां कमलायै, सर्वान्तर समतायै। हे आदौ शक्ति।
मां वेदोक्त विदोही ज्ञानं लक्ष्मी ॥ श्रीसुन्दर.॥ ४॥

अनन्त गुण महिमा, मांजी तव नामा।
नान्तव ब्रह्मा मूर्ति अद्‌भुत तव कीर्ति
मां भ्रमहरती शान्ति सुशल्यामूर्ति विनयति नरसिंहो
मांजी दासोऽहं, तव चरणं मम शरणं।
जिह्वाग्रेवस लक्ष्मी ॥ श्रीसुन्दर.॥ ५॥

# ओम् जय जगदीश हरे

**देव सच्चिदानन्द प्रभु हे ईशों के ईश।**
**करूं तुम्हारी आरती जय जय जय जगदीश॥ टेक॥**

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट क्षण में दूर करे॥ ॐ...
जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिनसे मन का। हो स्वामी...
सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का। ॐ...
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी। हो स्वामी...
तुम बिन और न दूजा, आस करूं जिसकी॥ ॐ...
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी। हो स्वामी...
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता। हो स्वामी...
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता। ॐ...
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति। हो स्वामी...
किस विधि मिलूं दयामय, तुमसे मैं कुमति। ॐ...
दीनबन्धु दुःख हर्ता, तुम ठाकुर मेरे। हो स्वामी...
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे। ॐ...
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा। हो स्वामी...
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा। ॐ...
तन मन सब अपर्ण, सब कुछ है तेरा। हो स्वामी...
तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा॥ ॐ...

# आरती श्री दुर्गा जी

**माता ममता मूर्ति तुम, आदि शक्ति अवतार**
**सदा भवानी भक्त का करती तुम उद्धार॥ टेक॥**

जय अम्बे गौरी मैया जय श्यामा गौरी।
तुमको निश दिन ध्यावत, हरि ब्रह्मा शिवरी॥ ज़य...
मांग सिन्दूर विराजत, टीको मृगमद को।
उज्ज्वल हैं दोउ नैना, चन्द्र बदन नीको॥ जय...
कनक समान कलेवर, रक्ताम्बर राजे।
रक्त-पुष्प गल माला, कण्ठन पर साजे॥ जय...
केहरि वाहन राजत, खड्ग खप्पर धारी।
सुर-नर-मुनि-जन सेवत, तिनके दुःखहारी॥ जय...
कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती।
कोटिक चन्द्र दिवाकर, राजत सम ज्योति॥ जय...
शुम्भ-निशुम्भ विदारे, महिषासुर घाती।
धूम्रविलोचन नैना, निशदिऩ मदमाती॥ जय...
चण्ड-मुण्ड संहारे, शोणित बीज हरे।
मधु कैटभ दोऊ मारे, सुर भयहीन करे॥ जय...
ब्रंह्माणी रुद्राणी, तुम कमला रानी।
आगम-निगम बखानी, तुम शिव पटरानी॥ जय...
चौंसठ योगिनि मंगलगावत, नृत्य करत भैरो।
बाजत ताल मृदंगा, अरु बाजत डमरु॥ जय...
तुम ही जग की माता, तुम ही हो भरता।
भक्तन की दुःख हरता, सुख संपति करता॥ जय...
भुजा चार अति शोभित, खड्ग खप्पर धारी।
मन वांछित फल पावत, अगर कपूर बाती।
श्रीमालकेत में राजत, कोटि रतन ज्योति। जय...
मां अम्बे जी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी, सुख सम्पत्ति पावै॥ जय...

# आरती श्री शंकर जी

**जय-जय कैलाशपति जय देवों के देव।**
**स्वीकारो प्रभु आरती हर-हर महादेव॥ टेक॥**

जय शिव ओंकारा, हर शिव ओंकारा,
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, अर्द्धांगी धारा॥ टेक॥
एकानन चतुरानन, पंचानन राजे।
हंसानन गरुड़ासन, वृषवाहन साजे॥ जय॥
दोउ भुज चारु चतुर्भुज, दश भुज ते सोहे।
तीनों रूप निरखता, त्रिभुवन-जन मोहे॥ जय॥
अक्षमाला वनमाला, मुण्डमाला धारी।
चन्दन मृगमद सोहै, भोले शशिधारी॥ जय॥
श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे।
सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे॥ जय॥
कर में श्रेष्ठ कमण्डलु चक्र त्रिशूल धर्ता।
जग करता जग हरता जग पालन करता॥ जय॥
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका।
प्रणवाक्षर में शोभित ये तीनों एका॥ जय॥
त्रिगुण शिवजी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी मनवांछित फल पावे॥ जय॥

# आरती श्री सत्यनारायण जी

**जय श्री लक्ष्मी रमणा श्री लक्ष्मी रमणा।**
**सत्यनारायण स्वामी जन पातक हरणा॥ टेक॥**

रत्न जड़ित सिंहासन अद्‌भुत छवि बाजै॥ जय॥
प्रकट भये कलि कारण द्विज को दरस दियो।
बूढ़ा ब्राह्मण बन कर कंचन-महल कियो॥ जय॥
दुर्बल भील कराल निजपर कृपा करी।
चन्द्रचूड़ एक राजा तिनकी विपत्ति हरी॥ जय॥
वैश्य मनोरथ पायो श्रद्धा प्रभुजी फिर अस्तुति कीन्हीं॥ जय॥
भाव-भक्ति के कारण छिन-छिन रूप धर्‌यो।
श्रद्धा धारण कीनी जन को काज सर्‌यो॥ जय॥
ग्वाल-बाल संग राजा वन में भक्ति करी।
मनवांछित फल दीन्हों दीनदयालु हरी॥ जय॥
चढ़त प्रसाद सवायो कदली फल मेवा
धूप दीप तुलसी से राजी सत्यदेव॥ जय॥
श्री सत्यनारायण जी की आरती जो कोई नर गावे।
तन-मन-सुख-सम्पत्ति, मनवांछित फल पावे॥ जय॥

# जगदंबा नी गरभा आरती

**जय आद्या शक्ति, मां जय आद्या शक्ति,**
**अखंड ब्रह्माडं नीपाव्या-२, पडवे पंड़े। माता जयो जयो मां जगदम्बे।**
द्वितीया बेय स्वरुप शिव शक्ति जाणुं, मैया-२
ब्रह्मा गणपति गाऊं-२, हर गाऊं हर। मां जयो जयो मां जगदम्बे।
तृतीया त्रण स्वरुप, त्रिभुवन मां बेठां, मैया-२
त्रया थकी तरवेणी-२, तुं तरवेणी। मां जयो जयो मां जगदम्बे।
चौथे चतुरा महालक्ष्मी मां, सराचर व्यापा, मैया-२
चारभुजा नो दीशा, प्रगट्या दक्षिण मां। जयो जयो मां जगदम्बे।
पंचमी पंच ऋषि, पंचमी गुण पदमा, मैया-२
पंच सहस्त्र त्यां सौहिये-२, पंचे तत्वो। मां जयो जयो मां जगदम्बे।
षष्ठी छो नारायणी, महिषासुर मारयो, मैया-२
नर नारी ने रूपे-२, व्याप्या सघळे। मां जयो जयो मां जगदम्बे।
सप्तमी सप्त पाताल, सावित्री संध्या, मैया-२
गौ गंगा गायत्री-२, आई आनंदा मैया-२
सुरनर मुनिवर जन्म्या-२, देव दैत्यो, मां। जयो जयो मां जगदम्बे।
नवमी नव कुळ नाग-२, सेवे नव दुर्गा, मैया-२
नव रात्रि नां पूजन, शिवरात्रि ना अर्चन, कीधां हर ब्रह्मा। जयो जयो
दशमी दश अवतार, जय विजया दशमी, मैया-२
रामे राम रमाडया-२, रावण रोळयो, मां। जयो जयो मां जगदम्बे।
एकादशी अगियारस, कात्यायनी कामा, मैया-२
काम दुर्गा कालिका-२, श्यामा ने रामा। जयो जयो मां जगदम्बे।
बारस बाला रूप, बहुचरी अंबा, मैया-२
बटुक भैरव सोहीए, काल भैरव सोहीए, तारा चाचर मां। जयो जयो
तेरस तुलजा रुप-२, तुं तारुणी माता, मैया-२,
ब्रह्मा-विष्णु सदाशिव-२, गुण तारा गाता...। जयो जयो मां जगदम्बे।
चौदस चौदे रूप, चंडी चामुंडा, मैया-२
भक्ति भाव कांई आपो, चतुराई काई आपो, सिंहवादिनी माता। मां जयो जयो
पूनम कुंभ भर्या, सांभलयो करुणा, मां
वसिष्ठ देव वखाण्या, मार्कड देव वखाण्या, गाई शुभ कविता। जयो जयो मां
संवत सोळ सत्तावन, सोळवे बावीस मां-२
संवत सोळे प्रगट्यां-२, रेवा ने तीरे। जयो जयो मां जगदम्बे।
वंबावटी नगरी आई, रुपावटी नगरी। मां-२
सोळ सहस्त्र त्यां सोहिये-२, क्षमा करो गवरी।..जयो जयो मां जगदम्बे।
शिव शक्ति नी आरती जे कोई गाशे-२
भणे शिवानंद स्वामी, सुख सम्पत थाशे, हर कैलाशे जाश।
जयो जयो मां जगदम्बे...

# श्री शंङ्करारार्तिक्यम्

**ॐ जय गंगाधर हर, शिव जय गिरिजाधीश।**
**त्वं मां पालय नित्यं, कृपया जगदीश॥ हर हर महादेव॥**

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने॥शिव.॥
गुंजति मधुकरपुंजे कुंजवने गहने॥ हर हर.॥
कोकिलकुंजति खेलति, हंसावनललिता॥शिव.॥
रचयति कलाकलापं नृत्यति मुदसहिता॥ हर हर.॥
तस्मिंमल्ललितसुदेशे शालामणिरचिता॥शिव.॥
तन्मध्ये हरनिकटे गौरीमुदसहिता॥ हर हर.॥
क्रीडां रचयति भूषारंजित निजमीशम्॥शिव.॥
ब्रह्मादिकसुरसेवित प्रणमति ते शीर्षम्॥ हर हर.॥
विबुधवधुर्बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता॥शिव.॥
किन्नर गानं कुरुते सप्तस्वरसहिता॥ हर हर.॥
धिनकतथै थैधिनकतमृदंग वादयते॥शिव.॥
कंकण कंकणललिता वेणुर्मधुरं नादयते॥ हर हर.॥
रुणुरुणुचरणे रचयति नूपुरमुज्ज्वलिता॥शिव.॥
चक्रावर्ते भ्रमयति कुरुते तां धिक्ताम्॥ हर हर.॥
तां तां लुपचुपचालं तालं नादयते॥ शिव.॥
अंगुष्ठागुंलि नादं लास्यकतां कुरुते॥ हर हर.॥
कर्पूरद्युतिगौरं पंचाननसहितम्॥शिव.॥
त्रिनयन शशिधर मौले विषधरकण्ठयुतम्॥ हर हर.॥
सुंदरजटाकलापं पावकयुतभालम्॥शिव.॥
डमरूशूलपिनाकं करधृतनृक्पालम्॥ हर हर.॥
शंखनिनादं कृत्वा झल्लरी नादयते॥ शिव.॥
नीराजयते ब्रह्मा वेदऋचां पठते॥ हर हर.॥
इति मृदुचरणसरोजे हृदि कमले धृत्वा॥ शिव.॥
अवलोकयति महेशं ईशे अभिनत्वा॥ हर हर.॥
रुण्डरचितुरमाला पन्नगमुपवीतम्॥शिव.॥
वामविभागे गिरिजारूप अतिललितम्॥ हर हर.॥
सकलशरीरे मनसिजकृतभस्मा भरणम्॥शिव.॥
इति वृषभंध्वजरूपं तापत्रयहरणम्॥ हर हर.॥
ध्यानं आरति समये हृदय इति कृत्वा॥ शिव.॥
रामं त्रिजटानाथं ईशं अभिनत्वा॥ हर हर.॥
संगीतमिति प्रतिदिनपठनं यः कुरुते॥ शिव.॥
शिवसायुज्यं गच्छति भक्तया यः श्रृंणुते॥ हर हर.॥

# श्रीयज्ञ-सम्बन्धी नियम

१. श्रीयज्ञ में भाग लेने वाले सभी शिविरार्थियों को यज्ञाधिकारी बनने के लिए तीन दिन पूर्व सभी प्रकार के नशे एवं तामसी भोजन को छोड़ना होता है।

२. यदि साधक तीन दिन तक एक समय सात्त्विक भोजन करे, श्वेत पदार्थ जैसे—दूध, दही, खीर, चावल एवं फलों का सेवन करे तो श्रेष्ठ रहेगा।

३. यज्ञार्थी असत्य भाषण न करे। खासकर इन चार दिनों में तो हंसी-विनोद में भी झूठ न बोले।

४. यज्ञार्थी को यज्ञकाल में मनसा-वाचा-कर्मणा पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, गुरु की शुद्धभावना से सेवा करनी चाहिए।

५. दैविक संस्कारों के लिए मन को पवित्र रखना, बुद्धि को निर्मल रखना एवं चित्त को अहंकारशून्य रखना आवश्यक है।

६. साधना प्रारम्भ करने के पूर्व साधक को आचार्य प्रवर से मन्त्रदीक्षा ले लेनी चाहिए। ध्यान रहे, गुरु से दीक्षित होने पर एवं आज्ञा लेकर साधना प्रारम्भ करने पर ही साधक को शीघ्र सफलता मिलती है।

७. चाहे आप किसी भी जाति-वर्ण से सम्बन्ध रखते हों, यज्ञ में भाग लेने से पूर्व नवीन यज्ञोपवीत शास्त्रोक्त विधि से अवश्य धारण कर लेना चाहिए।

८. यज्ञकाल में साधक जहां तक हो, शुद्ध स्वच्छ धोती, पीताम्बर एवं पवित्र वस्त्रों को धारण करे।

९. विवाहित स्त्री पुरुष जहां तक हो सके—पति तथा कुटुम्ब सहित यज्ञ में भाग लें एवं स्वासनी (बहन-बेटी) को यथेष्ट दक्षिणा देकर संतुष्ट करे।

१०. यज्ञ में सभी प्रकार की चिन्ताओं को घर पर छोड़ आवे, एवं शुद्ध सच्चे संकल्प के साथ यज्ञ में बैठे तथा समय की मर्यादा का पूर्ण पालन करे।

११. यज्ञ में भाग लेने वाले कुण्डाधिपति अपने साथ पूजा की थाली स्वयं लेकर आवे एवं वापस सामग्री सफाई करके अपने साथ ले जावे। यज्ञ-अर्चना में निम्न सामग्री चाहिए।

१२. थाली, २. कटोरी, ३. एक गिलास, ४. एक चम्मच, कुंकुम, चावल, पुष्प, पुष्पाहार, कर्पूर, रूई बत्ती, ५. श्रीफल, १. कलश, १. अगरबत्ती बंडल, १. फल वगैरा।

१३. साधक के पास पवित्र धातु का एक '**श्रीयन्त्र**' होना आवश्यक है। जिसे वह यज्ञकुण्ड पर स्थापित करे एवं यज्ञ समाप्ति के पश्चात् घर ले जाकर पूजन-कक्ष में उसे स्थापित करे, आचार्यप्रवर द्वारा प्रदत्त श्रीयन्त्रों का विधि से नित्य पूजन करे और उसके पहले गुरुमन्त्रों का जाप अवश्य करे।

१४. पवित्र धातुओं में सबसे पहले क्रमानुसार सुवर्ण, रजत एवं ताम्र का स्थान है। ध्यान रहे—एल्म्यूनियम, लोहा, स्टील एवं कनिष्ट धातुओं की मूर्तियां केवल दर्शनीय होती हैं, पूजा योग्य नहीं होतीं।

१५. श्रीयन्त्र की महिमा अनिर्वचनीय है। अधिक क्या कहें? आप स्वयं वर्ष के अन्त में आपकी आर्थिक स्थिति की समीक्षा करें। आप पायेंगे कि आप कहां-से-कहां पहुंच गये।

१६. श्रीयन्त्र पर नित्य सुगन्धित पुष्प या द्रव्य चढ़ाना चाहिए, ध्यान रखे कि निर्गन्ध पुष्प कभी भी देवार्चना में काम नहीं आते।

१७. यज्ञ का फार्म भरने के बाद कार्यालय से आपको रजिस्ट्रेशन नम्बर, कुण्ड संख्या एवं श्रीसूक्त के हवनात्मक प्रयोग की अर्थ सहित पुस्तिका प्राप्त होगी। उसे संभाल कर रखें।

१८. यज्ञ का पूर्णाहुति के पश्चात् कुण्डाधिपति यजमान एकादश शिवमन्दिरों के दर्शन करे एवं प्रत्येक शिवलिंग पर यथारुचि बिल्वपत्र एवं पुष्प चढ़ावे।

१९. यज्ञ-समाप्ति के पश्चात् कुण्डाधिपति घर जाकर अष्ट कन्याओं को (जिंनकी आयु १२ वर्ष के भीतर-भीतर हो), को खीर भोजन करावे। एक बटुक जिसकी आयु आठ वर्ष की हो उसे भी पवित्र भोजन में आमन्त्रित करें, सभी को भोजन के पूर्व तिलक करें, एवं भोजनोपरान्त यथाशक्ति दक्षिणा एवं फल देकर उन्हें प्रसन्न करें। इन सभी नियमों

का पालन करने पर तीन दिवस, तीन पक्ष एवं तीन माह के भीतर-भीतर यजमान को अनुकूल परिणामों की प्राप्ति हो जाती है।

## श्रीयज्ञम्

अगले '**श्रीयज्ञम्**' के कार्यक्रम '**श्रीपीठ**' कुंडी-भगतासनी पाली, मार्ग, जोधपुर (राज.) पर उपर्युक्त तारीखों को होंगे। आगन्तुक व्यक्ति-एडवांस फार्म भर कर इस महायज्ञ में भाग ले सकते हैं।

* २९.९.१९९८ मंगलवार, होमाष्टमी
* ४.११.१९९८ बुधवार, कार्तिक पुर्णिमा
* २६.१०.१९९९ सोमवार, होमाष्टमी
* २३.११.१९९९ मंगलवार, कार्तिक पूर्णिमा
* ५.१०.२००० शुक्रवार, होमाष्टमी
* ११.११.२००० शनिवार, कार्तिक पूर्णिमा
* २४.९.२००१ सोमवार, होमाष्टमी
* ३०.११.२००१ शुक्रवार, कार्तिक पूर्णिमा
* १३.१०.२००२ रविवार, होमाष्टमी
* २०.११.२००२ बुधवार, कार्तिक पूर्णिमा
* ३.१०.२००३ शनिवार, होमाष्टमी
* ९.११.२००३ रविवार, कार्तिक पूर्णिमा
* २१.१०.२००४ गुरुवार होमाष्टमी
* २६.११.२००४ शुक्रवार, कार्तिक पूर्णिमा
* ११.१०.२००५ मंगलवार होमाष्टमी
* १५.११.२००५ मंगलवार, कार्तिक पूर्णिमा

# सर्वधर्म सद्भाव सेवा ट्रस्ट ( रजिस्टर्ड )

(आयकर अधिनियम, १९६१ (४) की धारा ८०-जी के अधीन मान्यता प्राप्त)

परमपूज्य गुरुदेव ने बहुजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय एक अद्भुत कल्याणकारी योजना हाथ में ली है जिसमें मानव मात्र की सेवा का संकल्प लिया है। प्यासे को पानी एवं भूखे को भोजन हेतु, एक विशाल **'अन्न क्षेत्र'** स्थापित करने की योजना है। मन्त्र-तन्त्र एवं ज्योतिष विद्या को पुनर्जीवित करने हेतु **'विश्वविद्यालय'** का विशाल भवन स्थापित करने की योजना है। यह एक ऐसी महती योजना है जिसके माध्यम से भारत **नालन्दा** व **तक्षशिला** जैसे महान् विश्वविद्यालयों की खोई हुई अस्मिता को पुनः प्राप्त कर सकता है।

इस कल्पना को क्रियान्वित करने के लिए जोधपुर से ९ किलोमीटर दूर कुड़ी-भगतासनी पर दो बीघा भूमि पर चारदीवारी बना कर **'श्रीपीठ'** की स्थापना की जा चुकी है। इस हेतु **'सर्वधर्म सद्भाव सेवा ट्रस्ट'** की स्थापना की गई। **श्रीविद्या साधक परिवार** का सदस्य बनना अपने आप में एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है। साधक परिवार समय-समय पर भारतीय प्राच्य विद्याओं को पुनजीर्वित करने हेतु विभिन्न प्रकार के धार्मिक-अनुष्ठान, यज्ञ इत्यादि कार्यक्रमों का जनहित में आयोजन करता है तथा अपने पल्ले से धन खर्च करता है। यदि इन धार्मिक आयोजनों के निमत्त किसी प्रकार की भेंट या धनराशि प्राप्त होती है, कुछ अवशेष यदि बच जाता है तो उस राशि को पीड़ित मानवता की सेवा हेतु खर्च कर दी जाती है। जिसके आय-व्यय का पूरा हिसाब-किताब साधक परिवार के पास रहता है और चार्टर एकाउण्टेट द्वारा उसका विवरण प्रतिवर्ष सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। श्रीविद्या साधक परिवार का सदस्य बनने के लिए समर्पण-पत्र साथ संलग्न है।

## यज्ञ-महायज्ञों की योजना

सर्वधर्म सद्भाव सेवाट्रस्ट के संस्थापक अध्यक्ष परमपूज्य श्रद्धेय डॉ. द्विवेदी ने कुल १०८ महायज्ञों का आयोजन करने का संकल्प लिया है।

इस पवित्र स्थान पर प्रत्येक वर्ष शुभ मुहूर्त में १०८ कुण्डीय **'श्रीयज्ञ'**

किया जाता है। सभी प्रकार के दुर्योगों, दरिद्रता व अभिचार कर्मों को नष्ट करने में श्रीयज्ञ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह एक विशेष प्रकार का यज्ञ है जो व्यक्ति के जीवन में संपन्नता, ऐश्वर्य, धन, यश एवं आयुष्य को बढ़ाता है। श्रीयज्ञ पापों का क्षय करके पुण्य में वृद्धि करता है जिसका अनुकूल प्रभाव व्यक्ति को तीन माह के भीतर अपने जीवन में स्पष्टतः दिखलाई दे जाता है। १ जनवरी, ९२ को ऐसा ही महायज्ञ किया था, अनेक साधक यज्ञ के चमत्कारी प्रभाव से अभिभूत हो गये। उनके पुरजोर आग्रह से इस बार २३ अक्टूबर, ९२ को धनत्रयोदशी के शुभमुहूर्त में १०८ कुण्डीय श्रीयज्ञ पुनः किया गया।

सन् १९९३-९४ में भी दो महायज्ञ किये। इन यज्ञों के माध्यम से कई संतानहीनों को संतान की प्राप्ति हुई, धन इच्छुक लोगों को धन मिला, बेरोजगारों को नौकरी मिली एवं अनेक प्रकार की मनोवांछित इच्छाओं की पूर्ति साधकों को हुई। जिसका पूरा विवरण व रिकॉर्ड अलग से संजोकर रखा गया है। सन् १९९५ में तीन-चार महायज्ञों का आयोजन बम्बई में अंधेरी, कुर्ला, माधव बाग, कल्याण, वासी एवं बोरीबली में होने जा रहा है। संयोजक एवं साधक परिवार के सदस्य दौड़-धूप कर रहे हैं। इन महायज्ञों में भाग लेने के इच्छुक सज्जन प्रधान कार्यालय से सम्पर्क कर विभिन्न संयोजकों के पते ले सकते हैं।

## विभिन्न देवी-देवताओं के मूर्तियों की योजना

इस '**श्रीपीठ**' पर सभी प्रकार के देवी-देवताओं की मूर्तियों को स्थापित करने की योजना सर्वधर्म सद्भाव की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए की जा रही है। मूर्ति प्रदाता सज्जन का नाम मूर्ति भेटकर्ता के रूप में पत्थर पर उत्कीर्ण किया जायेगा।

## प्रस्तावित योजना का प्रथम चरण

### (ईसवी सन् १९९६)

१. यज्ञ-स्थली की चार दीवारी का निर्माण कराना एवं मूर्ति स्थापना, २. चमत्कारी हनुमान मूर्ति, ३. सिद्ध गणेश मूर्ति, ४. कलियुगी अवतार बाबा श्री रामदेवजी की मूर्ति, ५. नाकोडा भैरूजी की मूर्ति, ६. संतोषी माता की मूर्ति, ७. नक्षत्र वृक्षों की स्थापना करना।

### नक्षत्र-वृक्ष एवं हवनीय-वृक्ष की तन्त्रोक्त योजना

**अश्विनी**-कारस्कर, **भरणी**-धात्री, **कृत्तिका**-उदुम्बर, **रोहिणी**-जम्बू, **मृगशिर**-खदिर, **आर्द्रा**-कृष्ण, **पुनर्वसु**-वंश, **पुष्य**-पिप्पल, **आश्लेषा**-नाग, **मघा**-रोहिण, **पू. फा**-पलाश, **उ. फा.**-प्लक्ष, **हस्त**-अम्बष्ठ, **चित्रा**-बिल्व, **स्वाति**-अर्जुन, **विशाखा**-विकंकत, **अनुराधा**-बकुल, **ज्येष्ठा**-सरल, **मूल**-सर्ज, **पू. षा.**-वंजुल, **उ. षा.**-पनस, **श्रावण**-अर्क, **धनिष्ठा**-शमी, **शतभिषा**-कदम्ब, **पू. भा.**-निम्ब, **उ. भाग.**-आम्र, **रेवती**-मधूक, **अन्य**-कणेर, गुलाब, तुलसी, कमल, काला धतूरा, लाजवन्ती, तेलकंन्दा, रुद्राक्ष, भोजपत्र, अश्वत्थ, दाड़िम, मेहंदी, दुर्वा वगैरा।

## प्रस्तावित योजना का द्वितीय चरण

### ( ईसवी सन्-१९९८ )

### नवग्रहों की मूर्तियां

१. ग्रहराज सूर्य (सूर्य यन्त्र) २. तारापति चन्द्र (चन्द्र यन्त्र) ३. भूमिपुत्र मंगल (मंगल यन्त्र) ४. चन्द्रसुत बुध (बुध यन्त्र) ५. देवगुरु बृहस्पति (गुरु यन्त्र) ६. दैत्याचार्य शुक्र (शुक्र यन्त्र) ७. कालजयी शनिश्चर (शनि यन्त्र) ८. कालसर्प राहु (राहु यन्त्र) ९. कीर्तिपुत्र केतु (केतु यन्त्र)।

## प्रस्तावित योजना का तृतीय चरण

### ( ईसवी सन् १९९९ )

### नवदुर्गाजी की मूर्तियां

१. माता शैलपुत्री २. माता ब्रह्मचारिणी ३. माता चन्द्रघण्टा ४. माता कूष्माण्डा ५. माता स्कन्द माता ६. माता कात्यायनी ७. माता कालरात्रि ८. माता महागौरी ९. माता सिद्धिदात्री १०. चन्द्रमौलीश्वर ज्योतिर्मय शिवलिंग एवं परिवार।

# प्रस्तावित योजना का चतुर्थ चरण

## ( ईसवी सन् २००० )

### दस महाविद्या की मूर्तियां एवं तन्त्र पीठ

१. काली (काली यन्त्र) २. तारा (तारा यन्त्र) ३. षोडशी त्रिपुर सुन्दरी (षोडश यन्त्र) ४. भुवनेश्वरी ( भुवनेश्वरी यन्त्र) ५. छिन्नमस्तका ( छिन्नमस्तका यन्त्र) ६. त्रिपुर भैरवी ( भैरवी यन्त्र) ७. धूमावती ( धूमावती यन्त्र) ८. बगलामुखी (बगला यन्त्र) ९. मातंगी (मातंगी यन्त्र) १०. कमला (कमला यन्त्र) ११. कमलकुण्ड सरोवर (पवित्र स्नान हेतु)।

# प्रस्तावित योजना का पंचम चरण

## ( ईस्वी सन् २००१ )

१. श्री सत्यनारायण भगवान् की मूर्ति (वैष्णव समाज) २. श्री जाम्बाजी की मूर्ति (विश्नोई समाज) ३. श्री झूलेलाल की मूर्ति (सिन्धी समाज) ४. श्री महावीर स्वामी की मूर्ति (जैन समाज) ५. श्री घण्टाकर्ण महावीर (जैन समाज) ६. श्री बौद्ध भगवान् की मूर्ति (बौद्ध समाज) ७. श्री महाकवि माघ की मूर्ति ( श्रीमाली समाज) ८. श्री वराहमिहिराचार्य की मूर्ति ( ज्योतिष समाज) ९. श्री महर्षि श्री गंगाचार्य की मूर्ति (गर्ग समाज) १०. उत्कीर्ण मेरुपृष्ठीय श्रीयन्त्र ( श्री समाज) ११. भगवान् श्री राम एवं परिवार (राम स्नेही समाज)।

### रक्षा-कवच एवं चमत्कारी यन्त्रों का निर्माण

धर्मप्राण जनता के विशेष आग्रह पर हम सभी प्रकार के चमत्कारी यन्त्रों, ताबीजों, अंगूठियों व रक्षाकवचों का निर्माण शुभमुहूर्त एवं शुभ समय में करते हैं। विभिन्न रत्न व राशि रत्नों भाग्यवर्द्धक-अंगूठियों की प्राणप्रतिष्ठा भी विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा करवाई जाती है। यन्त्रों, राशिरत्नों, एक मुखी रुद्राक्ष से लेकर सभी प्रकार के रुद्राक्ष, रुद्राक्ष मालाएं, स्फटिक मालाएं, हत्थाजोड़ी एवं सभी प्रकार की असली तान्तिक वस्तुओं का सूचीपत्र हमारे कार्यालय से निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।

शादी-विवाह, यज्ञोपवीत, पूजा-पाठ, हवन, ग्रह-शान्ति, मन्त्र-जाप, मुहूर्त एवं विशेष प्रकार के अभिषेक, अनुष्ठान हेतु हमारे यहां विद्वान् कर्मकाण्डी पंडित उपलब्ध रहते हैं। आपकी प्रार्थना व प्रोग्राम के अनुसार उन्हें एडवांस बुक किया जा सकता है।

भारतीय सनातन धर्म की विविधता, अनेकता में एकता, यज्ञों के माध्यम से "**सर्वे भवन्तु सुखिनः**" के मूलमन्त्र से विश्वशान्ति, विश्वकल्याण, एवं जन-जन को धर्मलाभ एवं आध्यात्मिक सन्तुष्टि प्रदान करने हेतु एक महान् योजना हमने हाथ में ली है। इस योजना के प्रथम चरण में दस महाविद्या मन्दिर, नवग्रह मन्दिर, हिन्दू, जैन, सिक्ख, सिन्धी, ईसाई व मुस्लिम सभी धर्म के चमत्कारी देवी-देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित की जाएंगी। यहां नक्षत्र-वृक्ष, हवनीय वृक्ष व दिव्य औषधियों को भी मन्त्रों द्वारा अभिसंचित व पुष्टित करने की योजना है। इस पवित्र स्थान पर तप-तपस्या, पूजा-पाठ व साधना करने हेतु कोई भी सदस्य पूर्व सूचना व आज्ञा लेकर ठहर सकता है। इस संस्था के संस्थापक संरक्षक व आजीवन सदस्य बनाये जा रहे हैं। किसी भी प्रकार की सहायता व सुझाव हेतु आप सीधे आचार्य श्री डॉ. द्विवेदी से मिल सकते हैं।

# डायमंड पाकेट बुक्स में

# डॉ. भोजराज द्विवेदी

## की ज्योतिष, तंत्र, मंत्र, यंत्र व वास्तु की श्रेष्ठ पुस्तकें

### हिन्दू मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार

**हि**न्दू धर्म में प्रचलित विभिन्न प्रकार की मान्यताओं का क्या कोई वैज्ञानिक आधार है? ऐसे ही गूढ़ प्रश्नों को उठाते हुए प्रसिद्ध ज्योतिषी डॉ. भोजराज द्विवेदी ने अपनी नवीनतम पुस्तक 'हिन्दू मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार' पुस्तक में 368 ऐसे ही प्रश्नों के तर्कपूर्ण उत्तर दिए हैं। जैसे- पाप क्या होता है? भक्ति किसे कहते हैं? आठों प्रहरों के नाम क्या हैं? गणेश जी अग्रपूज्य क्यों हैं? इसी तरह के और भी बहुत से प्रश्न हैं जो हमारे मन में अनायास ही उठते हैं। इन सभी सवालों के जवाब पुस्तक में बड़े ही रोचक ढंग से दिए गए हैं।

*पृष्ठ : 192* *मूल्य : 60.00*

### फेंग सुई

**ची**नी वास्तुशास्त्र : भारतीय संस्कृति व सभ्यता के साथ-साथ चीन का भी महत्वपूर्ण इतिहास है। चीनी सभ्यता भी प्राचीन काल से ही अनेक विद्याओं में अग्रणी रही है। इन्हीं में से एक है फेंग सुई (चीनी वास्तुशास्त्र) पुस्तक फेंग सुई के माध्यम से जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर प्रकाश डालती है। फेंग सुई का इतिहास चीनी राशियों और उनका महत्त्व अनेक गूढ़ रहस्य व उनका तात्पर्य, व्यावसायिक व सामाजिक समस्याओं का फेंग सुई द्वारा समाधान, फेंग सुई की तकनीकी शब्दावली पुस्तक के ऐसे गुण हैं जो इसे हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकों में कदाचित सर्वोपरि रखते हैं और निश्चित ही संग्रह योग्य बनाते हैं।

*पृष्ठ : 228* *मूल्य : 150.00*

### अंकों का अद्भुत संसार

**मा**नव सभ्यता के विकास के साथ ही उसके जीवन में अंकों का विशेष महत्त्व रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने मिस्र की सभ्यता में अंकों के महत्त्व का गूढ़ अध्ययन कर उनका मानव जीवन पर प्रभाव सरल भाषा में कूट चित्रों सहित वर्णित किया है जो कि आज भी प्रयोगात्मक रूप से कारगर सिद्ध होते हैं। पुस्तक में तात्कालिक मान्यताओं व प्रभावों को वर्तमान में पाश्चात्य विचारों के साथ दिया गया है।

*पृष्ठ : 224* *मूल्य : 100.00*

### वास्तु जिज्ञासाएं और समाधान

**आ**ज वास्तु शास्त्र अधिकाधिक लोकप्रिय और लाभदायक सिद्ध होता जा रहा है। पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उनकी लगभग सभी वास्तु जिज्ञासाओं का पुस्तक में सरल समाधान देखने को मिलता है। पुस्तक का मुख्य आकर्षण यह है कि समाधान बिना किसी तोड़-फोड़ के सहज उपायों के साथ दिए गए हैं।

*पृष्ठ : 184* *मूल्य : 100.00*
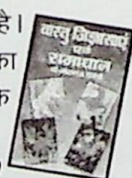
### पिरामिड एवं मंदिर वास्तु

**पि**रामिड प्राचीन काल से मनुष्य की जिज्ञासाओं और उनमें छिपे रहस्यों का केन्द्र रहे हैं। समय-समय पर पिरामिडों के बारे में कुछ न कुछ कहा जाता रहा है। परन्तु तथ्यात्मक रूप से कोई भी ऐसा शोध कार्य अथवा लेख प्राप्त नहीं होता है जिससे कि इनकी उत्पत्ति, आहार, प्रभाव आदि की ठोस जानकारी प्राप्त होती हो।

*पृष्ठ : 208* *मूल्य : 150.00*

## यज्ञकुण्डमण्डप सिद्धि
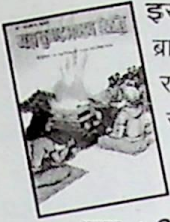
इस पुस्तक के लेखक का परिवार पिछली नौ पीढ़ियों से कर्मकाण्डी, श्रीमाली ब्राह्मण परिवार के गुरुपद पर आरूढ़ रहा है। उनका यह अनुभव रहा है कि दिन-रात कर्मकाण्ड कराने वाले दिग्गज विद्वान् भी यज्ञक्रिया की सूक्ष्मता को नहीं समझते। अच्छे-अच्छे ख्याति प्राप्त आचार्यों को यज्ञ-कुण्ड बनाना नहीं आता। यज्ञपात्रों की सचित्र जानकारी के साथ, यज्ञ-संसद एवं कर्मकाण्ड के विषय में अनिवार्य तथा अमूल्य जानकारी 'विशिष्ट निर्णय' के अन्तर्गत अंतिम पृष्ठों में दी गई है।

*पृष्ठ : 249* *मूल्य : 100.00*

## ज्योतिष में भवन, वाहन और कीर्तियोग

प्रस्तुत पुस्तक भवन, वाहन और कीर्ति योग पर लिखी गई एक सम्पूर्ण पुस्तक है। पुस्तक में विद्वान लेखक ने इन योगों के अतिरिक्त और भी अनेक योगों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। पुस्तक के द्वितीय भाग में सम्पूर्ण वास्तुविज्ञान का सार चित्रात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। मकान के द्वार, भूखण्ड की आकृति, रोड, राजमार्ग से लेकर भवन में जल, स्थान, अग्नि स्थान, शैय्या स्थान कहां होना चाहिए- इसका पूरा विवरण विस्तार से दिया गया है। पुस्तक को निश्चय ही ज्योतिष जगत की अमूल्य धरोहर कहा जाएगा।
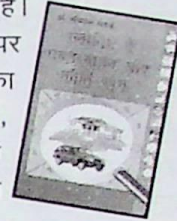
*पृष्ठ : 152* *मूल्य : 40.00*

## ज्योतिष और धन योग
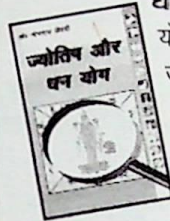
धन तो भाग्य के अनुसार ही मिलता है। दरिद्र योग, भिक्षुक योग, कर्जयोग, सदा ऋणग्रस्त योग, किन-किन योगों एवं दशाओं में मनुष्य धनवान बनता है- इन सब पर सम्पूर्ण विवेचन, उदाहरण सहित पहली बार इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। धन के योग के कारण और निवारण की शास्त्र-सम्मत विधि पहली बार आप इस पुस्तक के माध्यम से पढ़ पाएंगे। किस ग्रह ही शांति किस विधि से करनी चाहिए? दुर्योगों की निवृत्ति के कौन-से चमत्कारी एवं सरल उपाय हैं? जिसके करने से व्यक्ति धनवान हो सकता है- इन सब बातों का विस्तार पूर्वक समाधान आपको पहली बार इस पुस्तक में मिल पाएगा।

*पृष्ठ : 184* *मूल्य : 40.00*

## 'वक्री ग्रह' विज्ञान की अदभुत पुस्तक

वक्री ग्रहों के अनुसंधान से लेकर राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखी गई यह सर्वप्रथम पुस्तक है जिसने फलित ज्योतिष में नए आयाम स्थापित किए हैं। पुस्तक में भारतीय ज्योतिष में वक्री-ग्रहों के बारे में जितना कुछ लिखा गया है, सभी का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। साथ ही पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में वक्री ग्रह का जो स्वरूप है उस पर सांगोपांग प्रकाश डाला गया है। विद्वान् सम्पादक पं. भोजराज द्विवेदी ने अपने कई वर्षों के अनुभव को चिन्तन कणों के सार रूप में संजोकर रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है।
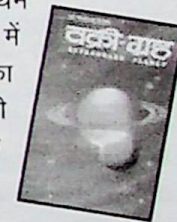
*पृष्ठ : 106* *मूल्य 30.00*

## नाम बदलिए और भाग्य बदलिए

सबसे चमत्कारी और महत्त्वपूर्ण बात इस पुस्तक कि यह है कि आप अपने नामों को स्वयं ज्योतिष की कसौटी पर कसिए और देखिए कि कहीं आपका नाम आपकी भाग्यरश्मियों के प्रतिकूल तो नहीं है? आप देखें कि आपके जीवन साथी का नाम क्या होना चाहिए? आपके व्यापार में किस नाम वाले व्यक्ति की भागीदारी होनी चाहिए? इन सभी अनसुलझे रहस्यों को आप इस पुस्तक के माध्यम से पहली बार पढ़ पाएंगे। आप चाहे तो अपना नाम बदलकर अपना भाग्य बदल भी सकते हैं। इसकी सम्पूर्ण विधि इस पुस्तक में भली-भांति समझाई गई है।

*पृष्ठ : 224* *मूल्य : 100.00*

## भूकम्प के ज्योतिषीय विश्लेषण का सारगर्भित अध्ययन

**प्र**स्तुत पुस्तक बहुत बारीकी से उन ज्योतिषीय विश्लेषणों का अध्ययन करती है, जिनसे ऐसी प्राकृतिक आपदाओं का न केवल अनुमान लगाया जा सकता है अपितु बचाव में सतर्क भी हुआ जा सकता है। दलाई लामा की भविष्यवाणी, वराहमिहिर द्वारा भूकंप के संदर्भ, विश्व के अनेक भूकंप त्रासदियों की कुंडलियां तथा सारगर्भित अध्ययन पुस्तक के मुख्य गुणों में से हैं।

*पृष्ठ : 104* *मूल्य : 40.00*

## कॉमर्शियल वास्तु

'**कॉ**मर्शियल वास्तु' वास्तुकला को लेकर लिखी गई पहली पुस्तक है जिसमें व्यावसायिक भूखंड, होटल, दुकान, फैक्ट्री, आंतरिक साज-सज्जा, भवन स्थापत्य कला पर विस्तृत चिंतन किया गया है। नई फैक्ट्री का प्रवेश द्वार किधर हो? फैक्ट्री में जल-स्थल कहां, किधर होना चाहिए? फैक्ट्री में अग्नि-स्पॉट कहां हो? व्यावसायिक भूखंड की आकृति कैसी होनी चाहिए? भू-परीक्षण के क्या-क्या शास्त्रीय विधान हैं? सही वास्तु के मुहूर्त कैसे देखे जाते हैं? वास्तु प्रतिष्ठा में क्या-क्या सामग्री चाहिए? इन सभी पहलुओं को पुस्तक में बहुत ही सुंदर, सरल भाषा में संवारा-संजोया गया है।
इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है कि बिना तोड़-फोड़ के वास्तु निराकरण हेतु सोलह प्रकार के सोलह गणपतियों का विधान भी दिया गया है।

*पृष्ठ : 192* *मूल्य : 120.00*

## तंत्र शक्ति और साधना

`**तं**त्र' एक चमत्कारी, प्रत्यक्ष सिद्ध एवं रहस्यमय विद्या है, जिसने इसे जितना समझा, उसने उतना ही अलौकिक शक्ति के इस सानिध्य को पहचाना और प्राप्त किया। इस संसार में कई ऐसे लोग भी हैं जो तंत्र व टोटकों की हंसी उड़ाते हैं। पर वे भूल जाते हैं कि विश्वास तो सदैव अंधा ही होता है और वही सफलता देता है।
इस पुस्तक में तंत्र की विस्तृत परिभाषा, उसके भेद के पश्चात् तंत्रशास्त्र में पंचमकारों के सही रहस्य को समझाया गया है। प्राचीन ग्रंथों के सटीक उद्धरण से पुस्तक की प्रमाणिकता कई गुणा बढ़ गई है। पाठकों के लिए यह पुस्तक संग्रहणीय तथा उपयोगी है।

*पृष्ठ : 206* *मूल्य : 60.00*

## ज्योतिष और विवाह योग

**वि**वाह मानवीय जीवन की सबसे आवश्यक एवं विचित्र विडंबना है। जीवन या मरण, चिर-आनंद या चिरस्थाई दुःख सभी कुछ विवाह की परिधि में आबद्ध है। विवाह वंशवृक्ष की वाटिका में प्रवेश करने का प्रथम सोपान है। मांगलिक दोष क्या है? प्रेम-विवाह, अंतर्जातीय विवाह, परंपरागत विवाह, कितने विवाह होंगे? दाम्पत्य जीवन कैसा रहेगा? इस प्रकार के 250 योगायोगों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। भविष्य के गर्त में छिपी हुई इन सब रहस्यमय बातों का पता इस पुस्तक के अध्ययन से चल जाएगा।

*पृष्ठ : 174* *मूल्य : 40.00*

## पांव तले भविष्य
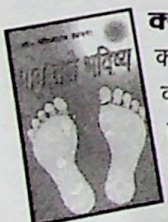
**क्**या हाथ की रेखाओं की तरह पादतल या पांव की रेखाओं के माध्यम से मानव का भूत-भविष्य जाना जा सकता है? पादतल व पाद रेखाओं को लेकर अलग से कोई रचना, साहित्य या ग्रंथ अब तक प्रकाश में नहीं आया। प्रस्तुत पुस्तक `पांव तले भविष्य' के माध्यम से सभी प्राचीन मान्यताओं का नवीनीकरण किया गया है। ज्ञान का लोप न हो, इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए जनहितार्थ में इस पुस्तक को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है।

*पृष्ठ : 188* *मूल्य : 100.00*

## अनुभूत यंत्र-मंत्र-तंत्र और टोटके
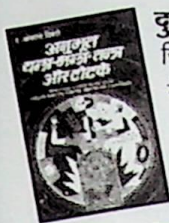
दुर्लभ व अप्रकाशित प्राचीन पांडुलिपि के ब्लाकों से युक्त यह प्रस्तुत पुस्तक प्रत्येक यंत्र-तंत्र जिज्ञासुओं के लिए संग्रहणीय है। भारतीय प्राच्यविद्याओं का गौरव बढ़ाने वाली प्रस्तुत पुस्तक में वैदिक प्रयोग, तांत्रिक प्रयोग, शाबर प्रयोग एवं अनेक रहस्यमय व चमत्कारिक यंत्रों के प्रयोग भी दिए हैं जिन्हें पाठक पहली बार देख पाएंगे। अनुभूति के व्यावहारिक संकलन के कारण पुस्तक की जितनी चर्चा देश में है, इससे कहीं अधिक मांग विदेश में है। निश्चय ही यह आपके पुस्तकालय की शोभा बढ़ाने वाली विशिष्ट पुस्तक है।

*पृष्ठ : 264* *मूल्य : 120.00*

## सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र

'संपूर्ण वास्तुशास्त्र' प्राचीन वास्तुकला को लेकर लिखी गई पहली पुस्तक है, जिसमें 'भवन स्थापत्य कला' पर विस्तृत चिंतन किया गया है। नए मकान का प्रवेश द्वार किधर हो? द्वारवेध किसे कहते हैं? यह कितने प्रकार के होते हैं? भवन में जल स्थान (Water-tank) कहां, किधर होना चाहिए? (Kitchen) में अग्नि स्थान (Fire-spot) कहां हो? शयन कक्ष (Bed-room) किस दिशा में होना चाहिए ताकि शयनकर्ता को भरपूर नींद आ सके? निवास करने योग्य भूखंड की आकृति कैसी होनी चाहिए? भू-परीक्षण के क्या-क्या शास्त्रीय विधान हैं? सही वास्तु के मूहूर्त कैसे देखे जाते हैं? इन सभी पहलुओं पर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान लेखक भोजराज द्विवेदी ने व्यावहारिक चित्रों के साथ पुस्तक को बहुत ही सुंदर ढंग से संवारा-संजोया है।

*पृष्ठ : 208* *मूल्य : 100.00*

## रेमेडियल वास्तु

देश के प्रख्यात लेखक डॉ. भोजराज द्विवेदी ने प्राचीन वास्तु कला व इस विषय पर विश्व के नवीनतम शोधों को आधार बनाकर यह पुस्तक लिखी है। इसमें भवन स्थापत्य कला पर विस्तृत चिंतन के अतिरिक्त समस्त वास्तु दोष निवारण पर अधिकतम प्रकाश डाला गया है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भवन निर्माणकर्ता की जन्मकुंडली एवं राशि के अनुसार कब भवन की नींव, वास्तु प्रतिष्ठा एवं गृह प्रवेश करना चाहिए, इसका विवरण प्रारंभिक तौर पर दिया गया है।

पुस्तक में पहली बार बिना तोड़-फोड़ के वास्तुदोष शमन पर अनेक ग्रंथों से लिए अनुभूत व चमत्कारी उपाय दिए गए हैं। प्रबुद्ध पाठकों के लिए भवन दोष-निवारण हेतु विभिन्न प्रश्नोत्तरों द्वारा व्यावहारिक भी निदान दिया गया है।

*पृष्ठ : 192* *मूल्य : 150.00*

## पर्यावरण वास्तु

डॉ. भोजराज द्विवेदी द्वारा लिखी गई यह पुस्तक वास्तु एवं पर्यावरण विषय पर संभवतः विश्व की पहली पुस्तक है जिसमें प्राचीन शास्त्र को अत्याधुनिक शैली में समझाया गया है। पर्यावरण के संदर्भ में वृक्ष वास्तु की अवधकारणा यशस्वी लेखक का एक नवीन प्रयास है। जल स्थापत्य के बारे में सचित्र व्याख्या इस पुस्तक की खास विशेषता है।

*पृष्ठ : 200* *मूल्य : 120.00*

## सस्वर रूद्राभिषेक प्रयोग एक मीमांसा

भगवान शंकर की पूजा सनातन धर्म के प्रारंभ काल से ही होती चली आ रही है। इस पुस्तक में लेखकद्वय- डॉ. भोजराज द्विवेदी एवं पं. लेखराज द्विवेदी ने विशद विवेचन द्वारा भगवान शंकर की पूजा-रहस्यों का उद्घाटन किया है। शंकर संबंधी, मानव मस्तिष्क में उठने वाले प्रायः सभी प्रश्नों का समाधान, शास्त्रीय आधार पर देने का प्रयत्न किया गया है।

**पृष्ठ** : 169 **मूल्य** : 50.00

## ज्योतिष और राज योग
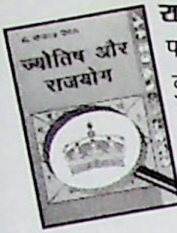
**रा**जनेता, विधायक, सांसद, मन्त्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर व्यक्ति किन-किन योगों के कारण पहुंचाता है- इसके विवेचन भी उदाहरण कुण्डलियों सहित इस पुस्तक में पहली बार पाठकगण देख पाएंगे।

`जन्मान्तरकृत पापं व्याधिरूपेण बाधते।' पूर्व जन्म में किया गया पाप ही इस जन्म में कुष्ठ, क्षय, प्रमेय, अतिसार एवं भगंदर जैसे रोगों के रूप में प्रकट होता है। इस पुस्तक में ऐसे अनेक रोगों के कारण और निवारण पर चर्चा की गई है।

*पृष्ठ : 159* *मूल्य : 40.00*

## ज्योतिष और रोग विचार

**आ**ज का आधुनिकतम विज्ञान व्यक्ति के बीमार होने के बाद ही उसकी बीमारी का पता लगा पाता है। स्वस्थ व्यक्ति में छिपी हुई प्रच्छन्न बीमारी कब प्रकट होगी? क्यों होगी? किन परिस्थितियों में, किन कारणों से व्यक्ति की मृत्यु होगी? इसके पूर्वानुमान का परिमापन न तो आयुर्वेद के पास है, न ही एलोपैथी के पास है। संसार के किसी भी चिकित्सा विज्ञान के पास इसका कोई जवाब नहीं है क्योंकि उन सभी का ज्ञान एवं चिंतन एकाकी है। मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण पर आधारित है। यह ज्योतिष किसी भी प्रकार के रोग के उत्पत्ति के तीन कारण मानता है- 1. संचित 2. प्रारब्ध 3. क्रियमाण।

*पृष्ठ :* *मूल्य : 40.00*

## ज्योतिष और आयुष्य योग
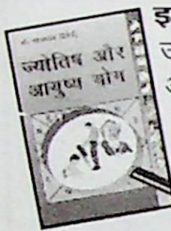
**इ**स पुस्तक के पढ़ने मात्र से आप संसार भर के प्राणियों के जीवन के बारे में, उनकी आयु के बारे में यथा-परमायु, चिरायु, दीर्घायु, उत्तम आयु, मध्यन आयु, अल्पायु, बालारिष्ट, सद्यःमृत्यु योग इत्यादि अनेक रहस्यपूर्ण तथ्यों को न केवल जान पाएंगे अपितु उसकी निवृत्ति हेतु शास्त्रीय उपायों के बारे में भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इतना ही नहीं, अलग-अलग लग्नों के मारकेश निर्णय, मृत्यु के कारण पर प्रामाणिक जानकारी भी प्रैक्टिकल उदाहरणों सहित पुस्तक में प्रस्तुत की गई है।

*पृष्ठ : 139* *मूल्य : 40.00*

## अपनी जन्मपत्रिका आप बनाएं

**इ**स पुस्तक में षोडशवर्गी जन्मपत्रिका के निर्माण की सम्पूर्ण विधि अलग-अलग अध्यायों के माध्यम से समझाई गई है। पंचांग की सहायता से जन्म-पत्रिका बनाने की विधि, एफेमेरिज की सहायता से जन्मपत्री बनाने की विधि, सूर्योदय व सूर्यास्त से जन्म-पत्रिका बनाने की विधि, दिनमान से जन्म-पत्री बनाने की विधि, साम्पत्ति काल से जन्मपत्री बनाने की विधि, कच्ची गणित द्वारा स्पष्ट करके उदाहरण कुण्डलियों सहित समझाई गई है।

*पृष्ठ : 223* *मूल्य : 30.00*
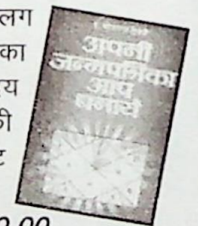
## सम्पूर्ण श्री महालक्ष्मी पूजन एवं दीपोत्सव श्राद्ध

**दी**पावली क्यों मनानी चाहिए इसके शास्त्रीय पक्ष एवं आध्यात्मिक पक्ष पर पहली बार चिन्तन इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने प्रबुद्ध पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है। श्री महालक्ष्मी, श्री महाकाली एवं श्री महासरस्वती पूजन की सांगापाङ्गविधि सहित सम्पूर्णतया पूजन के बारे में कोई शास्त्रीय पुस्तक बाजार में उपलब्ध है।

*पृष्ठ : 80* *मूल्य : 25.00*


**डायमंड पाकेट बुक्स**

**X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-110020**

**पुस्तकें V.P.P. से मंगवाएं, तीन पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय फ्री। डाक व्यय प्रति पुस्तक 20/-**

**फोन : 011-8611861-865 फैक्स : 011-8611866.**

E-mail : mverma@nde.vsnl.net.in Website : www.diamondpocketbooks.com

# फ्यूजन बुक्स में

किरण बेदी (जीवनी)

## हिम्मत है!

किरण बेदी सूर्य की रोशनी की तरह किसी का मोहताज नहीं, सूर्य का प्रकाश जिस तरह अंधेरे को चीरता हुआ हर चीज को बेनकाब कर देता है उसी तरह किरण बेदी भी जहां–जहां पहुंचती हैं, अपनी पहचान छोड़ती जाती हैं, उनकी जीवनी 'हिम्मत है' में पढ़िए उनके जुझारू व्यक्तित्व के बारीक पहलुओं को। यह पुस्तक हर नागरिक के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगी।

संयुक्त राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने उन्हें राष्ट्रों में पुलिस सुधार हेतु सलाहकार नियुक्त किया है। यह नियुक्ति उनके व्यक्तित्व को एक नया आयाम प्रदान करेगी।

**मूल्य : 125/- डाक व्यय 20/-**

किरण बेदी

## गलती किसकी ?

ऐसे अद्भुत अनुभवों का संकलन है जो व्यक्तिगत रूप से अभिव्यक्त किए गए हैं, जिन्हें बिना किसी कांट–छांट के प्रस्तुत किया गया है। यह ऐसे लोगों की कहानी है जिन्हें अपने अतीत की गलती की पीड़ा का अहसास मात्र है। जीवन के ऐसे सच्चे अनुभव जो कड़वी सच्चाई का भीतर से ज्ञान कराते हैं, जिसे कोई स्मरण नहीं करता, अहसास भी नहीं। मगर पाठक के दिलो–दिमाग को झकझोर कर रख देता हैं, हिलाकर रख देता है। ऐसी गलती, जिसे रोकने के लिए समाज के सजग प्रहरी लगे हुए हैं, रात–दिन, हर वक्त। समसामयिक विषयों को उकेरता–कुरेदता और सवाल–दर–सवाल खड़ा करता एक महत्वपूर्ण दस्तावेज।

भारत का एक ऐसा मुखर व्यक्तित्व जिसकी अपनी एक अलग पहचान है, वह नाम है किरण बेदी। पुलिस विभाग में इतिहास रचने वाली किरण बेदी भारतीय पुलिस सेवा, (IPS) की पहली महिला अधिकारी हैं। पुलिस सेवा में नई मंजिलें, नई ऊंचाइयों की तलाश करता यह व्यक्तित्व अपराधी से अपराध को कोसों दूर करने और नशे की लत को छुड़ाने में, पुलिस विभाग में आध्यात्मिक प्रशिक्षण देने में और झोपड़–पट्टी में बच्चों को ज्ञान व शिक्षा के प्रसार में अद्भुत योगदान देने के लिए प्रसिद्ध है।

रमन मैग्सासे पुरस्कार, जिसे एशिया का नोबल पुरस्कार माना जाता हैं, से सम्मानित पुलिस अधिकारी किरण बेदी की यह तीसरी कृति है।

पुस्तक की लोकप्रियता को देखते हुए दूरदर्शन 'गलती किसकी' नाम से धारावाहिक प्रसारित कर रहा है।

**मूल्य : 95/- डाक व्यय 20/-**

**नोट : दोनों पुस्तकें एक साथ मंगाने पर डाक व्यय फ्री**

X-30 ,ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-20

## डायमंड पाकेट बुक्स में
## सत्य, शिरडी साईं साहित्य

*रामकृष्ण जाजू*
युगों-युगों के मसीहा साईं बाबा .................. 80.00
*सुशील भारती*
प्रश्न आपके उत्तर साईं के .......................... 25.00
साईं कृपा के पावन क्षण.......................... 30.00
साईं चिंतन ............................................ 30.00
साईं श्री के अद्भुत देवदूत ........................ 50.00
साईं सरिता............................................ 70.00
*डॉ. सत्यपाल रुहेला*
श्री शिरडी साईं भजन संग्रह ...................... 20.00
सम्पूर्ण श्री शिरडी साईं भजन संग्रह ............. 80.00
श्री शिरडी साईं बाबा के संग मेरा जीवन ........... 20.00
श्री शिरडी के साईं बाबा.......................... 40.00
साईं बाबा के संदेश ................................ 30.00
साईं बाबा ने सुनायी कहानियाँ .................. 30.00
श्री सत्य साईं बाबा और मानव का भविष्य .... 40.00
श्री साईं अवतार त्रिमूर्ति .......................... 40.00
श्री सत्य साईं बाबा का अलौकिक व्यक्तित्व ..... 30.00
गागर में साईं क्षीर सागर.......................... 30.00
साईं गीतायन ........................................ 30.00
श्री सत्य साईं भजन माला (मिनी) ................. 10.00
श्री सत्य साईं बाबा व नारायण गुफा-आश्रम चमत्कार (सम्पूर्ण) ..............................30.00
*शकुन्तला देवी रोहिला*
श्री शिरडी साईं भजन माला (मिनी) ........................ 10.00
*चकोर अजगांवकर*
श्री शिरडी साईं बाबा दिव्य जीवन कहानी ......... 40.00
*प्रकाश नगायच*
शिरडी के साईं बाबा .............................. 40.00
सत्य साईं बाबा...................................... 50.00
*प्रो. आद्या प्रसाद त्रिपाठी*
श्री सत्यसाईं बाबा का अद्भुत अनुग्रह .......... 40.00
श्री साईं शरणं गच्छमि ..............................50.00
*प्रो. ज्यांध्ला सुमन बाबु*
श्री कृष्ण-श्री सत्य साईं ............................ 60.00

*B.Umamashwara Rao*
**The Spiritual Philosophy of Shri Shirdi Sai Baba Shirdi ................ 150.00**
**Sri Shirdi Sai Baba ........................... 60.00**
**Thus Spake Sri Shirdi Sai Baba ........................................ 40.00**
*Dr. S.P. Ruhela (Com. & Ed.)*
**The Immortal Fakir of Shirdi 150.00**
**Sai Grace and Recent Predictions ............................. 95.00**
**The Divine Glory of Shri Shirdi Sai Baba ......................... 150.00**
**[Experience of Devotees in the Post-Samadhi Period (1918-1997)]**
**Shirdi Sai : The Supreme ........... 80.00**
**Divine Grace of Sri Shirdi Sai Baba .................................. 150.00**
**Divine Revelations of a Sai Devotee ...................................... 50.00**
**Sri Shirdi Sai Bhjanavali (In Roman) ....................... 30.00**
**Worship of Sri Sathya Sai Baba (In Roman) ......................... 40.00**
**World Peace and Sri Sathya Sai Avtar ................................ 60.00**
**How to Receive Sri Sathya Sai Baba's Grace ................... 100.00**
**Sri Sathya Sai Baba : Understanding His Mystery and Experiencing His Love ... 60.00**
*Chakor Ajgaonkar*
**The Footprints of Shirdi Sai 100.00**
**Tales from Sai Baba's Life .... 60.00**
*B.K. Chaturvedi*
**Sai Baba of Shirdi .................. 60.00**
**The Miracal Man : Sri Sathya Sai Baba .................................. 60.00**
*S. Maaney*
**The Eternal Sai ........................ 40.00**
*Sushila Devi Ruhela*
**Sri Shirdi Sai Bhajanmala (Roman) ......................................... 10.00**
*Sushila Devi Ruhela*
**Sri Sathya Sai Bhajanmala (Roman) ................ 10.00**

## डायमंड पाकेट बुक्स

**X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-110020**
**पुस्तकें V.P.P. से मंगवाएं, तीन पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय फ्री। डाक व्यय प्रति पुस्तक 10/-**
**फोन : 011-6822803, 6822804, 6841033, फैक्स : 011-6925020**
E-mail : mverma@nde.vsnl.net.in Website : www.diamondpocketbooks.com

# ये चार पुस्तकें बदल देंगी आपका जीवन सदा के लिए

## जीरो आयल कुक बुक

डॉ. बिमल छाजेड़ एम.डी.

अब आप रोक सकते है
मधुमेह, तनाव और मोटापे
को बिना तेल घी के
स्वादिष्ट खाना बनाकर
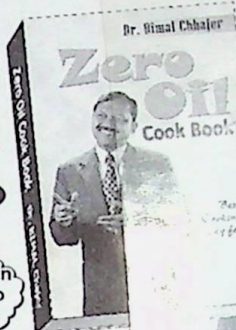
Rs.95/-

Available in Hindi also Rs 150/-

## मां प्रेम उषा राशिफल 2003 टैरो कार्ड पर आधारित

कैसा होगा आपका भविष्य 2003 मे बता रहीं हैं
विश्व प्रसिद्ध टैरो कार्ड विशेषज्ञ
मां प्रेम उषा
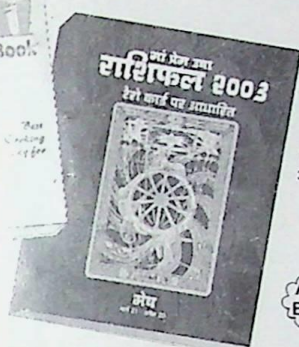
12 राशियां अलग–अलग।
अपनी राशि मंगवाने के लिए
35/– का डाक टिकट भेजकर
घर बैठे प्राप्त करें

Available in English also

## कामयाबी कैसे

स्वाति-शैलेश लोढ़ा

हजारों पाठक इसे पढकर
लाभ उठा चुके हैं।
अब आपकी बारी हैं

Available in English & Bengali also. Rs 150/- each

## अष्टावक्र महागीता ओशो के मुखारविंद से

- एक ही परिचय अपना परिचय
- एक अंजुरी भर रस
- प्रभु–मंदिर यह देह री
- शून्य की वीणा : विराट के स्वर
- जागरण एक महामंत्र
- मेरा मुझको नमस्कार
- आंतरिक क्रांति के सूत्र
- आनंद की तलाश

प्रति पुस्तक 75/–

पुस्तके VPP से मंगवाने पर डाक व्यय प्रति पुस्तक 20/– तीन पुस्तक एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय फ्री

**फ्यूजन बुक्स**

ओखला, इंडस्ट्रियल एरिया, फेज, नई दिल्ली
फोन फैक्स
ई.मेल

A.H.W. SAMEER SERIES
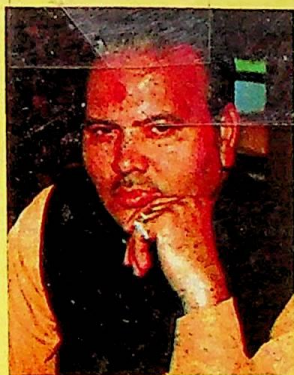
डॉ० भोजराज द्विवेदी

## पुस्तक के यशस्वी लेखक डा० भोजराज द्विवेदी

दैवज्ञ शिरोमणि डा० भोजराज द्विवेदी ज्योतिष, मन्त्र-तन्त्र व अध्यात्म विद्या के जाने-माने लेखक, लब्ध प्रतिष्ठित पत्रकार व भविष्यवक्ता हैं। एम.ए. संस्कृत दर्शन प्रथम श्रेणी में रहकर सर्वोच्च अंक लिये तथा सम्प्रति जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर में ही वराहमिहिर ज्योतिष को लेकर शोधकार्य कर रहे हैं। ज्योतिष विषय को लेकर "अज्ञात-दर्शन" नामक एक समाचार-पत्र का सम्पादन गत 17 वर्षों से कर रहे हैं। ज्योतिष में आपको ढेरों मानपत्र, अनेक स्वर्ण पदक प्राप्त हो चुके हैं तथा कई नागरिक अभिनन्दन हो चुके हैं। आपको केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री माखनलाल फोतेदार द्वारा डॉक्टर ऑफ ऐस्ट्रोलोजी की उपाधि मिल चुकी है तथा पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी ज़ैल सिंह द्वारा अंग वस्त्र, मुकुट एवं स्वर्ण पदक भी प्रदान किया गया। आप देश-विदेश के अनेक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की अध्यक्षता भी कर चुके हैं तथा सिंगापुर, हांगकांग, अबूधापी, दुबई, शारजाह एवं अनेक मुस्लिम राष्ट्रों की भी यात्रा कर चुके हैं। ज्योतिष विषय को लेकर पचास से अधिक रेडियो वार्ता, एक हज़ार लेख व डेढ़ हज़ार से अधिक भविष्यवाणियां प्रकाशित होकर सत्य प्रमाणित हो चुकी हैं। ज्योतिष-क्षेत्र में आपने दर्जनों स्तरीय पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से एक यह दुर्लभ पुस्तक आपके हाथों में है।

ISBN 81-7182-293-2

डायमंड पाकेट बुक्स

100/-